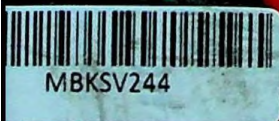


13

ऋतुकालीन लोकगीतों में शास्त्रीय संगीत के तत्त्व

(उत्तर प्रदेश के संदर्भ में)



डॉ. सुमन

लोकगीतों में मानव मन का विशद् चित्रण होता है। किसी देश की परम्परा, ऐतिहासिकता, आदिमसभ्यता, संस्कृति, संस्कार, करूणा, दया एवं रीति-रिवाजों को लोकगीतों के माध्यम से सहज ही जाना जा सकता है। मौखिक परम्परा से विकसित होते हुए इन लोकगीतों को वेदों के समान माना गया है। इनमें मानव विकास की गाथा है। लोकगीतों में जीवन की प्रत्येक अवस्था, जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक के दर्शनों का पूर्ण चित्रण मिलता है। साथ ही लोकगीतों में प्रत्येक ऋतुओं का सौन्दर्य देखते ही बनता है। संस्कृत साहित्य से लेकर आजतक ये ऋतुएं अपनी मादकता तथा सौन्दर्य के लिए साहित्य का वर्ण्य-विषय बनती रही हैं। फाग, चईता, कजरी, होरी, सावन, बारहमासा आदि अनेक ऋतुकालीन लोक गीत शैलियों में ऋतुओं का वर्णन विभिन्न प्रकार से हुआ है। इन ऋतुओं का सौन्दर्य, लालित्य एवं हृदयगम्य भावों का जीवन्त उदाहरण लोकगीतों में स्पष्ट रूप से वर्णित रहता है।

लोकगीतों में प्रायः सात शुद्ध स्वरों तथा विकृत गन्धार एवं कहीं-कहीं कोमल ऋषभ एवं कोमल धैवत का प्रयोग भी मिलता है। शास्त्रीय संगीत के समान कजरी गायन परम्परागत निर्धारित धुनों में पाई जाती है। यद्यपि चैती के स्वर समुदाय को देखते हुए उन्हें थाट विशेष में रखा जा सकता है। विशुद्ध चैती, मात्र लोक धुन हैं, किन्तु स्वर, संयोजन को देखते हुए लगता है कि चैती गीत अधिकतर खमाज थाट में रखे जा सकते हैं। कभी-कभी चैती विलावल थाट में भी पाया जाता है।

लोक संगीत में भी भावों उद्दीपन तथा संगीत को सजीव बनाने के लिए ताल वाद्यों की आवश्यकता होती है। एकतारा, ढोलक, शहनाई, बीन, मंजीरा, सारंगी, नगाड़ा, मृदंग, चंग आदि अनेक लोक वाद्यों का प्रयोग लोकगीतों में बहुलता के साथ प्रयोग किया जाता है। लोकगीतों में ताल, स्वर, लय, पद, मींड, मुर्की आदि अनेक तत्त्व विद्यमान हैं। इन्हीं गेयतत्त्वों के आधार पर ऋतुगीतों की स्वरलिपियाँ प्रस्तुत की गयी हैं। इस अध्ययन का मूल दृष्टिकोण ऋतुकालीन लोकगीतों में शास्त्रीय संगीत के तत्त्वों को प्रतिपादित करते हुए लोकगीतों की समृद्धि को उजागर करना है। और मेरा यही प्रयास है कि मैं भली-भाँति इस कार्य का निर्वाह कर सकूँ। आशा करती हूँ कि यह ग्रन्थ पाठकों एवं अनुसंधित्सुओं के लिए अवश्य ही प्रेरणादायक सिद्ध होगा।

मूल्य : ₹ 600/-

ऋतुकालीन लोकगीतों में शास्त्रीय संगीत के तत्त्व
(उत्तर-प्रदेश के विशेष सन्दर्भ में)



ऋतुकालीन लोकगीतों में शास्त्रीय संगीत के तत्त्व
(उत्तर-प्रदेश के विशेष सन्दर्भ में)



ऋतुकालीन लोकगीतों में शास्त्रीय
संगीत के तत्त्व
(उत्तर-प्रदेश के विशेष सन्दर्भ में)



लेखिका :

डॉ. सुमन

प्रकाशक :

नैतिक प्रकाशन

II, आर एम, 166, एम.आई.जी., जी.डी.ए. फ्लैट्स
राजेन्द्र नगर, गाजियाबाद (उ.प्र.)

9879

प्रकाशक : नैतिक प्रकाशन

II, आर एम, 166, एम.आई.जी., जी.डी.ए. फ्लैट्स
राजेन्द्र नगर, गाजियाबाद (उ.प्र.)

फोन : 9811068272, 9873485403

© लेखिका

प्रथम संस्करण : 2012

781.7
34M
9879

ISBN : 978-81-924-653-0-2

मूल्य : 600/-



शब्द-सज्जा :

प्रेम कम्प्यूटर

कमला नगर, दिल्ली-110007

मुद्रक :

आर.के. ऑफसेट

शाहदरा, दिल्ली



समर्पण

परमपूज्य

स्व. दादा जी एवं दादीजी
को परमश्रद्धा
के साथ समर्पित

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विवरण	पृष्ठ संख्या
	आमुख	
	भूमिका	
(क)	प्रथम अध्याय	1
	लोक संगीत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि।	
	1. 'लोक' शब्द का अर्थ। ✓	
	2. लोकगीत का परिचय। ✓	
	3. लोकगीत की परिभाषा। ✓	
	4. लोकगीत का उद्गम। ✓	
(ख)	द्वितीय अध्याय	13
	प्रमुख लोकगीतों का सामान्य परिचय।	
	(1) संस्कार गीत, (2) जाति सम्बन्धी गीत, (3) धार्मिक गीत, (4) खेल सम्बन्धी गीत, (5) प्रणय सम्बन्धी गीत, (6) प्रकीर्ण-गीत, (7) लोकगीतों में राष्ट्रीय भावना, (8) साक्षरता से संबंधित गीत। ✓	
(ग)	तृतीय अध्याय	50
	प्रचलित ऋतुकालीन लोकगीतों की परम्परा।	
	(अ) ऋतुगीतों का सौन्दर्य एवं संगीत से सम्बन्ध—	
	(1) बसन्त ऋतु, (2) ग्रीष्म ऋतु, (3) वर्षा ऋतु, (4) शरद ऋतु, (5) हेमन्त एवं (6) शिशिर ऋतु	
	(ब) ऋतु लोक गीतों का वर्णन—	
	(1) कजरी, (2) फगुआ (फाग गीत) (3) होरी, (4) चैती, (5) बारहमासा, (6) छहमासा, (7) चौमासा, (8) एकमासा, (9) बसन्त पंचमी, (10) आल्हा, (11) रसिया, (12) बिरना, (13) मोरा, (14) मेघासिन, (15) चन्द्रावली, (16) शिवरात्रि, (17) हरियालीतोड़, (18) नागपंचमी, (19) ढोला, (20) बिरहा, (21) झूला या हिंडोला, (22) सावन।	

(घ) चतुर्थ अध्याय

99

ऋतुकालीन लोकगीतों में शास्त्रीय संगीत की भूमिका।

- (1) लोकगीत एवं शास्त्रीय संगीत का सम्बन्ध।
- (2) ऋतुकालीन लोकगीतों में शास्त्रीय संगीत के तत्त्व।

(ङ) पंचम अध्याय

117

उत्तर-प्रदेश में प्रचलित लोक वाद्यों का परिचय।

- (1) एकतारा, (2) डुगडुगी, (3) ढोलक, (4) ढोल, (5) खंजरी, (6) ढपली, (7) ढपला, (8) ढप (डफ), (9) डमरू, (10) मंजीरा, (11) थाली, (12) झाँझ, (13) नगाड़ा, (14) मृदंग (पखावज), (15) सारंगी, (16) करताल या खड़ताल, (17) घट, (18) घुँघरू, (19) चंग, (20) चिमटा, (21) शंख, (22) तुरही, (23) कुडकुडी, (24) शहनाई, (25) बाँसुरी (वंशी), (26) बौन, (27) हारमोनियम।

(च) षष्ठ अध्याय

131

कलाकारों एवं लेखकों के द्वारा रचित ऋतुकालीन लोकगीतों के महत्त्वपूर्ण पद एवं स्वरलिपियाँ।

- (1) चैती, (2) होरी, (3) होरी, (4) कजरी, (5) होरी, (6) होरी, (7) होरी
- (8) होरी, (9) ढोला, (10) रसिया, (11) रसिया, (12) रसिया, (13) होली,
- (14) होली, (15) होरी, (16) चैती, (17) कजरी, (18) होरी, (19) होरी,
- (20) होरी, (21) झूला, (22) ढोला, (23) फाग, (24) होरी (25) झूला,
- (26) होरी, (27) सावन, (28) कजरी, (29) सावन, (30) झूला, (31)
- सावन, (32) चैती, (33) बारामासी, (34) कजरी, (35) होरी, (36) चैती,
- (37) होरी, (38) धुन (सावन)।

लोकगीतों के साथ लोकवाद्यों की परम्परा भी अत्यन्त समृद्ध है। शास्त्रबद्ध संगीत में प्रयुक्त होने वाले वाद्यों का संगत लोकगीतों में स्वतंत्रतापूर्वक किया जाता है जो लोकगीतों को और भी समृद्ध बनाते हैं। शास्त्र बन्धन से मुक्त होकर जब इन वाद्यों का प्रयोग लोकगीतों में किया जाता है तो वह लोकवाद्य की श्रेणी में आ जाते हैं। लोकवाद्यों का विस्तार से वर्णन करते हुए उनकी उपयोगिता को पुनर्स्थापित किया गया है।

सारांश में इस पुस्तक में संगीत के क्रियात्मक पक्ष को लोकगीतों से जोड़ने का सराहनीय प्रयास किया गया है। लेखिका की विचार शैली मौलिक है और इनका लेखन प्रवाहपूर्ण है। अतः यह समग्र रूप से पठनीय है। शास्त्रीय संगीत तथा लोकगीत में रूचि रखने वाले पाठक प्रस्तुत पुस्तक से अवश्य ही लाभान्वित होंगे। मैं लेखिका को अपना आशीर्वाद देती हूँ और उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करती हूँ।

प्रौ० (श्रीमती) नजमा परवीन अहमद

भूमिका

उत्तर-प्रदेश की संस्कृति, सभ्यता, मान्यता एवं मौलिकता आदि स्वरूपों को निश्चयात्मक ढंग से कण्ठस्थ करने की कृति 'लोकगीत' सर्वथा प्रसिद्ध एवं सम्पन्न विधा मानी गयी है। उत्तर-प्रदेश प्रतिभा सम्पन्न जनमानस का ऐसा स्थल है जिसका वर्णन कर पाना असम्भव है। यहाँ को बहुपयोगी उच्चस्तरीय परम्पराएँ, मौलिक विचार, लालित्यपूर्ण एवं भव्य प्राप्तव्य स्थिति, श्रम-धरोहर, सशक्त संवेदना, प्रभावशाली लोक-संस्कृति आदि को प्रकट करने में शब्द भी असमर्थ प्रतीत होते हैं। इन सभी कर्तव्यों तथा मर्यादाओं को लोकगीत रूपी दर्पण में साफ-साफ देखा जा सकता है।

यहाँ प्रचलित भाषाओं, बोलियों में लोक-संस्कृति स्वतः उद्घटित होती है। यहाँ की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा लोकगीतों की मानी जाती है। इन लोकगीतों में स्नेहभाव, सहजता, स्वाभाविकता, निश्छलता, प्रवाहमयता तथा भाषाओं की मधुरता अभिव्यक्त होते रहे हैं। ये लोकगीत हमारी अमूल्य कला-निधि हैं, कदाचित् इसलिए इन लोकगीतों में मानव भावना निहित होती है।

लोकगीतों का रसास्वादन करने के लिए निर्मल मनोवृत्ति की आवश्यकता होती है। लोकगीतों की विविधता में भी एकजुटता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। चाहे उत्तर-प्रदेश या अन्य किसी प्रदेश का लोकगीत हो, भाषा की भिन्नता के बाद भी लोकगीतों के भाव समान होते हैं। संस्कार गीत, जाति गीत, धार्मिक गीत, व्रत एवं त्योहारों के गीत तथा अनेक अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों में लोक धारणा स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है।

इसी क्रम में ऋतुओं से संबंधित गीतों की समृद्धि भी अत्यन्त रोचक है। ऋतुओं से सम्बन्धित गीत निर्मल भावनाओं का महाकुम्भ है। ऋतु लोकगीतों की मादकता एवं चंचलता वातावरण में स्वच्छन्द रूप से देखी जा सकती है। इन लोकगीतों के वर्ण्य-विषय अनेक होते हैं जिनमें विरह, प्रेम-मिलन, सुख-दुःख, उतार-चढ़ाव आदि अनेक मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी भावों का वर्णन होता है। ऋतु के 'यश' का गान इन लोकगीतों में भिन्न-भिन्न लयों एवं रूपों से किया जाता है। ऋतु सम्बन्धी अनेक

शैलियाँ जैसे : कजरी, चैती, सावन, बारहमासा, एवं होरी आदि हैं जिनमें मानव से जुड़ी भावनाओं का यथार्थ दर्शन किया जा सकता है। इन लोकगीतों में भावनाओं के साथ मनुष्य का हित भी निहित रहता है।

जब इन गीतों की मार्मिकता अंतःकरण में रच-बस जाये तो किसी मादक वस्तु (सांसारिक सुख-सुविधा) के सेवन की आवश्यकता नहीं होती। वर्षा ऋतु में प्रेम-माधुर्य एवं अमृत रूपी वर्षा का आनन्द, बसंत और सावन के माह में रंग-बिरंगे अनगिनत सुषुम्ना का खिलना, मानसरोवर में 'कमलों' का खिलना, पूनम की रात में निर्मल किरणों की छाया में स्वच्छ तथा उन्मुक्त आकांक्षाओं का मन में उत्पन्न होना तथा भावनाओं का यशस्वी रूप ऋतु गीतों में देखा जा सकता है इनका कोई अन्त नहीं। ये लोकगीत संस्कृति, संस्कार और स्वाभिमान को प्रकट करने में स्वतः सक्षम हैं। बनावट, अभिमान तथा भौतिकता से भिन्न इन लोकगीतों में प्रकृति की मनोहर छटा का आनन्द लिया जा सकता है।

लोकगीत आस्था एवं विश्वास का परिचायक है। लोकगीतों में विवादास्पद कुछ भी नहीं होता। यह वह सरसधारा है जिसके प्रवाह में साधारण व्यक्ति की उमंग, भाव, धैर्य, शौर्य एवं संस्कृति सदैव प्रवाहित होती रही है। इसमें बनावट के लिए कोई स्थान नहीं होता। स्वतंत्र-चिन्तन और सत्यता इन गीतों की पहचान है।

लोकगीतों के मर्म को कबीर के एक दोहे से इस प्रकार समझा जा सकता है।

वह तत-यह तत एक है, एक प्राण दुई गात।

अपने जिय से जानिए, मेरे जिय की बात॥

कबीर की निम्न पंक्ति को लोकगीतों में निहित अभिवृत्ति एवं मनोवृत्ति से जोड़कर समझा जा सकता है। ये गीत किसी एक व्यक्ति के भावना से नहीं जुड़े होते। अपने मन की अनुभूति से दूसरों की मनोदशा का अनुमान सहजता से लगाया जा सकता है।

लोक संगीत मुझे विशेषकर प्रिय रहा है। लोकगीतों की मनोहर प्रवृत्ति सदैव मेरे लिए आदरणीय रहेगी। लोकगीतों की व्यापकता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि यही लोक गीत-लोकधुन युगों-युगों से शास्त्रीय संगीत को ऊर्जा देते रहे हैं। इन लोकगीतों में शास्त्रीय संगीत के तत्त्व जाने-अनजाने रूप में सदैव विद्यमान रहे हैं। संगीत शास्त्र की दृष्टि से लोकगीतों का बहुत महत्त्व है। टप्पा, दादरा, कीर्तन, भजन आदि लोक संगीत के ऋणी हैं। ये स्वर, लय एवं ताल से युक्त विधा हैं।

तथापि प्रस्तुत पुस्तक के विषय परिधि पर विचार करते हुए प्रमुख पक्षों का निर्धारण इस प्रकार किया गया है।

प्रथम अध्याय "लोक संगीत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि" के अन्तर्गत 'लोक' शब्द का अर्थ बतलाते हुए। लोक गीत का परिचय दिया गया है। तत्पश्चात् लोकगीतों की विभिन्न ग्रन्थों एवं विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाओं को व्यक्त करते हुए, लोक गीतों के उद्गम को बतलाया गया है।

द्वितीय अध्याय में "प्रमुख लोकगीतों का सामान्य परिचय" के अन्तर्गत क्रमशः संस्कार गीत, जातिगीत, धार्मिक गीत, खेल सम्बन्धी गीत, प्रणय सम्बन्धी गीत, प्रकीर्णगीत एवं लोकगीतों में राष्ट्रीय भावना आदि का सविस्तार से वर्णन किया गया है। लोकगीत अन्य अनेक परम्पराओं, मान्यताओं से समृद्ध गायन विधा है इन लोकगीतों में मानव जीवन का हर एक पहलू समाहित है जिनका वर्णन कर पाना असम्भव है।

तृतीय अध्याय, जिसका शीर्षक है—“प्रचलित ऋतुकालीन लोकगीतों की परम्परा के अन्तर्गत, कजरी, फगुआ, होरी, चैती, बारहमासा, छहमासा, चौमासा, एकमासा, बसंत पंचमी, आल्हा, रसिया, बिरना, मोरा, मेघासिन, चन्द्रावली, शिवरात्रि, हरियालीतीज, नागपंचमी, ढोला, बिरहा, झूला व हिंडोला एवं सावन इत्यादि विधाओं का विस्तार से वर्णन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में वर्णित “ऋतुकालीन लोकगीतों में शास्त्रीय संगीत की भूमिका” के अन्तर्गत लोकगीत एवं शास्त्रीय संगीत का सम्बन्ध एवं ऋतुकालीन लोकगीतों में शास्त्रीय संगीत के तत्त्व का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

पंचम अध्याय में “उत्तर-प्रदेश में प्रचलित लोक वाद्यों का परिचय” दिया गया है जिसके अन्तर्गत एकतारा, डुगडुगी, ढोल, ढोलक, खंजरी, ढपली, ढपला, ढप, डमरू, मंजीरा, थाली एवं झाँझ इत्यादि वाद्यों का परिचय दिया गया है। जिनका प्रयोग लोक संगीत के लिए प्रयुक्त माना गया है। षष्ठ्य अध्याय, जिसके अन्तर्गत विभिन्न कलाकारों एवं लेखकों के द्वारा रचित ऋतुकालीन लोकगीतों के महत्त्वपूर्ण पद एवं स्वरलिपियाँ दी गयी हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ के निष्कर्ष को उपसंहार में वर्णित करने का प्रयास किया गया है। और साथ ही सहायक ग्रन्थों, पुस्तकों व पत्रिकाओं को सन्दर्भ ग्रन्थ सूची के अन्तर्गत दिया गया है।

इस अध्ययन का मूल दृष्टिकोण उत्तर-प्रदेश में प्रचलित ऋतुकालीन लोकगीतों में शास्त्रीय संगीत के तत्त्वों को प्रतिपादित करते हुए लोकगीतों की समृद्धि को उजागर करना है। और मेरा यही प्रयास है कि मैं भली-भाँति इस कार्य का निर्वाह कर सकूँ। यह पुस्तक इस विषय पर कार्य करने वाले अनेक अनुसंधित्सुओं के लिए प्रेरणादायक सिद्ध होगी। प्रस्तुत पुस्तक को सम्मन करने में संगीत संकाय (दिल्ली विश्वविद्यालय) की श्रेष्ठ, प्रो. (श्रीमती) नजमा परवीन अहमद जी के प्रति आभार प्रकट करती हूँ। जिनके ज्ञान-कोष एवं मार्गदर्शन के द्वारा ही प्रस्तुत पुस्तक को पूर्णतः प्राप्त हुई। आपके

प्रति मेरी कृतज्ञता अक्षुण्ण है। पूज्यनीया डॉ. (श्रीमती) महादेवन विजय लक्ष्मी जी का मैं सादर चरण स्पर्श करती हूँ। आपने स्नेह एवं आशीर्वाद से मुझे सदैव फलीभूत किया। मैं सदैव आपकी ऋणी रहूँगी। मैं संगीत एवं ललित कला संकाय की विभागाध्यक्षा एवं अधिष्ठाता प्रो. (श्रीमती) अनुपम महाजन जी का आभार प्रकट करती हूँ। जिन्होंने अपने आत्मीय व्यवहार तथा अमूल्य परामर्शों के द्वारा मेरी अभिरूचि का विकास किया।

मैं डॉ० शैलेन्द्र गोस्वामी जी का हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ जिनकी प्रेरणा एवं सुझाव से इस पुस्तक को एक नई दिशा प्राप्त हुई।

परमादरणीय स्व० श्री अनंतलाल शंकर जी का आभार प्रकट करती हूँ। जिन्होंने मुझे निरन्तर सक्रिय सहयोग दिया। अतएव मैं उनको सदैव ऋणी रहूँगी।

मैं अपने पूज्यनीय पिताजी एवं माताजी के प्रति श्रद्धावान हूँ, जिन्होंने मेरे जीवन दिशा को आलोकित किया और ममत्वपूर्ण आशीर्वाद दिया तथा श्री अरविन्द जी व परिवार के सभी सदस्यों को धन्यवाद करती हूँ जिन्होंने स्नेह और प्रोत्साहन से मेरी हर सम्भव सहायता की। साथ ही, सानवी एवं इशिता को बहुत सारा स्नेह।

ग्रंथ को सम्पन्न करने हेतु मुझे सहायक ग्रंथादि विशेष रूप से संगीत संकाय (दिल्ली विश्वविद्यालय) के पुस्तकालय एवं केन्द्रीय पुस्तकालय से प्राप्त हुए। मैं डॉ. मो० हारून जी एवं श्री माताप्रसाद मिश्रा जी को तथा संबद्ध अधिकारियों को उनके अवर्णीय सहयोग के लिए हार्दिक धन्यवाद देती हूँ। साथ ही सभी विद्वानों को धन्यवाद देती हूँ जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से इस पुस्तक को सम्पन्न करने में मेरी सहायता की।

साथ ही मैं अपने प्रकाशक महोदय को धन्यवाद देती हूँ। जिन्होंने अत्यन्त संलग्नता से इस पुस्तक के प्रकाशन कार्य में अपना पूर्ण सहयोग दिया।

—डॉ. सुमन

प्रथम अध्याय लोक संगीत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

(1) 'लोक' शब्द का अर्थ

'लोक' शब्द संस्कृत में 'लोक दर्शने' धातु में 'लुक्' प्रत्यय लगाकर बना है जिसका अर्थ है— देखने वाला। साधारण जनता के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर हुआ है। ऋग्वेद में 'लोक' सन्दर्भ में कहा गया है—

“सहस्रशीषा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपातः”¹

अर्थात् वह सहस्रो मुखः सहस्रों नेत्र तथा सहस्रों पद से युक्त पुरुष है जो संकल्पना शक्ति, व्यवसाय, कला-कौशल, कृषि उद्योग, शास्त्रानुसंधान और व्यवहार कुशलता आदि में निपुण है जिसके कारण यह प्राणी मात्र का मित्र व संपादक बना रहता है।

लट् लकार अन्य पुरुष एक वचन में 'लोकते' रूप बनता है जिसका अर्थ है— देखने वाला। अतः समस्त दर्शक जन-समुदाय 'लोक' है²। भाषा शब्द कोश³ में 'लोक' का अर्थ जगत, संसार, जीव एवं प्राणी के लिए प्रयोग हुआ है। साथ ही 'दो लोक' इहलोक और परलोक आदि का प्रयोग किया है जो मृत्युलोक या पाताल लोक का बोधक है।

संस्कृत-हिन्दी कोश में लोकः (लोक्यतेऽसौ लोक् + लुक्)⁴, दुनिया, संसार, विश्व का एक प्रभाग (स्थूलरूप यदि कहा जाए तो लोक तीन हैं— स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल लोक) के अर्थ में प्रयोग हुआ है।

ऋग्वेद पुरुष सूक्त में लोक शब्द का प्रयोग जीव तथा स्थान दोनों के लिए ही हुआ है।⁵ इसी प्रकार एक स्थल पर 'भारत जन' शब्द का प्रयोग भी मिलता है।⁶ अथर्ववेद में पृथ्वी पर प्राप्त वस्तुओं के लिए 'लोक' शब्द आया है।⁷ यहाँ पृथ्वी से यह प्रार्थना की गई है कि वह इस विशाल 'लोक' को हमारे अनुकूल करे।

महाभारत में 'लोक' का प्रयोग साधारण जनता के ही अर्थ में हुआ है ।

अज्ञान तिमिराधस्य लोकस्य तु विचेष्टतः⁸

ज्ञानौजन शलाकाभिनेत्रोन्मीलन कारकम्

2 / ऋतुकालीन लोकगीतों में शास्त्रीय संगीत के तत्त्व

इसी प्रकार भगवद्गीता में लोकसंग्रह शब्द का व्यवहार भी साधारण जनता के लिए किया गया है।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।

लोक संग्रह हमें वापि संपश्य-कर्तुमर्हसि॥⁹

हिन्दी शब्द सागर में¹⁰ 'लोक' का अर्थ "स्थान विशेष जिसका बोध प्राणी को हो" बताया गया है। उपनिषदों में दो लोक-इहलोक और परलोक। निरुक्त में तीन लोकों का उल्लेख है- पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्युलोक।

हिन्दी साहित्यकोश¹¹ के अनुसार "शब्दकोशों में लोक शब्द के कितने ही अर्थ मिलेंगे, जिनमें से साधारणतः दो अर्थ विशेष प्रचलित हैं। एक तो वह जिससे इहलोक, परलोक अथवा त्रिलोक का ज्ञान होता है। दूसरा अर्थ लोक का होता है— जन सामान्य—इसी का हिन्दी रूप लोक है। साहित्य कोश में वर्णित है कि "लोक" मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना और पाण्डित्य के अहंकार से शून्य और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।

भूर्लोकश्च भुवश्चैव तृतीयः स्वरिति स्मृतः॥¹²

महर्लोको जनश्चैव तपः सत्यश्च सप्तमः॥79॥

तीनों लोकों में भूर्लोक, भुवः लोक और तीसरा स्वर्लोक है ऐसा कहा गया है। महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सातवां सत्यलोक है।

महाभारत के उद्योग पर्व में "प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नर"¹³ द्वारा लोक का प्रयोग लोक-जीवन के लिए ही हुआ है। अर्थात् जो लोकों का प्रत्यक्ष सर्वदर्शी होता है और लोक-जीवन को अनुभूति के स्तर पर हृदयंगम करता है, वह मानस-चक्षु से देख-परख कर सर्वदर्शी बन जाता है।

ऋग्वेद में एक स्थान पर कहा गया है कि सूर्य के तेज (रोशनी) से अन्धकार समाप्त हो जाता है और समस्त लोक प्रकाशमय हो जाता है—

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणदयानती।

व्याख्यान् महिषो दिनम्॥ 10/189/2

अर्थात् "सूर्य के भीतर से जो ज्योति या प्रकाश निकलता है, वह प्रकाश इनके प्राण-अपान से प्रकट हुआ है। उसके निकलने से 'महिष' (अन्धकार) नष्ट हो जाता है और सूर्य भगवान् समस्त लोक को व्याप्त कर लेते हैं।"¹⁴ तीनों लोकों का मूलाकरण सूर्य ही हैं इसमें सन्देह नहीं।¹⁵ निम्न श्लोक में मनुष्य लोक में दक्ष का पुनर्जन्म बताया गया है—

रुद्रस्य शापात् पुनरुद्भवश्च दक्षस्य चाप्यत्र मनुष्यलोके।¹⁶

वासः क्षितौवा नियमाद्भवस्य दक्षस्य चात्र प्रतिशापलाभः॥17॥

इस मनुष्य लोक में रुद्र के शाप से दक्ष का पुनर्जन्म अथवा भूमण्डल में निवास हुआ और नियम से यहाँ पर दक्ष का और भव का प्रतिशाप लाभ हुआ।

इसी प्रकार निम्न श्लोक में परलोक एवं इहलोक में मनुष्य को सुख:दुःख भोगने का कारण बताया गया है—

उपदेशप्रदातृणां नराणां हितमिच्छताम्।¹⁷

परस्मिन्निह लोके च व्यसनं नोपपद्यते॥

हित की इच्छा से उपदेश करने वाले मनुष्यों को परलोक और इस लोक में दुःख नहीं होता।

लोकेषु पृथिव्यादिषु पञ्चविधं पञ्चभक्तिभेदेन।¹⁸

पञ्चप्रकारं साधु समस्तं सामोपासीत्॥

पृथ्वी आदि लोकों में पञ्चविधि पाँच प्रकार की भक्ति के भेद से पाँच प्रकार के साधुगुणविशिष्ट समस्त साम की उपासना करनी चाहिए।

निम्न श्लोक में बतलाया गया है कि कर्मनिष्ठ होना मनुष्य का कर्तव्य है—

न में पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।¹⁹

नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥

कृष्ण अर्जुन को बतलाते हैं कि मुझे इन तीनों लोकों में न तो कुछ कर्तव्य है और न कोई प्राप्त करने योग्य वस्तु अप्राप्त है, तो भी मैं कर्म में ही बरतता हूँ।

श्रीमद्भागवद्गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को अपना मन्व्य रूप दिखाते हैं तब अर्जुन श्रीकृष्ण से कहते हैं—

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः॥²⁰

दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितमहात्मन्॥

अर्थात् हे महात्मन्! यह स्वर्ग और पृथ्वी के बीच का सम्पूर्ण आकाश तथा सब दिशाएँ एक आपसे ही परिपूर्ण हैं तथा आपके इस अलौकिक और भयंकर रूप को देखकर तीनों लोक अति व्यथा को प्राप्त हो रहे हैं।

इसी प्रकार पाश्चात्य देशों में 'लोक' विशेषण लगाकर विगत शताब्दी में अनेक शब्द गढ़ लिये गये हैं। जैसे- 'लोक-कला', 'लोक-संगीत', लोक-संस्कृति आदि जिनमें उसे असंस्कृत समाज का विषय माना जाता है।

आंग्लभाषी समाजों में 'लोक' शब्द का प्रयोग उस समय विशेष रूप से असंस्कृत तथा मूढ़ समाजों के लिये किया गया।

विद्वानों ने 'लोक' शब्द के तात्पर्य उन लोगों से लिया जो विशिष्ट संस्कृति शासक वर्ग की विचारधारा तथा लिखित प्रमाण वाली जातियों से अप्रभावित रहते हैं। ऐसे लोग किसी सभ्य राष्ट्र में मुख्यतः सामान्य कार्यकर्ता हुआ करते हैं। मूलतः लोक (फोक) शब्द की उत्पत्ति एंग्लो-सैक्सन शब्द 'फोक' से हुई थी जो जर्मनी में 'फोक' शब्द के रूप में अभी तक प्रचलित है। विलियम टामस ने लोक शब्द से इसी असंस्कृत वर्ग का अर्थ लिया था।

अंग्रेजी में भी (Folk Song, Folk Music, Folk Dance) शब्दों का प्रयोग हुआ है। 'फोक' का अर्थ आदिम जातियाँ कहा जाता है इस तरह भद्दे, कर्कश संगीत व तारतम्यहीन नाच को इन शब्दों द्वारा अभिव्यजित किया गया है। वस्तुतः इन अर्थों में ये शब्द अत्यन्त अप्रिय संकीर्णता व्यक्त करते हैं। लोकगीत सामूहिक चेतना के सहज उद्गार हैं, इसलिए उन्हें आदिम या परवर्ती जातियों के साथ सम्बद्ध देखना अध्ययन की अवैज्ञानिक परम्परा है।

अतः "आदिम जाति के लिए ही 'फोक सांग्स' का अर्थ सत्ता को सीमित रखना संकीर्णता एवं अभिजात्य वर्ग के अभिमान का परिचायक हो सकता है।"¹ लोकगीतों में युग स.माहित है। इसे संकीर्ण दृष्टि से देखना, सर्वदा अन्याय होगा।

(2) लोकगीत का परिचय

लोकसंगीत 'लोक' तथा 'संगीत' इन दो शब्दों के संयोग से बना है। 'लोक' का अर्थ है- जन साधारण और 'संगीत' गायन, वादन तथा नृत्य का मिश्रित रूप है अर्थात् जो संगीत जन-साधारण द्वारा गाया जाता है, वह लोक संगीत कहलाता है। लोक संगीत जन-जीवन का उल्लासमय अभिव्यक्ति है।

लोक-संगीत किसी व्यक्ति विशेष की नहीं अपितु सामान्य जन मानस की अज्ञात रचना है जो अनजाने ही मानव की कल्पना, रागात्मक वृत्ति, भावना तथा जीवन की प्रत्येक गतिविधि में निहित आकर्षण स्वयं उत्पन्न करती हैं।

लोक संगीत को पूर्ण रूप से मौखिक आनन्द की प्राप्ति का साधन माना गया है। लोक संगीत की परम्परा अपने स्वच्छन्द रूप में सम्भवतः इस धरती पर मानव के अस्तित्व के साथ ही प्रवाहित हुई है। स्वच्छन्द रूप से विहार करने वाली तथा जन मानस के मुख से स्वतः निःसृत होने वाली स्वरलहरियों में आबद्ध रचना लोक संगीत है।

भागवतकार ने कदाचित् प्रबन्ध में गीतों का समावेश लोक-गीतों से प्रभावित

होकर ही किया है²²—

विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते चरणभीयुषां संसृतैर्भयात्
'करसोरूह कान्त कामद शिरसि धैहि नः श्री कर गृहम्॥

ब्रजजनार्तिह भ वीर योषितां निजजनस्मय ध्वंसनतिस्मृत।
भज सखे भवत्किंकरी : स्म नो जलरूहाननं चाऊ पर्शया॥

अभिज्ञान शाकुन्तलम् का एक गीत द्रष्टव्य है जिससे यह सिद्ध होता है कि लोक गीतों की शैली में लिखी गई गीतियाँ नाटकों में विशेष प्रभाव उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त की जाती थीं।

अतिणव महु लोलुवों भवं तह परिचुम्बिअ चुअमंजरि।²³

कमल वसइ मेत्तणिव्वेदो महुअर विहमरिआ सि पां कहं॥

(अहो! रामपरिवाहिनी गीतिः) गीत है।

लोक गीतों के सृजन का श्रेय प्रधानतया स्त्रियों को है। विरहिणी स्त्रियाँ प्रिय-विरह में गेय पदों का निर्माण किया करती थीं।²⁴ मानव जीवन के प्रत्येक पहलू से लोकगीतों का सम्बन्ध है। लोकगीतों में वास्तविकता निहित रहती है, आडम्बर के लिए कोई स्थान नहीं होता। लोकगीत को किसी प्रकार के परिचय की आवश्यकता नहीं होती तथा लोकगीतों में समस्त विश्व का परिचय एवं व्यवहार स्वयं ही व्याप्त रहता है।

किसी देश की सांस्कृतिक उन्नति का पता, उस देश के लोक-संगीत के माध्यम से ही चलता है। लोकगीतों का अपना अस्तित्व है। जिसमें देश की उन्नति, विकास, सभ्यता, रहन-सहन, भाषा-बोली, का परिचय लोकगीतों के द्वारा सहज रूप से हो जाता है जो विभिन्न अवसरों पर विभिन्न रूपों में युगों-युगों तक लोक संगीत में गुंजायमान रहती है। लोक गीत समृद्ध संस्कृति की निरन्तरता है और उसके साथ ही अपने वर्तमान को अधिक जीवन योग्य बनाने की प्रक्रिया है। मानव की प्रत्येक अवस्था का उसके विकास एवं उसके प्राचीन इतिहास का स्पष्ट चित्रण लोकगीत के माध्यम से जाना जा सकता है। किसी भी देश-विशेष तथा स्थान-विशेष के जनसमुदाय की प्रचलित परम्परा एवं आचार-विचार के आधार पर लोकगीत स्वतः बन जाते हैं। जनसमुदाय से पृथक् इसका कोई अस्तित्व नहीं है। लोकगीत मानव-मन में उत्पन्न होने वाली भावनाओं की अभिव्यक्ति है।

लोकगीतों में जीवन की प्रत्येक अवस्था, जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक के दर्शनों का पूर्ण चित्रण मिलता है। लोकगीत में जनजीवन के समस्त पक्षों के दर्शन होते हैं और उनके दर्पण में हम विशिष्ट जनसमुदाय की भावनाओं को प्रत्यक्ष देख लेते हैं।

6 / ऋतुकालीन लोकगीतों में शास्त्रीय संगीत के तत्त्व

काव्य रस से ओत-प्रोत, स्वर लहरियों से गूँथे, हृदय की सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को मनोहारी रूप से प्रकट करते हुए विविधता में एकजुटता के साक्षात् दर्शन कराना लोकगीत की विशेषता है।

लोकगीत मानव विकास की गाथा है। इनमें जीवन के सुख-दुःख, मिलन-विरह, उत्तार-चढ़ाव, सामाजिक रीति-कुरीति एवं जीवन की सरल-जटिल अनुभूतियों एवं भावों को सुगमता से अनुभव किया जा सकता है।

लोक गीतों का विस्तार कहाँ तक है, इसको कोई नहीं बता सकता। किन्तु इनमें सदियों से चले आ रहे धार्मिक विश्वास एवं परम्पराएँ कायम हैं। ये हृदय की गहराईयों से जन्में हैं। श्रुति परम्परा से ये अपने विकास का मार्ग बनाते रहे हैं। अतः इनमें तर्क कम, भावना का अधिक महत्त्व होता है। न इनमें छन्द शास्त्र का बन्धन है, न अलंकारों की बोज़िलता। इनमें तो लोकमानस का स्वच्छ, निर्मल, कोमल और पावन भावनाओं का गंगा-यमुना जैसा प्रवाह है।

मौखिक परम्परा से विकसित होते हुए इन लोकगीतों को वेदों के समान माना गया है क्योंकि ये दोनों ही श्रव्य हैं। इनमें गेयतत्त्वों की प्रधानता होती है।

लोक गीतों में मानव मन का इतना विशद चित्रण होता है कि किसी देश की परम्परा, रीति-रिवाज, लोक विश्वास, सामाजिक दर्शन, आर्थिक उन्नति, राजनैतिक वातावरण, ऐतिहासिकता, आदिम सभ्यता, संस्कृति, संस्कार, मानवोचित भावनाओं, कल्पनाओं, अभिलाषाओं, लोक-रीतियों, रूढ़ियों, अन्ध विश्वासों, करुणा, दया, माया, भ्रमता, क्रोध, क्षमा, देवी-देवताओं की आराधना एवं मान्यताओं के जीते-जागते प्रतिबिम्ब इन लोक गीतों में स्पष्ट रूप से प्राप्त होते हैं। यह मनुष्य के जीवन के सुख-दुःख के साथ चढ़ा और उतरा है, अतः लोक गीत सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है।

(3) लोकगीत की परिभाषा

लोकगीत स्वच्छन्द कला है। लोकगीत सामूहिक चेतना के सहज उद्गार हैं। कतिपय विद्वानों द्वारा लोक गीत को परिभाषित किया गया जिनके आधार पर लोकगीतों की गरिमा, ऐतिहासिकता एवं अनिवार्यता को समझा जा सकता है। लोकगीतों में रचे-बसे भावना को बतलाते हुए डॉ. चिन्तामणि उपाध्याय कहते हैं— “सामान्य लोक-जीवन की पार्श्वभूमि में अचिन्त्य रूप से अनायास ही फूट पड़ने वाली मनोभावों की लयात्मक अभिव्यक्ति लोकगीत कहलाती है”²⁵ डॉ० कुंज बिहारी दास ने सरल शब्दों में लोक गीत की स्पष्ट परिभाषा की है “लोक-संगीत उन लोगों के जीवन की अनायास प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है, जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों

से बाहर कम या अधिक आदिम अवस्था में निवास करते हैं।²⁶

इसी क्रम में लाला लाजपतराय ग्राम्य गीतों की सहजता एवं महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं- “लोकगीत हमारे विकास के इतिहास की अमूल्य निधि के समान हैं जातीय हृदय की उथल-पुथल, सुख-दुःख, संयोग-वियोग आदि की भावनाएँ भिन्न-भिन्न प्रवाहों के गीतों के रूप में व्यक्त हुई हैं। देश का सच्चा इतिहास और उसका नैतिक और सामाजिक आदर्श इन गीतों में सुरक्षित है।”²⁷

श्री बाबू गुलाबराय के अनुसार “लोकगीतों के निर्माता प्रायः अपना नाम अव्यक्त रखते हैं और कुछ में वह व्यक्त भी रखता है, वे लोक भावना में अपना भाव मिला लेते हैं। गीतों में होता तो निजीपन ही है किन्तु उनमें साधारणीकरण एवं सामान्यता कुछ अधिक रहती है।”²⁸

कुछ अन्य विद्वानों के द्वारा लोकगीत की स्वाभाविक और सम्पूर्ण परिभाषा की गई है- “लोक गीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र हैं।” तथा “जीवन के सुख, जीवन के दुःख-में है लोकगीतों का बोज”।²⁹

पाश्चात्य दृष्टि से शिक्षित आधुनिक भारतीय विद्वानों ने भारतीय कलाओं का वर्गीकरण और विवेचन भी पाश्चात्य दृष्टिकोण से करने की चेष्टा की है। ‘लोक-गीत’ शब्द अंग्रेजी के ‘Folk Song’ शब्द का अनुवाद है। ‘चैम्बर्स डिक्शनरी’ में Folk Song का अर्थ³⁰ ‘Any song or ballad originating among the people and traditionally handed down by them’.

(ऐसा कोई भी गीत, जिसका उद्गम लोक में हो और जो परम्परागत रूप से पश्चाद्वर्तियों को मिला हो) है।

पाश्चात्य विद्वान ग्रिम का कथन है कि “लोक गीत अपने आप बनते हैं”- “A Folk Song Composes It Self”³¹

पेरी ने लिखा है कि “लोक गीत आदि मानव का उल्लासमय संगीत है”- “The Primitive Spontaneous music has been called folk music”³² आगे इसी क्रम में राल्फ वी. विलियम्स का कथन है कि “लोक गीत न पुराना होता है और न नया। वह तो जंगल के एक वृक्ष जैसा है, जिसकी जड़ें तो दूर जमीन में धँसी हुई हैं, परन्तु जिनमें निरन्तर नई-नई डालियाँ, पल्लव और फल लगते हैं।”

“A Folk- Song is neither new nor old, it is like a forest with its roots deeply buried in the past, but which continually puts forth new branches, new leaves, new fruits.”³³

एक अन्य विद्वान के अनुसार- “लोकगीत हमारे जीवन-विकास के इतिहास के यथार्थ वक्ता हैं। लोकगीतों के रचयिता अज्ञात हैं वेदों के समान इन्हें भी अपौरुषेय

कहा जा सकता है, वेदों का अपौरुषेय ज्ञान लोक गीतों में अब भी जीवित हैं।³⁴

लोकगीतों का अस्तित्व आदिमानव के अवशेष के कारण है। इसका विवेचन स्पष्ट शब्दों में किया गया है—

It is often stated that it was the tune which mattered most. This belief is very far from accurate. The truth is that in their passage from mouth to mouth the words have suffered a succession of minor abrasion and modification. The music is remembered more faithfully because to the folk singer the whole meaning of the song is emotional rather than logical.³⁵

अतः विद्वानों द्वारा की गई परिभाषाओं का सार एक ही है कि लोक गीत का अस्तित्व लोक जन में समाहित है।

(4) लोकगीत का उद्गम

लोकगीतों के उद्गम के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद रहा है। लोकगीत का उद्गम कब हुआ और इनके रचयिता कौन हैं? यह कह पाना अत्यन्त कठिन है कि अमुक लोक गीत कब और कहाँ पैदा हुआ। यह कहना उचित होगा कि “ये स्वतः ही समाज में जन्म लेते हैं और लोक-मानस अथवा जनसमूह इनका जन्मदाता होता है। उनमें समस्त लोक की आत्मा बोलती है।”³⁶

भारत में लोक गीतों की परम्परा अति प्राचीन है। प्राच्य साहित्य में जिन गाथाओं का उल्लेख है, उन्हें लोकगीतों का पूर्व प्रतिनिधि कहा जा सकता है। पद्य या गीत के अर्थ में ‘गाथा’ तथा उसे गाने वाले के अर्थ में ‘गाथिन्’ शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के मन्त्रों में मिलता है। बहुत पहले किसी विशिष्ट राजा की सराहना में लोक गीत समाज में प्रचलित थे, वे ही गाथा नाम से साहित्य के एक पृथक् अंग के रूप में जाने गए। ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रंथों में भी गाथाओं का वर्णन मिलता है। गाथाओं का सम्बन्ध लोक गीतों से बहुत निकट पड़ता है।

वाल्मीकि रामायण में श्रीराम के जन्म के समय तथा श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण-जन्म के शुभ अवसर पर स्त्रियों द्वारा मनोरंजन गीत गाने का वर्णन मिलता है। संस्कृत साहित्य में चक्की पीसना, धान कूटना, ढेंकी चलाना, खेती निराना, चरखा कातना आदि समयों में झुण्ड बांधकर गीत गाने का उल्लेख हुआ है। बारहवीं शताब्दी की एक कवियित्री विज्जका ने धान कूटने वाली स्त्रियों के गीत का बड़ा मनोहारी चित्र प्रस्तुत किया है।

विलासमसृणोल्लसन् मुसललोल दोः कन्दर्पाः³⁷

परस्पर परिखलद् वलयनिः स्वनोद्बन्धुराः।

लसन्ति कलङ्कृति प्रसभकम्पितोरः स्थला।

त्रुटद्गमकसंकुलाः कलभगण्डनी गीतयः॥

अर्थात् स्त्रियाँ धान कूट रही हैं और साथ-साथ गीत भी गा रही हैं। मूसल उठाने और गिराने के कारण उनकी चूड़ियाँ खनक रही हैं। उनके वक्षस्थल हिल रहे हैं। मीठी हुंकार की आवाज़ तथा चूड़ियों की खनक से मिलकर उनके गीत विचित्र आनन्द पैदा कर रहे हैं।

महाकवि कालिदास ने एक ओर तो मेघदूत में यक्ष के घर के वैभव का चित्र खींचा है, दूसरी ओर रघुवंश में धान के खेत की रखवाली करने वाली स्त्रियों द्वारा ईख की छाया में बैठकर लोकगीत गाने का उल्लेख भी किया है।

इक्षूच्छायानिषादिन्यः तस्य गोप्तुर्गुणोदयमा³⁸

आकुमारकथोद्घातं शालिगोप्योजगुर्यशः॥

गोस्वामी तुलसीदास के समय विभिन्न संस्कारों के अवसर पर लोकगीत गाने की प्रथा थी। श्रीराम-विवाह के अवसर पर स्त्रियों द्वारा गीत गाने का उल्लेख मिलता है।³⁹

गावहिं मंगल मंजुल बानी।

सुनि कलरव कल कांठि लजानी॥

गावहिं सुंदरि मंगल गीता।

लै लै नाम रामु अरू सीता॥ (बाल काण्ड)

सोहर छन्द में उन्होंने राम लला नहछू की रचना करके लोक गीतों की महत्ता प्रतिपादित की है। रामचन्द्र के विवाह के अवसर पर स्त्रियों द्वारा गाली गाये जाने का उल्लेख भी तुलसीदास ने किया है।⁴⁰

जैवत देहिं मधुर धुनि गारी।

लै लै नाम पुरुष अरू नारी॥ (बाल काण्ड)

पं. राम नरेश त्रिपाठी ने लोक गीतों की परम्परा को देखकर इस पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि 'वाल्मीकि, भागवतकार, विज्जका और तुलसीदास इनमें से किसी ने यह नहीं बताया कि वे गीत कौन से थे? अवश्य ही वे वही कंठस्थ गीत रहे होंगे जो आज भी हैं। समय के अनुसार मात्र इन्होंने भाषा का जामा बदल दिया है। इनके भाव पुराने ही हैं, भाषा भले ही नई हो।'⁴¹

लोक गीतों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में यदि संक्षेप में कहा जाये तो आदिमानव द्वारा प्रकृति के बनती-बिगड़ती अवस्थाओं में उल्लास एवं दुःख दोनों पहलुओं के आधार पर जो भाव उत्पन्न हुए वही लोक गीत के रूप में परिणत हो गए। सन्तोष और हर्ष ने लोक गीतों को जन्म दिया। आदि मानव ने आनन्दोत्सव में नाचते समय अपनी मण्डली में कुछ लयबद्ध शब्दों का उच्चारण किया, जिसे अन्य ने भी गाकर अथवा उच्चारण करके गीत का नाम दिया। आगे चलकर आदि मानव ने परिश्रम के बोझ को हल्का करने के लिए जो गुनगुनाया उसी से लोक गीतों का जन्म हुआ। अतः लोक गीतों का उद्गम स्थल लोक मानस को कहा जाये तो उचित ही होगा।

लोक गीतों की रचना किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा की गई अथवा किसी जाति

10 / ऋतुकालीन लोकगीतों में शास्त्रीय संगीत के तत्त्व

के सामूहिक प्रयास का परिणाम है। इस संबंध में भी अनेक मत प्रचलित हैं। लोक गीतों की उत्पत्ति किसी व्यक्ति को नहीं, बल्कि इसके निर्माण का श्रेय समुदाय को है यह समुदायवादी मत वाले ग्रिम का कहना है। आगे विराप पर्सी कहते हैं कि लोक गीतों की रचना चरण या भाटों के द्वारा हुई, जो प्राचीन काल में ढोल या सारंगी पर गाना गाते हुए भीख माँगते थे।''

अतः ये कहना उचित ही होगा कि लोक-संगीत का सम्बन्ध, प्रकृति एवं लोकमानस से है। जिस प्रकार प्रकृति के सौन्दर्य को देखकर पंछी अपने आप चहक उठते हैं, वैसे ही भाव-विभोर होकर मनुष्य भी गा उठता है। लोकगीत स्वाभाविक रूप से मानव की मनोदशा को प्रकट करने की मनोहर विधा है। इसमें किंचित भी आशंका नहीं है कि यह कला किसी शिक्षण-प्रशिक्षण के आश्रित नहीं है। यह तो स्वतः लोक मानस के हृदय से प्रज्ज्वलित होकर सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता रहा है और करता रहेगा।

सन्दर्भ

1. संगीत मधुबन, डॉ. राकेश बाला सक्सेना एवं डॉ० मधुबाला सक्सेना, पृ० 142
2. हिन्दी-साहित्य का वृहद् इतिहास, षोडश भाग, श्री राहुल सांकृत्यायन, प्रस्तावना, पृ० 1
3. भाषा-शब्द-कोश, रामशङ्कर सांकृत्यायन शुक्ल 'रसाल', पृ० 1375
4. संस्कृत हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ० 883
5. ऋग्वेद 3/53/12
6. य इमें रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्ट्वं,
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनं।
ऋग्वेद 3/53/12
7. सत्यं वृहच्छत मुग्रं दीक्षा तपो, ब्रह्म यज्ञः पृथिवी धारयति।
सा नो भूतस्य मथस्य पत्यु, सं लोकं पृथिवी नः कृणोतु॥
अथर्ववेद 18/12/1
8. महाभारतम् 1/84/ आदि पर्व से उद्धृत
9. गीता 3/20
10. हिन्दी शब्द सागर, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, (नवम संस्करण), रामचन्द्रवर्मा पृ० 894
11. हिन्दी साहित्य कोश, भाग एक, (पारिभाषिक शब्दावली)।
12. वायु पुराण (प्रथम खण्ड) (सरल हिन्दी भाषा सहित), वेदमूर्तितपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, पृ० 359
13. महाभारत उद्योग पर्व 43/36
14. ऋग्वेद 10/189/2
15. वायु पुराण (प्रथम खण्ड) (सरल हिन्दी भाष्य सहित), (भूमिका से उद्धृत), वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्री रामशर्मा आचार्य पृ० 25
16. वही, पृ० 60
17. पञ्चतन्त्रम् (नीति शास्त्र), श्री विष्णु शर्मा, साहित्य-शास्त्री- पं० रामतेज पाण्डेय, पृ० 513
18. छान्दोग्योपनिषद्, (सानुवाद शाङ्करभाष्यसहित), पृ० 155
19. Arjuna, there is nothing in all the three worlds for me to do, nor is there any thing worth attaining unattained by me. Yet I continue to work. ॥22॥

12 / ऋतुकालीन लोकगीतों में शास्त्रीय संगीत के तत्त्व

- श्री मद्भगवद्गीता (संस्कृत मूल एवं हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद), अशोक कौशिक, पृ० 88
20. श्रीमद्भगवद्गीता, एकादश अध्याय (सं० मू० एवं हि० अ० अ०), अशोक कौशिक, पृ० 263
Yonder space between heaven and earth and all the quarters are entirely filled by you alone. Seeing this transcendent, dreadful form of yours, O Soul of the universe all the three world feel greatly alarmed.
21. राजस्थानी लोकगीत का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ. मदन लाल शर्मा, पृ० 28
22. हाड़ौती लोकगीत, डॉ० सत्येन्द्र, पृ० 36
23. वही० पृ० 38
24. वही०
25. अवधी लोकगीत: समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. विद्याविन्दु सिंह, पृ० 22
26. लोकगीतों के सन्दर्भ और आयाम, डॉ० शान्ति जैन, पृ० 1
27. राजस्थानी लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ० मदन लाल शर्मा, पृ० 12
28. वही० पृ० 31
29. अवधी लोकगीत: समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ० विद्याविन्दु सिंह पृ० 23
30. लोक संगीत अंक, अंक 1 (जनवरी 1966), आनन्द पाल मिहं सुमित्रा, पृ० 9
31. चैती, डॉ० शान्ति जैन, पृ० 10
32. वही०
33. लोकगीतों के सन्दर्भ और आयाम, डॉ० शान्ति जैन, पृ० 2
34. काव्य के रूप, स्व० गुलाबराय, पृ० 123
35. लोकगीतों के सन्दर्भ और आयाम, डॉ० शान्ति जैन, पृ० 3.
36. अवधी लोकगीत: समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ० विद्याविन्दु सिंह, पृ० 24
37. संगीत, लोक-संगीत और वर्ण-व्यवस्था, अक्टूबर 1963, अंक 10, श्री सुनील कुमार 'संगीत प्रवीण' पृ० 26
38. चैती, डॉ० शान्ति जैन, पृ० 14
39. रामचरितमानस, तुलसीदासकृत, पृ० 196
40. वही०, पृ० 217
41. चैती, डॉ० शान्ति जैन, पृ० 14

द्वितीय अध्याय

प्रमुख लोकगीतों का सामान्य परिचय

(1) संस्कार गीत

भारतीय संस्कृति में संस्कारों का विशेष महत्व है। संस्कारों का सम्मिलित रूप ही संस्कृति है। भारतीय जीवन तो जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त संस्कारों से गुंथा हुआ है। मनुस्मृति में संस्कारों का महत्व वर्णित है—

वैदिकैः कर्मभिः पूण्यैर्निषेकादि द्विजन्मताम्

कार्यः शरीर संस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च॥'

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य को इहलोक तथा परलोक में पावन करने वाला गर्भाधान आदि (सोलह) शरीर संस्कार वेद विहित पवित्र कर्मों द्वारा करने योग्य है।

संस्कार जन में प्रचलित मान्यताओं तथा परम्पराओं के माध्यम से आज भी गतिशील है। संस्कारों और धार्मिक क्रियाओं की संख्या के सम्बन्ध में अनेक मत भी प्रचलित हैं। महर्षिभनु, गौतम और अंगिरा ने अपने ग्रन्थों में इनकी भिन्न-भिन्न संख्याएँ दी हैं। कुल संस्कारों की संख्या लगभग सोलह माने गये हैं। जिन में पुत्र-जन्म, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह, गौना और मृत्यु प्रधान संस्कार हैं। “इन अवसरों पर (अन्तिम को छोड़कर) स्त्रियाँ कोकिल कण्ठों में गा-गाकर अपने हार्दिक उल्लास और आनन्द को प्रकट करती हैं”²

षोडश संस्कार वेदों में इस प्रकार माने गये हैं।

1) गर्भाधान, 2) पुसवन, 3) सीमन्तोन्नयन, 4) जाति कर्म, 5) नामकरण, 6) निष्क्रमण, 7) अन्नप्राशन, 8) चूड़ाकर्म, 9) कर्णवेध, 10) उपनयन, 11) वेदारम्भ या विद्यारम्भ, 12) समावर्तन, 13) विवाह, 14) वानप्रस्थ, 15) सन्यास, 16) अन्त्येष्टि।

1. पुत्र जन्म से सम्बन्धित गीत (सोहर): पुत्र जन्म के साथ ही ढोलक पर थाप पड़ती है और नारी कण्ठ से पहले पाँच या सात देवी गीत गाने के पश्चात् “सोहर” गीत के माध्यम से अपनी प्रसन्नता व्यक्त करती है। पुत्र-जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को सोहर कहते हैं “सोहर शब्द की व्युत्पत्ति शोभन शब्द

से ज्ञात होता है। सम्भवतः यही 'शोभन' शब्द 'सोभिलो', 'सोहिलो', 'सोहद' के रूपों में परिवर्तित होता हुआ इस रूप में आ गया है। भोजपुरी में सोहल का अर्थ अच्छा लगना है जो संस्कृत के शोभन से मिलता-जुलता है। सोहर की उत्पत्ति 'सुघर' शब्द से भी मानी जा सकती है जिसका अभिप्राय 'सुन्दर' होता है। पुत्र जन्म गीत सोहिलों के नाम से प्रसिद्ध हैं।¹

छठी: बालक के जन्म के छठे दिन प्रथम बार बच्चे को काजल लगाया जाता है। यह कार्य बुआ द्वारा नेग लेकर सम्पन्न किया जाता है। सोहर गीतों में प्रायः नेग सम्बन्धी नोक-झोंक का वर्णन होता है—

“ननदी जे आई छठिया धरन को, अखिया रचन को, नेगा माँगन को।”

एक अन्य गीत जिसमें बच्चे को काजल लगाने के पश्चात् ननद अपने भाभी से नेग माँगती है पर भाभी उसे नेग देने से मना करती है। ननद-भाभी का वाद-संवाद निम्न सोहर में इस प्रकार है—

ननद—लड़लैबई हो भाभी तोसे कंगना
भाभी—ना देबई हो ननदी तोहे कंगना
कंगना कंगना मत करो ननदी
आवई न देबै तोहें आंगना। ना

ननद—इ अंगना नाहिं तोहरे बाबुल क
मोरे बाबुल जी का आंगना । लड़लैबई

भाभी—इ अंगना नाहिं मोरे बाबुल क
छुए न देबई तोहें पालना। ना....

ननद—इ पलना नाहिं तोहरे भतिज क
मोरे भतिज क पालना। लड़लैबई....

भाभी—पलना-पलना मत कर ननदी
छुए न देबै तोहें लालना। ना....

ननद—इ ललना नाहीं तोहरे भईया क
मोरे भईया जी क लालना। लड़लैबई....

ऐसी मान्यता है कि इस दिन रातभर दीपक जलाकर दुष्टात्माओं से बालक की रक्षा की जाती है। छठी का दीपक नवजात शिशु को देखने नहीं दिया जाता क्योंकि दृष्टिदोष होने का भय होता है।

बरही: बरही के अवसर पर अनेक मंगलगीत, सोहर आदि गाए जाते हैं। सोहर गीत में सास-सुसुर, ननद, चाचा-चाची, बुआ-फूफा आदि रिश्तों को जोड़ कर सोहर

गीत गाया जाता है। सोहर के अनेक प्रकार हैं हर शुभ अवसर पर सोहर गाने का प्रचलन उत्तर प्रदेश में प्रचलित है जिनमें देवी-देवताओं एवं रिश्तों से सम्बन्धित सोहर गाये जाते हैं। सोहर का वर्ण्य विषय अत्यन्त विशाल है। उदाहरण स्वरूप देवी-देवताओं से सम्बन्धित बरही (सोहर) गीत इस प्रकार है—

भंगिया के अमली महादेव भंगिया-भंगिया करे हो।
गौरा भंगिया घोटन अकुलानी त छनतई बिकल भई हो।
सोने क खड़ाऊं पीहन चिटुर पिटुर आवैं
गौर कीन तोरो मुड़वा पिराने
काहे मना अनमन।
नाहीं मोरा मुड़वा पिराने नाहीं मना अनमन
शिवजी हमरे कमरिया मे पिर बोलाई लाओ धगरिन।
इतना बचन सुनत शिव जी मगन भये
शिव जी दुढ़े - बैलवा सबरा
दुढ़न चले धगरिन।
ऊँचे नगर पुर पाटन
अगनवा म चनन
गछरूखवां वही बसे धगरिन ।
अपने आसरे ज बैठी धगरिन
मुड़वा झारे मंगीय सबारे।
पछवां उलट जब देखहिं
महादेव जी थाड़ी रहे।
चलो ओ धगरिन चलो
हमरे महल कुछ काम
अनन तोहें आयें।

धगरिन: चलबै हे शिव जी चलबै कहां तोरी मनबे
शिवजी ले आवो गौरा का डोलिया उही चढ़ चलबे
शिव जी लै आवा लहरा पटोह वही पहन चलबै
महादेव: चलबो ओ धगरिन चलबो नउज नाहीं चलबो
धगरिन झोलिया से मरबई भभूत बबुल उठ खेलिहें।

उपरोक्त सोहर में शिवजी, पार्वती एवं धगरिन (दाई) का वाद-संवाद का उल्लेख किया गया है। यथा- शिवजी को भागै प्रिय है। और गौरा (पार्वती) भागै घोंट

(पीस) रहो हैं। भागै पीसने के बाद छानते समय वो परेशान हो जाती हैं। इतने में शिवजी खड़ाऊँ पहनकर पार्वती जी के पास आते हैं और उनसे उनके सिर में दर्द होने का कारण पूछते हैं। पार्वती उत्तर देते हुए कहती हैं, न हो मेरा सिर दर्द हो रहा है और “न हो मेरा मन परेशान है। कमर में दर्द होने के कारण मैं परेशान हूँ। आप जाकर दाई को बुला लाओ” इतना सुनते ही शिवजी प्रसन्न हो जाते हैं और बैल पर सवार होकर दाई को दूढ़ने चले जाते हैं। वे दाई के पास पहुँच जाते हैं। वहाँ दाई अपने बाल बना रही थी। वह जब पीछे पलट कर देखती है तो महादेव (शिवजी) खड़े होते हैं शिवजी दाई से अपने साथ चलने के लिए कहते हैं परन्तु दाई नखरे करते हुए कहती है, मैं आप के साथ जरूर चलूँगी मगर पहले गौरा (पार्वती) जी की डोली लेकर आइए। लहंगा-चुनरी भी लेकर आइए जिसे पहनकर मैं चलूँगी। तत्पश्चात् शिव जी कहते हैं। दाई तुमको चलना है तो चलो नहीं तो मैं अपने झोले से भभूत निकालकर उड़ाऊँगा तो स्वयं बच्चा पैदा होकर आँगन में खेलने लगेगा। शिव की महिमा निम्न सोहर के अन्तिम पंक्ति में देखी जा सकती है।

बधाई: इसी प्रकार पुत्र जन्म के अवसर पर सतैया पुजना तथा बधाई आदि के गीत भी प्रचलित हैं। यथा- “बधाई हो बधाई ललन जनम भयो नन्द के घरवाँ”

2. **मुण्डन संस्कार से सम्बन्धित गीत:** सांसारिक विश्वास व मान्यताओं के अनुसार गर्भ के बाल जब तक बालक के सिर पर रहते हैं बालक पर तब तक दुष्टात्माओं का भय बना रहता है। जन्म के केवल प्रथम, तृतीय, पंचम, सप्तम अथवा नवम वर्ष में मुण्डन किया जाता है। यह संस्कार प्रायः देव-स्थान, तीर्थस्थान या नदी तट पर होता है। मुण्डन संस्कार को संस्कृत में ‘चूड़ाकर्म’ कहते हैं। मुण्डन संस्कार का एक गीत इस प्रकार है-

पाचें सुपारी हरदी गठिया
अब नऊवा नेवत लेइकै जाए
लालजी ने मुड़न।
अब नउवा ज गये हैं बनारसका
अब पण्डित गये हैं काशी जीका
अब ननदी जी गयी हैं सजन घर को
अब के परीछे यह बार
लालजी के मुड़न में।
अब नउवा जब आई बनारस से
अब पंडित आये हैं काशी जी से

अब ननदी जी आई हैं सजन घर से
अब उनहीं परीछहिं यह बार
लाल जी के मुड़न में।
अब नउवा क देहो सोने क टका
अब पंडित को देहो सीधा दछिना
अब ननदी क पहिनाओं हार
लाल जी के मुड़न में।

3. यज्ञ सम्बन्धित एवं जनेऊ सम्बन्धित गीत: जनेऊ, यज्ञोपवीत का अपभ्रंश है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीन वर्णों का यह महत्त्वपूर्ण संस्कार है। इसके लिए अलग-अलग आयु-सीमा का निर्धारण किया गया है। गृहसूत्रों के अनुसार ब्राह्मण के लिए अष्टम वर्ष, क्षत्रिय के लिए ग्यारहवाँ वर्ष और वैश्य के लिए बारहवाँ वर्ष उपर्युक्त माना गया है। सर्वप्रथम इस संस्कार के अन्तर्गत माता भवानौ का गीत गाया जाता है। प्राचीन काल में चार पृथक-पृथक संस्कार अलग-अलग समय पर किये जाते थे। चुड़ाकर्म, यज्ञोपवीत, वेदारम्भ और समावर्तन। अब ये एक साथ जनेऊ के अवसर पर ही सम्पन्न कर दिये जाते हैं। “यज्ञोपवीत संस्कार के बाद ही किशोर द्विज वेद-पाठ और यज्ञ का अधिकारी होता है। इसके लिए उसे कुछ नियमों और व्रतों का पालन करना आवश्यक होता है।” इसी कारण इस संस्कार विशेष को व्रतबंध भी कहते हैं।

4. विवाह संस्कार के गीत : विवाह पड़ने के समय से लेकर विवाह तक नित्य रात्रि में ये गीत गाये जाते हैं। विवाह गीत वर और कन्या दोनों पक्षों में समान रूप से गाये जाते हैं। वर पक्ष के गीतों में उल्लास और कन्या पक्ष के गीतों में करूणा होती है। वर-कन्या के फेरों पर सप्तपदी गीत गाये जाते हैं। विवाहगीतों में विविध पौराणिक वर्णन भी प्राप्त होते हैं जिनमें शिव-पार्वती, राम-सीता, कृष्ण-रूक्मिणी आदि के परिणय और प्रणय-प्रसंग प्रमुख हैं। कन्या के पितृगृह छोड़ने तथा नये अपरिचित परिवेश में जाने की मार्मिक अनुभूति से ये गीत ओत-प्रोत हैं। निम्न विवाह गीत में बेटी चुपचाप बाग में उदास बैठी है। उसकी उदासी देखकर उसकी माँ कहती है—

बेटी खेल रहीं फूलवा क साथ
काहे तोरा मनवा उदास।
खेलत-खेलत बेटी बाबाजी के पास गई
बाबा छुट जाई अंगना तोहार
इहि से मोरा मनवा उदास।

खेलत - खेलत बेटी मइया के पास गई
मइया छूट जाई तोहरा दुलार
इहि से मोरा मनवा उदास।
खेलत - खेलत बेटी दादुर जी के पास गई
दादुर छूट जाई तोहरा असीस
इहिं से मोरा मनवा उदास।

इसी प्रकार से एक-एक करके सभी रिश्तों को जोड़कर ये गीत गाये जाते हैं।
प्रायः ये गीत बहुत ही मार्मिक होते हैं।

सहाना (बन्ना-बन्नी या बनरा-बनरी) : विवाह गीतों को गाने के पश्चात् 'सहाना' गाये जाते हैं। तेलवई के पश्चात् वरपक्ष में बारात बिदा होने के पहले तक तथा कन्यापक्ष में विवाह के लिए बैठने तक 'सहाना' गाया जाता है। इन सहाना गीतों में वर-वधू की साज-सज्जा, उत्साह तथा जिज्ञासा, परिजनों की प्रसन्नता, आशीर्वाद आदि का वर्णन विशेष रूप से होता है।

निम्न सोहर गीत में सीता और जनक का बाद-संवाद अति सुन्दर है साथ ही राम की चंचलता भी निम्न सोहर में इस प्रकार है—

धोटिनी सीता सरबगुण आगर
बाबा आगे करैं मनुहार।
कहवे मारे बाबा रचले बियहवा
काऊ बरे क नाम।
इतनी बचन सुनी बाबा हो कवन लाल
बोले मधुर बोल
राजा दशरथ घर बेटी तोहरा बियहवा
राम बरेह का नाम।
इतनी वचन सुनि शीतला रानी
मन में ठठी हैं हरसाय
जो मनसा मोरे रही हृदया
सो पुरवई भगवान।
जब श्री राम चन्द्र बगिया में पहुँचे

भटवा लिहेसि बैलमाय
सोने क टकवा तोहे देबई भटवा
मोरे आगे सीता क बखान
राम ही सेअति सुन्दर सीता
दशरथ कुल की अँजोरा
जब राजा राम चन्द्र दुआरे पहुँचे
नऊआ लेहेसि बैलमाय
सोने क कलसा हमें तोहके देबई
नऊआ मोरे आगे सीता क बखान। राम!
जब राजा राम जी मंडप मे पहुँचे
बैइठक बैइठक होय।
सोने के बल्लभ कमर ओटकाय
बइठे है आसन मार
दस सखी अगवां दस सखी पिछवां
सीता धवराहर चढ़ीजाएं
कवन हैं राम कवन राम भइया
कवन हैं भरत भुआल
कवन सब कुँवर कन्हैया
कहि सगं खेलहिं अहैर।
सांवरे राम गोरे राम भइया
गोरे हैं भरत भुआल।
गोरे हैं सब कुँवर कन्हैया
तेहि संग खेलत अहैर।
कवन है साली कवन साली सखियाँ
कवन हैं कामिन हमार।
गोरी हैं साली गोरी हैं साली सखियां
गोरी है सखियां सहेल।

हाथ रंगीले रे गोड रंगीले
 रंगीले है बत्तियों दाँता।
 सारी रात सुहागेक मातक
 ओई है कामिन तुम्हार
 सेनूहरा बहोरै
 चली हैं गौरा दई
 परछन ओटवन नवाई।
 सेनूहरा बहूर गौरा घर के लउटली
 राम बोले हैं एक बोले।
 सीता व गौरा एकई खोखई जनमी
 गौरा सर्वैर सीता गोर।
 इतनी वचन जब सुनी हैं गौरी दई
 मन में उठी हैं रिसियाय
 मड़ए न होवत बाबा जनक जी
 देतेऊँ मैं उलटइ जवाबा।
 राम लखन दोनोऊँ एक कोख जनमें
 राम सर्वैर लछमन गोर।

एक अन्य सोहर में सीता जी के द्वारा पार्वती जी की पूजा एवं सीता-राम के
 संवाद का सुन्दर वर्णन इस प्रकार है -

दस सखी अगवाँ दस सखी पिछवाँ
 दस सखी गोहने जायें।
 गौरी पूजन चली हैं सीता रानी
 हाथ डेलइया मुख पान।
 डाली-डाली फूल धरे हैं
 टोपन - टोपन पान।
 थाली भर-भर पकवान धरे हैं
 गौरी पूजन सीता जाये।

मूरति धोए सीता हार चढावैं
हार गये बिछलाए।
हार के फिसले मूरति मुसकानी
सीता जी गइलिं लजाय
का तूहूँ सीता हो गइलू लजाय
का गइऊ सरमाय।
ये बगिया में दुइ रघुवंशी
वोई है साई तोहार।
आतर मिल गये राम से लछमन
भई बहियाँ बेलमाई।
केकर हऊ तू उलरू स दूलरू
कौने बहिनियां क भाई ।
कौऊन पुर तुहूँ बिहल हव
कहंवा भई ससुराल।
राजा दशरथ जे के उलरू स दूलरू
अपनी बहिनियां क भाई।
राजा जनक जी के घर बिहल बाटी
जनक पुरी ससुराल।
सुनहूँ सखिया सुनहूँ सहेलन
सुनहूँ न एनकर बात।
अबहिं त बाबा जनक घर बिहई के बाटी
कैइसे भइन ससुराल।
जब मोर बाबा हो कुश लैई
संकल्पई, तब बैठहूँ बगले तोहार।
जब मोरे भइया लऊवा
परछिहं तब होईहं तोरी ससुरार।

विवाह संस्कार (वैवाहिक लोकाचार) गीत

विवाह संस्कार के प्रारम्भ होते ही विवाह सम्बन्धी अनेक गीत गाये जाते हैं। निम्न विवाह गीत में माँ-बेटी का वाद-संवाद का वर्णन इस प्रकार है —

ठाणी हरिनियां हरिन बट जोवे
जोवे हरिनवां के बाट।
कब दऊ अइहं हमरा हरिनवां
कब हो वृंदावन जाब।
ठाणी कवन ससुर बाट जोवे
जोहें कवन लाल की बाट।
कब दऊ अइहं कवन लाल पुतवा
कब हम चौउकै जाब।
इतनी वचन सुनी माया कवन दई
बोलहिं मधुरहिं बोल
जिन बेटी हहरऊहं
जिन बेटी भभरऊं
जिन बेटी मनदल गीर।
सझवा के अइहं कवन लाल पुतवा
रतिया चउक पर जाब।
छोटिन हथिया संवारि सिंगारा
छोटइ-छोटइ लगहिं लगाम।
हथिया के ऊपर नचई किरतनिया
अहिं बेटी ससुरतोहार।
छोटेहिं घोड़वा सवारी सिंगारा
छोटे-छोटे लगहिं लगाम।
मोतियन माला अरूझत आवई
होईहन जेठवा तोहार।
छोटेहिं पालकी सवारी सिंगारी
छोटे-छोटे लागहिं कँहार।

माथ मऊर सिर झलकत आवै

वही बेटी स्वामी तोहार।

‘उड़द धोवाई’ का गीत : सात सुहागिने भीगे उड़द (विवाह में बड़ा बनाने के लिए) को धोने का सगुन करती हैं। वर तथा कन्यापक्ष में इससे सम्बन्धी गीत गाये जाते हैं—

छुई क उरदवाकई द सगुनवा बेटी होई शुभकाज।

के हो माई उरदवा भिगोई के हो दराई।

हमहीं बेटी उरदवा भिगोई हमहीं दराई

लैइके देवतन नाम बरवा छनाई।

अनाज छूने का गीत - विवाह से पहले अनाज (गेहूँ उड़द, चने की दाल) आदि छूने की प्रथा है। इसके पश्चात् ही विवाह के सब कार्य सम्पन्न होते हैं। विवाह के पश्चात् इसी अनाज से देवी - देवताओं की पूजा अर्चना की जाती है। निम्न सन्दर्भ से सम्बन्धित एक गीत निम्न प्रकार है—

सुमिरौहं माता सुमिरौहं भवानी

लैऊँ गौरी गणेश जी का नाम।

तोहरे शरण गणेशजी मैं जग रोप्यों

मोरी जग पूरन होई।

सुमिरौहं माता सुमिरौहं भवानी

लैऊँ सत्यनारायण जी का नाम।

तोहरे शरण बाबा मैं जग रोप्यों

मोरी जग पूरन होई।

भक्तवानि का गीत : इसमें देवी-देवाओं को मनाया जाता है कि हे, देवता तुम्हारे ही भरोसे मैंने यह यज्ञ प्रारम्भ किया है मेरी यज्ञ पूरी करना।

जुग-जुग पूजहूँ प्रभु तोहरा चरनवा

इतना वचन प्रभु सुन लीजै, करौं पूरण हमरो कमनवा।

पूजैहिं बैईठी सब देवतन को हमरो जोड़वा

कईद सुफल मोरो यज्ञवा, पूजहूँ हम प्रभुतोहरा चरनवा।

आपन कृपा राखौ देवन, कईद सुफल मोरो यज्ञविधनवा

जुग-जुग पूजहूँ हम प्रभु तोहरा चरनवा।

मंत्री की पूजा : पंडित जी के द्वारा यह रस्म सम्पन्न कराया जाता है। इस अवसर पर सत्यनारायण जी की पूजा की जाती है। तत्पश्चात् सभी औरतें देवी-देवताओं से सम्बन्धित सोहर गाती हैं जो इस प्रकार है—

जो मैं जनत्यूँ सत्यनारायण बाबा
आज मोरे अईहं चंदन चौककवा पुरउतै
तैपर बैठऊँ सत्यनारायण बाबा
ओढ़े पिताम्बर।

हल्दी दूब, तेल से चूमने का गीत : इस रस्म में कुवाँरी और सुहागिन स्त्रियाँ दूब (घास) को तेल और हल्दी में भिगोकर कन्या को सिर से पावें तक छूकर दूब को चूमती हैं। और वर-वधू को आशीर्वाद देती हैं। चुमावन रस्म पर सोहर गाया जाता है जो इस प्रकार है—

साठी क चाउर हालर दूब रे।
चुमईचली हैं कवन लाल धेरिया,
मथवा चूम्ही है चुम दिहलीं असीस रे।
जिये दुलहा दुलहिन लाख बरिस,
अइसे जिये रे जइसे दूजे के चाँद रे।
ऐसी फूलें जइसे फूले के बाग रे॥

इसी प्रकार सात या पाँच लड़कियाँ तेल, दूब और हल्दी से चुमावन का रस्म करती हैं।

नहछू का गीत : वर और कन्या के नाखून काटने और महावर लगाते समय गीत गाया जाता है जो निम्नवत् है—

तु हो करिन मोरी जुग जुग जीवौ।
राखौ कदम पिया जी के द्वार,
जईसै नइहरवाँ, वैइसै हूँ करऊँ ससुरार।
नखवां कटाईल रानी रगनवा रचाईल,
होई, शुभ-शुभ सब मंगल काज।

समधी भात: विवाह के दूसरे दिन कन्या पक्ष के लांग वर पक्ष के पिता को भात खिलाते हैं। इसके बाद कन्या के पिता अपने समधी को उपहार देते हैं।

निहुर के भतवा परोस हो कवन लाल
घोतिया मइल होई जाए, जी हां जी।

धोतिया मड़ल होइहं धोबिया घर जाइ
 समधी सजन कहा पाई, जी हां जी।
 निहुर के भतवा परोसे हो कवन लाल
 धोतिया मड़ल होई जाए, जी हां जी।
 धोतिया मड़ल होइहं धोबिया घर जाइ
 समधी सजन कहा पाई, जी हां जी।

इस गीत में 'कवन लाल' के स्थान पर मामा चाचा आदि रिश्तेदारों का नाम लेकर यह गीत गाया जाएगा।

मटमंगरा : यह रस्म लड़का-लड़की दोनों के घर में होता है। लड़का-लड़की को पहले हल्दी लगाई जाती है। और सभी औरतों को सगुन में चावल, गुड़ और तेल आदि दिया जाता है। और इसी समय मण्डप बनाया जाता है। साथ ही मण्डप के चारों कोनों पर बाँस लगाया जाता है। यह कार्य सात पुरुष मिलकर सम्पन्न करते हैं। इस अवसर पर सभी औरतें मिट्टी खोदकर तालाब से लाती हैं और उसी मिट्टी से चूल्हा बनाती हैं। इस अवसर पर सर्वप्रथम 'माता' गीत गाया जाता है।

पंडित जी से मजाक : विवाह संस्कार प्रारम्भ कराने व सम्पन्न कराने तक पंडित का विशेष महत्व होता है। पंडित जब विवाह कराने के लिए मण्डप में आते हैं तब कन्या एवं वर पक्ष की सभी औरतें और लड़के-लड़कियां पंडित को चिढ़ाते हैं।

ये कोई रस्म नहीं है। लेकिन हास-परिहास के अन्तर्गत गीत कहीं-कहीं पर गाये जाते हैं।

जइसे खेते मा के चक्का वईसे पंडित उचक्का सुन बाभना।

जइसे तिसी पुरपुराये वईसे बाभना बरबराये सुन बाभना।

लावा परिछन- सात भंवर के अवसर पर कन्या और वर पक्ष से दोनों तरफ से धान का लावा आता है। दोनों तरफ से आये लावे को एक साथ मिलाया जाता है इस अवसर पर हँसी मजाक के साथ गीत गाया जाता है।

मोर लऊआ तोर लऊआ एक्कै मा मिलाऊ रे,

मोर नऊनिया क तोर नऊवा क होई जाई बिआह रे।

सात भवैर : यह विवाह संस्कार का सबसे महत्वपूर्ण रस्म होता है। जब तक लड़का-लड़की सात फेरे नहीं लेते तब तक विवाह पूर्ण नहीं होता। इस रस्म से सम्बन्धित एक गीत इस प्रकार है।

पहली भवैरिया की घूमत
 बाबा अबहिं तोहारिन हो।
 दूसरी भवैरिया की घूमत
 बाबू अबहिं तोहारिन हो।
 तिसरी भवैरिया की घूमत
 चाचा अबहिं तोहारिन हो।
 चौथी भवैरिया की घूमत
 मामा अबहिं तोहारिन हो।
 पंचवीं भवैरिया की घूमत
 फूफा अबहिं तोहारिन हो।
 छठईं भवैरिया की घूमत
 मौसा अबहिं तोहारिन हो।
 सतवीं भवैरिया की घूमत
 बाबा भइलु पराई हो।
 मइहे के बीच सब ससूरू
 जंघ बैठावें हो
 मइहे के बीच सब जेठवा
 रहिया बेरावें हो।

कोहबर गीत : कोहबर में दूल्हा-दूल्हन को जब लेकर जाया जाता है तब ये गीत गाया जाता है। तुलसी दास जी ने 'बालकाण्ड' में कोहबर संस्कार का अति सुन्दर वर्णन इस प्रकार किया है—

‘कोहबरहिं आने कुअँर सुआसिनिन्ह सुख पाई कै।’
 अति प्रीति लौकिक रीति लागीं करन मंगल गाई कै॥ (बालकाण्ड)

एक कोहबर गीत इस प्रकार है—

काँस पितरिया क इहेई नान्ह कोहबर
 इहेई नान्ह कोहबर।
 मानिक दीप जलाई हो
 सासु क कोछवा मा बेसन क लैइवा

देखी-देखी हँसेला दमाद हो॥

छूट गई कौइछा बिखर गई लेडूवा

बीन-बीन खाये दमाद हो॥

इसी प्रकार विवाह संस्कार के अन्तर्गत तेलवाई के गीत, संझा जगाना, भोरजगाना, परछीन, बारात का प्रस्थान, अगुवानी, डालपूजा, जोग, पाँव पुजाई का गीत, कन्यादान, पानी गरहन, सिन्दूरदान का गीत, तागपाट का गीत, बाती मिलाई का गीत आदि गाये जाने का प्रचलन है।

विदाई गीत

कन्या की विदाई का पल अत्यन्त भावुक होता है। यह हर्ष, गर्व, मान-सम्मान का मिला-जुला क्षण होता है। यह अत्यन्त हृदय विदारक क्षण होता है। एक विदाई गीत का उदाहरण इस प्रकार है:

कइसे विआहू तोहें देशवा विदेशवा,

कौऊन विधि लिखें प्रभु विधनवां।

माई क करेजवा कटि कटि जाई,

बाबा क अंगनवा सून होई जाई,

कौऊन विधि लिखें हो प्रभु विधनवां।

छूट जाई भइया के सनेहिया,

बाग-बगिचवा सून होई जाई,

कौऊन विधि लिखें हो प्रभु विधनवां।

छूट जाई सखियां सहेलियां,

खेत पनघटवा सून होई जाई,

कौऊन विधि लिखें प्रभु विधनवां।

5. गौना गीत : कन्या की विदाई पहले, तीसरे, पाँचवें या ऐसे ही विषम वर्षों में की जाती थी जिसे 'गौना' कहते हैं। पहले कन्याओं का विवाह कम उम्र में सम्पन्न हो जाता था। इसलिए उन्हें घर के काम काज का अनुभव नहीं होता था। इसलिए कन्या की विदाई तब की जाती थी जब वह थोड़ी समझदार हो जाती थी और गृहस्थी से सम्बन्धित कार्य सीख जाती थी।

इस संदर्भ का एक गीत इस प्रकार है—

माँ: खाइले हूँ रे बेटी खाइले हूँ आपन दही भात रे।

बेटी- धई माई धाई राखो माई आपन दही भात रे

हमत गवनै जाबई होत भोर भिनसार रे।

5. मृत्यु संस्कार से सम्बन्धित गीत : “मृत्यु गीतों की परम्परा बड़ी प्राचीन है। ऋग्वेद में अनेक ऐसे सूक्त मिलते हैं जिनमें मृत व्यक्ति के सम्बन्ध में शोक प्रकट किया गया है।”¹⁶ जिसमें शान्त रस और करुण रस की व्यंजना होती है। प्रायः वृद्ध पुरुष और वृद्ध सौभाग्यवती स्त्री की मृत्यु पर ही धार्मिक गीत गाये जाते हैं।

अतः इस प्रकार विभिन्न संस्कारों के गीतों में हमें भारतीय परम्पराओं और सामाजिक जीवन की यथार्थ झाँकी देखने को मिलती है। इन संस्कार गीतों की ध्वनि जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त कानों में गूँजती रहती हैं।

(2) जाति सम्बन्धी गीत

आर्यों की वर्ण व्यवस्था के शिथिल होते ही जाति व्यवस्था का विकास हुआ। धीरे-धीरे जातियों की कई उपजातियाँ बनीं जिनमें परस्पर रोटी और बेटी का व्यवहार संकीर्ण होता चला गया और शूद्रों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति का हनन होता गया और अब मुख्यतः संस्कारों के अवसर पर ही विभिन्न जातियों के सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्धों का परिचय हमें प्राप्त होता है।

संकीर्ण होती हुई जाति-व्यवस्था में जातियों और उपजातियों के दैनिक आचरण में भिन्नता आती गयी, उनके रहन-सहन, रीति-नीति, आचार-व्यवहार में भी पर्याप्त अन्तर आ गया। इतना ही नहीं उनके नृत्य और गीत आदि में भी पृथक-पृथक विशेषताओं का स्पष्टीकरण हुआ। जाति विशेष के गीत अत्यन्त करुण होते हैं। इन गीतों में वर्तमान में प्रचलित प्रचलन एवं मान्यताओं को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

1. अहीर जाति का गीत (बिरहा) : ‘बिरहा’ अहीरों का जातीय गीत है। ‘अहीर’ जाति के लोग मंगल अवसरों तथा श्रम परिहार के लिए बिरहा गाकर अपने हृदय की रागात्मक अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देते हैं। बिरहे बिरह के गीत होते हैं। ये दो पदों के तथा चार पदों के भी होते हैं। चार पदों के बिरहा को ‘चार कड़ियाँ’ अथवा ‘चौकड़ियाँ’ बिरहा कहते हैं। छोटे बिरहों को ‘छिटका बिरहा’ कहते हैं। एक बिरह गीत में सन्दर्भित है कि जब व्यक्ति का समय अच्छा रहता है तब सभी उसका साथ देते हैं परन्तु विपरीत परिस्थितियों में सभी रिश्तेदार, सगे-सम्बन्धी उससे दूर भागने लगते हैं। जो इस प्रकार से है—

“बनले क सार बहनोइया जगतिया में कोई नहीं आपन”

एक अन्य बिरहा गीत देखिए जिसमें वर्णित है कि, किस प्रकार से हँसते, खेलते, निर्दोष प्राणी, पशु-पक्षी तथा जीव-जन्तु के ऊपर संकट मँडराता रहता है। इस बिरहा गीत में जो सन्देश है वह समाज के प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी अप्रिय घटना से सावधान रहने का सन्देश देता है।

“सुगना करे हो बिहार, हे जंगल के बीचवां।

सुगना करे हो मनमानी, जंगल के बीचवां॥

करै शिकारी हो शिकार, हे जंगल के बीचवां॥

सुगनवा बने हो निसनवा, हे जंगल के बीचवां।

2. धोबी जाति का गीत (बिरहा) : धोबी जाति के गीत को ‘जोड़नी’ कहते हैं। इन गीतों के पद वाद-संवाद के द्वारा ही बन जाते हैं। एक धोबी गाँव के किसी घर की महिला से गंदे कपड़े धोने के लिए माँगता है। धोबी किस तरह उस महिला से कपड़े माँगता है एक उदाहरण देखिए-

धोबी- हे ठकुराईन वईद हमके कपड़ा धोआई।

ठकुराईन- कंहवां क कपड़वा काहे क धोवईया
धोई लुगरि हमरी पतोहिया।

धोबी - हे ठकुराईन, पतोहिया जब जाई नइहरवाँ,
तबहिं के धोई तोहरि लुगरिया।

ठकुराईन- बतिया पते क तु समझायो हो भईया,
गुमनवा नहीं करब अपने पतोहिया।

3. पासी जाति का गीत : पासी गीतों को ‘चनैनी’ भी कहते हैं।

इनके गीत आध्यात्मिक, श्रृंगारिक तथा बिरह भाव आदि से सम्बन्धित होते हैं। आध्यात्मिक भावना से सम्बन्धित एक बिरहा गीत इस प्रकार है जिसमें कृष्ण अपनी बचपन की लीलाओं को बड़े होकर भी नहीं छोड़ पा रहे हैं-

भुलैना लड़कईयां मोहन तोरी,

सोने कौ थारी में ज्यौना परोसाँ,

जेवै की मोरी ओर जेवै बैकईयां

मोहन तोरी

4. कुम्हार जाति का गीत: कुम्हारों के गीतों को ‘कोहरउवा’ भी कहते हैं।

इनका प्रमुख गीत लहरा है। लहरा दो कड़ी का होता है और बड़ा भी।

करला जगतवा क तु निरमनवा,
कब होई तोहरा दरशनवा हो मुरारी।
अब चकवा चलाई के मटिया चढ़ाई देहे,
कोऊन सुरतिका रे मुरतिया गढ़ाई,
कब होई तोहरा दरशनवा हो मुरारी.....।
सुरतिया बनाई लेहे मुरतिया बनाई लेहे,
कोऊन रगनवा से रंगी हो मुरतिया,
कब होई तोहरा दरशनवा हो मुरारी.....।

5. कहरौ जाति के गीत (कहरौवां) : 'कहरौवां' गीतों की लय बहुत मधुर होती है। कहरौवां गीत नृत्य करते समय गाने पर विशेष कर्णप्रिय लगते हैं। इसमें तुकान्त होता है। कहरौवां गीत लम्बे कथानक के भी होते हैं पर छोटे रस पूर्ण गीत भी मिलते हैं। कहरा घर-घर में पानी भरने का काम करते ही हैं साथ ही लड़की की विदाई के पश्चात् लड़की की डोली को ससुराल तक कुशल पूर्वक पहुँचाने का कार्य भी करते हैं। इसी सन्दर्भ से सम्बन्धित गीत इस प्रकार है—

कन्या— कोऊन रगरवा हमसो रे कहरवा।
काहे बाबा क दुआर छोराई काहें करौ रगरवा।
कहरा— बाबुल के अगनवा क तु महिमनवा
विधि विधनवा क एही रचनवा
धई पाथर करेजवा डोलिया उठाई करिनवा।

6. नाइयों का गीत: नाई लोगों का एक विशेष वाद्य नृत्य होता है। इनके सामूहिक गीत गायन को 'नउवा झाकोर' या 'नउवा झाकड़' कहते हैं। यह गीत धीमी गति से प्रारम्भ करके द्रुत लय की ओर क्रमशः बढ़ता जाता है और फिर धीमा हो जाता है। इसी लय में नाई लोग संस्कारों के गीत और ऋतु गीत गाते हैं।

(3) धार्मिक गीत

लोकगीतों में धार्मिक मान्यताओं, को विशेष स्थान प्राप्त है। लोकगीत ही इस बात के साक्ष्य हैं कि आदिमानव युग से ही किस प्रकार नदी, पहाड़, वृक्ष, पृथ्वी और पशु पक्षी समाज में पूजे जाते थे। इन की प्राचीनता भी इन्हीं गीतों के माध्यम से जानी जा सकती है।

पवित्र सरयू नदी का स्नान, तुलसी-पूजन, दान, व्रत, उपवास आदि ही पुत्रवती की सफलता के एकमात्र साधन हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है। अतः आदि मानव युग से ही धार्मिक मान्यताओं का प्रचलन रहा है।

1. त्योहार, व्रत-उपवास, दान, स्नान से सम्बन्धित गीतः

चैत्र रामनवमी : चैत्र रामनवमी को अयोध्या में विशाल मेला लगता है। राम जन्म की प्रसन्नता में सोहर व भजन गाये जाते हैं।

आज दशरथ घर राम जनम लियौ हो

कौशल्या रानी झूमहिं आनन्द भई हो

आज दशरथ

सांवर रूप चनरमा सूरतिया हो

सखी नजर उतारैं अयोध्या नारी हो

आज दशरथ-घर

बरगदाही (वट-पूजन) : 'जेठ' की अमावस्या को वट-पूजन होता है। बरगद की पूजा करके परिक्रमा लगाते समय गीत गाया जाता है। प्रायः इन गीतों में पत्नी अपने पति की लम्बी आयु की कामना करती है। बरगद बाबा से सुहागिन औरतें सिन्दूर, चूड़ी, चुनरी-पियरी, महावर आदि की मनोकामना करती हैं।

बरगद बाबा तोरी फेरी लगाऊँ अमरकरो हो बाबा हमरो सुहगवा

एक फेरी मांगू बाबा सेन्दुरवा, दूसरी फेरी मांगू बाबा चूड़ी, बिदिया

अमर करो हो बाबा हमरो

इस प्रकार सुहागिन औरतें एक-एक फेरे के साथ अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए प्रार्थना करती हैं।

नाग पंचमी : श्रावण मास की शुक्ल पक्ष की पंचमी को नाग पंचमी कहते हैं। बिलों, के पास मिट्टी के बर्तन में दूध भर कर रख दिया जाता है। नागदेवता को खोल-दूध चढ़ाया जाता है। इस दिन नाग को प्रसन्न करने के लिए नाग-पूजा सम्बन्धी गीत और कजली, सावन के गीत गाये जाते हैं। नाग देवता का एक गीत देखिए—

अँजोरे अँजोरे आव हे नाग बाबा हमरे दुआरे,

दइदो इतनो अशिष जुग-जुग, बाढ़ै हमरो अगनवां।

नाग पंचमी के दिन कजरी, सावन गीत भी गाया जाता है जो इस प्रकार है—

पिया छाई घटा घनघोर हो

तरसै जिया मोर हो ना।

जन्माष्टमी : इसमें कृष्ण-जन्म सम्बन्धी सोहर एवं सभी प्रकार के भजन एवं सोहर गाये जाते हैं। ऐसे सोहर गीतों का बाहुल्य है जिनमें कृष्ण-जन्म के उत्साह का वर्णन होता है। बालकृष्ण की छठी-बरही भी मनायी जाती है।

इस अवसर पर ब्रह्मा, विष्णु जन्म के अवसर पर बधाई गाने की प्रथा है। नन्द को सभी गाँव के लोग कृष्ण जन्म के शुभ अवसर पर बधाई देते हैं। जन्माष्टमी के अवसर पर गाया जाने वाला एक बधाई गीत इस प्रकार है—

आज त बधाई बाजे नन्द क भवनवाँ,
कृष्ण जनम सुन ब्रह्माजी आये,
ब्रह्माणी की पायल बाजे नन्द भवनवाँ।
कृष्ण जनम सुनि विष्णुजी आये,
लक्ष्मी जी क कंगना खनके नन्द भवनवाँ।
कृष्ण जनम सुनी शंकरजी आये,
गौरा जी क पायल बाजे नन्द भवनवाँ।
कृष्ण जनम सुनी सब सखियन आई,
वो तो मंगल गावेँ नन्द भवनवाँ।
यशोमति मड़या मोहर लुटावैं
नन्द भवनवाँ।
आज।

एक अन्य सोहर इस प्रकार है—

रिमिकि-झिमिकि देवा बरसैं,
मोतियन आरी चूवैं।
यशोमति चढ़गई गिरी धीराहर,
सोवैहिं सुख निदर।
होत बिहान पौं फाटत,
कृष्ण जनम लिये हो,
तीनोहिं लोक नायक।
बाजै लागै अनन्दा बधईया,
गावै सखी सोहर,

नन्द बाबा मोहर लुटावै,

तीनोहिं लोक के जनमे।

नवरात्र : इन गीतों के गाने का उद्देश्य जगदम्बा की असीम शक्ति का दिग्दर्शन कराना एवं उनके प्रति श्रद्धा युक्त भय की भावना का संचार करना है। यह व्रत चैत्र और आश्विन के शुक्ल पक्ष के प्रतिपक्ष से लेकर नवमी तक रहता है। इसमें भी देवी के गीत, पंचरा गाकर रात्रि जागरण एवं व्रत रखा जाता है।

माँग हूँ वरदान हो मईया के मन्दिरवा भीतर।

माँग हूँ मैं राजा दशरथ जइसन ससुरू,

सासु कौशल्या रानी हो।

देवी के मन्दिरवा

माँग हूँ मैं लक्ष्मण जइसन देवरा,

पतिहिं मागूँ श्री राम हो,

देवी के मन्दिरवा।

माँग हूँ मैं भर हाथ चुरियाँ,

सेनूहुरा भरी मागैं हो,

देवी के मन्दिरवा।

माँग हूँ मैं दस-पाँच पुतवा,

धेरिया माँगौहों नकेली,

देवी के मन्दिरवा।

माँग हूँ जियरा दान हो,

देवी के मन्दिरवा।

तुलसी विवाह : कार्तिक का महीना धार्मिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। पूरे महीने तुलसी का चौरा लीपकर इनका पूजन और दीपक-दान किया जाता है। तुलसी विवाह पूर्णमासी को किया जाता है।

राम विवाह : अगहन की शुक्ल पंचमी को राम-विवाह धनुष यज्ञ होता है। अनेक जनपदों तथा स्थलों पर धनुष यज्ञ मनाया जाता है। इस समय विवाह संस्कार के गीत और भजन गाये जाते हैं। राम विवाह से सम्बन्धित एक सुन्दर गीत इस प्रकार है—

पहिन न राम फूलन क हरवा,
 राजा जनक जी हठ एक ठाने,
 टूटे भा धनुषा धिटै नाहीं रगरा।
 पहिन
 खिंच खिंच बौणा सखिन सब मारै
 सुध नाहिं तन की सरक गयो अँचरा।
 पहिन।
 राम के छुवते धनुष टूट गइलै,
 छिप गये चंदा छिटक गये बदरा।
 पहिन।

माघ स्नान : पूरे महीने (माघ महोने) में प्रायः स्नान किया जाता है। इस माह में मकर संक्रान्ति और माघ की अमावस्या को पवित्र नदियों में स्नान और दान का विशेष महत्त्व है। प्रयाग और काशी में मुख्यतः पूरे माह भक्ति के साथ माघ स्नान किया जाता है। उत्तर-प्रदेश के साथ अन्य कई राज्यों में भी इस दिन दान-दक्षिणा देने का प्रचलन है।

2. विभिन्न देवी-देवताओं से सम्बन्धित गीत

देवियों के गीत

माता भवानी के गीत : किसी भी शुभ कार्य में सर्वप्रथम भवानी माता के गीत गाये जाते हैं। पुत्र-जन्म, मुण्डन और जनेऊ तथा पूजा-यज्ञ के अवसर पर इसे सोहर छंद में गाया जाता है। माता भवानी के पाँच गीत गाने के पश्चात् ही अन्य प्रकार के गीत गाये जाते हैं। एक देवी माता का गीत देखिए जिसमें देवियों को मनाने का प्रयास किया जा रहा है-

उड़ जाओ सुगन गंगा पार मनाई लावौ देविन को।
 हरे-हरे दोना मगध क लड्डू,
 उड़ जाओ सुगन गंगा पार खिलाई लावौ देविन को
 उड़ जाओ

(इसी प्रकार से खाने-पीने, श्रृंगार, वस्त्र इत्यादि को जोड़कर इस गीत को गाया जाता है)

एक अन्य देवी गीत देखिए—

तू त मईया जाइके बसु परवत पर

सुधिया कहिया लैबू ना।

सोने के थाली में जेवना परोसऊं,

तू त मईया जाइ के बसु-परवत

पर जेवना कैइसे जेइबू ना।

तू

सोने के घड़िया गंगा जल पानी

पनिया कैइसे पियबू ना।

तू.....

लौंगा इलाईची का बीड़ा लगाऊँ।

पनवा कैइसे खाबू ना।

तू.....

फूल-चुनि-चुनि सेज लगाऊँ

सेजिया कहिया सोइबू ना।

तू

एक और अन्य देवी गीत इस प्रकार है—

कष्ट क हरईया तूही मोरी मईया

महल दियो दो महिला दियो और दियो अटरिया

एक मइया अइसा दियो अंगना में खिलवईया।

कष्ट

गाय दियो बछड़ा दियो और दियो बूहईया।

एक मइया अइसा दियो दूध क पिवईया।

कष्ट

शीतला माई के गीत: लोक वर्ग में अनेक देवी-देवता रोग नियन्त्रण रूप में प्रसिद्ध हैं, जो रोगों के अधिष्ठाता हैं। और जिनको प्रसन्न करने से तथा जिनकी उपासना करने से उनका प्रकोप नहीं होता। चैत और सावन की सप्तमी को शीतला देवी की पूजा की जाती है। चैचक की देवी शीतला माता मानी जाती हैं। चैचक होने

को हमेशा लोक में शीतला का दरसना ही कहा जाएगा। शीतला देवी का लोक वर्ग में बहुत महत्व है और किसी व्यक्ति के चेचक होने पर शीतला देवी के नाम से अनेक अनुष्ठानादि भी किए जाते हैं⁷

तुलसी माता : तुलसी की पूजा का प्रचलन भी लोक वर्ग में बहुत प्रचलित है। उत्तर भारत में इसका प्रचार लोक वर्ग में बहुत व्यापक है और यहीं से दक्षिण भारत में उसका प्रचार हुआ है। लोक वर्ग में तुलसी विष्णु की पत्नी समझी जाती हैं। इसके संबंध में प्रचलित लोक गाथा भी है। लोक में तुलसी विवाह की प्रथा भी प्रचलित है। कार्तिक मास में तुलसी का विशेष पूजन होता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने वैशाख महात्म्य में तुलसी दल के अर्पण का लोक प्रचलित महत्व बताते हुए लिखा है - वैशाख में तीनों काल में तुलसीदल अर्पण से कृष्ण मनुष्य को जनम-मरण से मुक्ति देते हैं।⁸

सरस्वती माता : प्रत्येक राज्यों, प्रान्तों में सरस्वती माता की वंदना होती है। सरस्वती माता का सम्बन्ध शिक्षा, गायन-वादन, नृत्य, ताल तथा सभी कलाओं से जोड़ा जाता है। इन्हें वाग्यदेवी कहा जाता है। इनकी स्तुति को देवी-देवता से लेकर जनसाधारण में श्रेष्ठ माना गया है। एक सरस्वती माता का गीत इस प्रकार है—

हे शारदा माई दइदौ वरदनवाँ सब अज्ञानिन को तारो माँ
हे शारदा ।
मईयां बुद्धि देवौ अऊर देवौ ज्ञनवाँ।
हे शारदा मईया दइदौ इतनो वरदनवाँ।
हे शारदा।
कलम पूजहूँ अऊर पूजाहूँ दवतवा
हे शारदा माई हमको दईद विद्या ज्ञनवाँ
हे शारदा॥

देवों के गीत

राम : मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री राम की स्तुति तथा उनकी लीलाओं, उनकी मर्यादाओं का गुणगान सभी प्रकार के लोकगीतों में प्रमुख विषय रहा है। निम्न गीत देखिये जिसमें केवट का प्रेम और उसकी भक्ति का वर्णन किया गया है।

धोआई ल हे प्रभु आपन चरनवाँ,
तोहरे चरन क धोवत सुख पाई,

काटे के नइया में आई जाई परनिया,

धोआई।

कृष्ण : कृष्ण लीलाओं का युगों से जन-जन पर प्रभाव रहा है। उनकी क्रीड़ाओं का वर्णन लोकगीतों में प्रायः देखा जाता है। भक्त का कहना है कि यदि श्री कृष्ण नन्दलाल का गुणगान नहीं किया तो जीवन का क्या अर्थ है।

प्रस्तुत लोकगीत में कृष्ण भगवान के बाल लीला, रास लीला, सुदामा से उनकी मित्रता का भाव, द्रोपदी का चीरहरण तथा अर्जुन को गीता का ज्ञान देने का वर्णन इस गीत में बहुत ही मार्मिक रूप से प्रस्तुत किया गया है। यथा—

अपने मोहन के राख सम्भार के हो

उत्त जमुना किनारे सतावै हमैं,

हाय, गोपियन क गागर गिरावै लागैं,

खाये सिखहर से माखन चुराई के हो।

अपने

गये निर्धन सुदामा प्रभु जी के धाम,

देहेन कृष्ण मुरारी अभय धन का दान,

देहेन तन से पिताम्बर उतार के हो।

अपने

रोएँ अर्जुन खड़े, कइसे मारी हम बान,

हमरे अगवाँ खड़े मोरे प्रिय अऊर प्रान,

तबहिं कृष्ण जी गीता का ज्ञान दियो रे।

अपने ।

शिव : लोक जीवन में शिव का सर्वाधिक महत्त्व है। महाप्रभु, आदिदेवता से सम्बन्धित पौराणिक आख्यानों की बहुलता है। शिव का क्रोध, दया, क्षमा का वर्णन लोकगीतों में मिलता है। यथा—

“शंकर जी होय भोले-भाले, जटा के बाल काले, गले में नाग डारे हैं।”

हनुमान : नागपंचमी के पश्चात् मंगल को ‘बुढ़वा मंगल’ कहते हैं। उस दिन हनुमान जी को घी और मेवा दूध में सानकर पूजे चढ़ाकर गीत-भजन गाये जाते हैं। एक गीत में हनुमान के बल तथा उनके द्वारा किये गये पराक्रमों का वर्णन किया गया है। जो इस प्रकार है—

जै जै हनुमान बिरद बकां
सांचें महावीर बिरद बकां
को तेरी माता कौन पिता है।
कौनै तेरौ नाम धरायौ हनुमन्ता^१।

सत्य नारायण : प्रायः सत्य नारायण की कथा के अवसर पर सोहर गीत गाया जाता है। सोहर मंगल का प्रतीक है। अतः हरछठ, गणेश चौथ और सत्यनारायण की कथा के अवसर पर इस मंगलगीत का विधान है। हवन के समय सत्यनारायण जी से सम्बन्धित गीत गाये जाते हैं। मुख्यतः यह गीत सोहर छंद में पाया जाता है। यथा—

चन्दन केरि लकड़िया
कपूरवन बासल,
होमिया होला,
कवन लाल अंगना
धुवना आकाशहिं जाये।

(कवन लाल के स्थान पर घर के सभी व्यक्तियों का नाम लेकर यह गीत गाया जाता है।)

सूर्योपासना : सूर्योपासना वैदिक काल से ही प्रारम्भ हो गयी थी। सूर्य की उपासना के असंख्य लोकगीत मिलते हैं, सूर्य इतने कुपालु देवता हैं कि उनकी प्रार्थना करते ही मनोरथ की सिद्धि हो जाती है। रविवार के व्रत में सूर्य के गीत गाये जाते हैं। यही कारण है कि उगते सूर्य से मनौतौ माँगने की बात बार-बार कही गयी है—

“सुरज देव कृपा धारो सुनी अंगनवा हमार।

पिजहूँ जलमा डारी हरदी, चन्दनए फूल, अझतई॥ सुरज

विनय करऊँ दोऊ हाथ जोर आपन अशीष धारो अंगनवा हमार।

देहो सुरज देव धन घर-बार, एक हूँ ललन दईव झोलिया हमार॥

सूरज...

लागुरिया : ‘लागुरिया’ एक लोक देवता हैं उनको प्रसन्न करने के लिए जो गीत गाये जाते हैं उन्हें ‘लागुरिया’ कहते हैं। इन गीतों में हमें लागुरिया के तीन रूप मिलते हैं वात्सल्य, श्रृंगार और वीर। जब असुर माता की लकड़ियों को बीखेर देता है तब लागुरिया ही असुर में नौ कीलें ठोकता है। इसी वीरता को बखानते हुए स्त्रियाँ कहती हैं कि—

“घर की दुविधा मत करे द्वारै पै सवाय दूँगी लांगुरिया वीर।”

लांगुरिया का यह वीर रूप हमारा ध्यान यक्ष-परम्परा की ओर आकर्षित कर देता है। माँ के गीतों में लांगुरिया का विशेष स्थान है। लांगुरा देवी का प्रिय पुत्र है, ऐसी लोक धारणा है। देवी के गीत के साथ लांगुरिया गाना ब्रज क्षेत्र की विशेषता है।

एक लांगुरिया गीत इस प्रकार है—

देवी मड़िया के भवन में घुटूरून खेलें लांगुरिया
खेले लांगुरिया तुमाई सों खेलें लांगुरिया
छोटी सी किरपान हाथ में छोटी सो तिरसूल
बिफर - बिफर के लांगुर खेले नभ से बरसे फूल
देवी तेरी मैल में एक लम्बों पेड़; खजूर
ता पर चढ़कर लांगुर हेरे मड़िया कितनी दूर।

सैयद : ब्रजमण्डल के बहुत से गांवों में सैयद की पूजा का प्रचार है। सैयद की पूजा मजार पर होती है। जिसमें हिन्दू और मुसलमान सभी जातियों के लोग सम्मिलित होते हैं। सैयद की जाति दी जाती है और जागरण भी कराया जाता है। जागरण में ‘मीरा साहब’ की तारागढ़ की जाति दी जाती है और जागरण भी कराया जाता है। जागरण में ‘मीरा साहब’ की तारागढ़ से लड़ाई का वर्णन इस प्रकार है—

तारागढ़ की सकति जौ आई, लै गयी ऐ चमेली कौं हाऊ जी।
हिन्दू चढ़ामे छेरी-बकरी, जापै तुरक चमेली के फूल जी॥

3. प्रकृति-पूजा से सम्बन्धित गीत

प्रकृति पूजा के गीतों का भी निम्नलिखित वर्गीकरण किया जा सकता है—वृक्ष, नदी, पशु, जीव। प्रकृति की अनुकम्पा से ही पृथ्वी का संचालन शान्तिपूर्वक हो सकता है। प्रकृति का विकराल रूप मनुष्य, जीव-जन्तु अथवा सम्पूर्ण जगत में उथल-पुथल उत्पन्न कर देगा। पृथ्वी को शांत रखने के लिए प्रकृति की उपासना की जाती है। प्राचीन काल से ही प्रकृतिपूजा का विधान किया गया है।

वृक्ष : वृक्षों के प्रति हमारी भावनाएँ, सम्मान और श्रद्धा युक्त मनोभाव का गहरा सम्बन्ध है। ऋग्वेद के अनेकों मन्त्र वृक्षों की स्तुति के हैं¹⁰। इसी प्रकार अथर्ववेद में अनेक सूक्त हैं, जिनमें स्पष्ट उल्लेख है कि वट और पीपल आदि वृक्ष जहाँ होते हैं वहाँ व्याधियाँ नहीं टिक सकतीं। ये वृक्ष ईश्वरीय शक्ति से युक्त हैं, तभी सदैव हरे-भरे रहते हैं¹¹।

वाल्मीकि रामायण के अरण्यकाण्ड में वाल्मीकि जी ने भी विविध वृक्षों तथा

पुष्पों का सुन्दर वर्णन किया है¹²। लोक-जीवन में तुलसी, पीपल, नीम, बेल, बरगद, आँवला आदि की पूजा की जाती है।

तुलसी : तुलसी वृक्ष की पूजा फलदायिनी हांती है। कार्तिक पूर्णिमा को शालिग्राम से तुलसी का विवाह रचाया जाता है। छप्पन प्रकार के भोग भी प्रभु तुलसीदल के अभाव में स्वीकार नहीं करते। पर मात्र तुलसीदल चढ़ा देने से वे प्रसन्न हो उठते हैं।

पूजहूँ तोहें हम हरि पटरानि नमो नमो

छप्पन भोग हरि आगे, बिन तलसी के हरि न माने नमो नमो।

नीम : नीम वृक्ष में शीतला देवी का निवास माना गया है। इसीलिए नित्य नीम में जल चढ़ाने और पूजा करने से देवी प्रसन्न हांती हैं। वृक्ष पूजन के अन्तर्गत पीपल, आँवला आदि को भी पूजा-अर्चना के गीत गाये जाते हैं।

हे शीतला देवी तोहें पुजहूँ माई

नीमवा क पेड़वा दुअरवा बसैहूँ माई

संझवा सवेरवा तोहें पुजहूँ माई

हे

दईद वरदान फूले-फूलै अंगनवाँ माई

छप्पन भोग लगाऊँ तोहे शीतला माई

हे

कहा जाता है कि नीम के पेड़ में ही शीतला माई का निवास है। यही कारण है कि नीम के पेड़ को अत्यन्त पवित्र माना जाता है। नीम के पेड़ से सम्बन्धित एक अन्य गीत देखिये। जिसमें मईया और मालिन एक-दूसरे से वाद-संवाद कर रही हैं। यथा—

नीमिया क डरिया मईया नावलि हिलौलवा

हो की झूली-झूली ना।

मईया गावड़ लागीं गीतिया

हो की झूली-झूली ना।

झूलत-झूलत मईया लागी गई पियसिया,

कि बूढ़ एक ना।

मालिन जल अचवाओ

हो कि बूंद एक ना।
कैईसे की जल अचवाओं मोरी मईया,
कि गोदिइया हमरे ना,
बाटै सेवका तोहार मईया,
गोदिया हमरे ना।
सेवका सोवाव मालिन पाटे के खटोलवा,
हो कि बूंद एक ना,
हमें जल अचवाओ मालिन,
बूंद एक ना
पाटे क खटोलवा मईया टूट फूटी जईहं,
हो कि भूईयां लोटे ना,
मईया सेवका तोहार भूईयां लोटे ना।
सेवका सोवाव मालिन सोने क खटोलवा,
कौ बूंद एक ना,
हमें जल अचवाओ मालिन,
बूंद एक ना।
एक हाथे लिहिनं मालिन सोने के घड़ेलवा,
दूसर हाथे ना।
लिहिनं रेशम पाटे डोरिया,
कि बूंद एक ना।
एक बोर बोरली दूसर बोर ना
मईया जल अचवाओ,
कि बूंद एक ना
जैइसे मालिन तू हमै जुड़वाऊ
वैईसे-वैईसे ना,
तोहरी धेरिया जुड़ाए मालिन,
वैईसे-वैईसे ना।

तोहरी पतोहिया जुड़ाएं,
वैईसे-वैईसे ना।

नदियाँ : ऋग्वेद के 10वें मण्डल में 'नदी सूक्त' के नाम से एक सूक्त है जिसमें नदियों की स्तुति की गयी है। सूक्त के पंचम मंत्र में कुछ नदियों के नाम का उल्लेख है।

इमे मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रिस्तोग रूचता परूष्णिग्या।
असि किया मरूवृद्ये वितस्तयार्जाकीयं शृणुध्या सुषोमया¹³॥

इस मन्त्र में तीनों नदियों गंगा, यमुना, सरस्वती का उल्लेख हुआ है।

गंगा : गंगा स्नान का भारतीय परम्परा में विशेष महत्त्व है। गंगा में देवी-देवता भी स्नान करने आते हैं। गंगा स्नान से तन-मन दोनों ही पवित्र हो जाते हैं।

गंगा के घटवा पे लागई हो मेलवा,
चल सब जन गंगा नहावन के।

सरयू: लोक कवि ने सरयू को सबसे पुनीत कहा है। सब तीर्थों में प्रयाग महान है क्योंकि यहाँ तीन पवित्र नदियों का संगम है। नदियों में सरयू सर्वाधिक पुनीत है। सब देवों में ब्रह्मा बड़े हैं और सब नारियों में सती सीता हैं।

यमुना : यमुना नदी का वर्णन कई गीतों में हुआ है। यमुना यमराज की बहन है। यम द्वितीय के दिन यमुना और यम की कथा कही जाती है। गंगा के साथ ही प्रायः यमुना का वर्णन भी हुआ है—

“गंगा जमुनवा कै अवघट घटवा.....।”

पशु : लोक जीवन में गौ माता का बहुत महत्त्व है। अतः गाय की पूजा के गीत स्वाभाविक हैं तथा उसकी महिमा और उपयोगिता का वर्णन अनेक गीतों में हुआ है।

‘गइया मइया के मैं सुमिरौ, कीरति सबसे बड़ी तोहारि।
तूँ ही पाला लरिका बच्चा, तुहीं तो हो पुरखिन हमरि॥

नाग : नाग को देवता मानकर पूजा जाता है। नाग-नागिन का वर्णन अनेक गीतों में मिलता है। नाग देवता की पूजा करने से घर में सुख-शान्ति बनी रहती है। कहा जाता है नाग देव की अर्चना करने से किसी भी प्रकार की विपत्तियों से छुटकारा मिल जाता है। सुहागिनें नाग देवता का आशिष पाकर सौभाग्यवती हो जाती है।

(4) खेल सम्बन्धी गीत

1. लोरी गीत: मानव जन्म से ही संगीत प्रेमी है। इस बात का प्रमाण है बच्चों के खेल के गीत और लोरियाँ। लयात्मक ध्वनि शिशु को भी सुखद लगती है। प्यार

से भरी थपकियों के साथ बच्चे को सुलाने और बहलाने के ये गीत शिशु का मानसिक और शारीरिक विकास करते हैं। लोरियों का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। जब आदिमानव के हृदय में वात्सल्य का संचार हुआ होगा तभी से लोरियों का जन्म हुआ होगा। इन लोरी गीतों में माँ का स्नेह, सारी चेतना समाहित होती है—सारी दुनिया में आग लगे तो क्या, उसका लाल सुख से सो जाए—

अरे पवनवाँ धीरे चलो,
हमार ललनवाँ झूलै झूलनवाँ।
अरे पवनवाँ गति धीमे राखौ,
हमरो ललनवाँ देखई सपनवाँ न्यारौ।

2. बालकों (लड़कों) के खेल के गीत: खेल मनोरंजन तथा सीखने के माध्यम हैं। खेल बालक की अतिरिक्त ऊर्जा का निष्क्रमण करते हैं जिससे बालक के स्वास्थ्य का विकास होता है। स्वयं खेलते हुए बच्चे जो गीत गाते हैं उनमें कुछ निरर्थक और कुछ सार्थक शब्द होते हैं। निरर्थक शब्द योजना का उदाहरण देखिए—

‘लाली लाली पुरिया, घिउ में चोपरिया,
हम खाई कि भौजी खायँ, धरे कान मरोरिया।

गुल्ली-ठण्डे का गीत: गुल्ली-ठण्डा बालकों का प्रिय खेल है। एक डण्डे से लकड़ी की बनी गुल्ली पर चोट करते हैं, वह यदि छिटक कर दूर चली जाती है तो गाते हैं—

गुल्ली मारब तोहरे ननीयऊरे की ओर।
गुल्ली हैरत हैरत बचवा होई जाई भोर॥

कबड्डी : कबड्डी के अनेकों गीत हैं। कबड्डी खेलते समय साँस को रोकना पड़ता है, जब तक कि विपक्षी पाले के किसी सदस्य को छू न ले, या अपने पाले में वापस न आ जाये।

‘हे कबड्डी दै कबड्डी लै पाला के छूई,
बाल न बाका करि सकै जो कोऊ बेरी हाई॥

इन कबड्डी गीतों में प्रायः निरर्थक एवं सार्थक दोनों प्रकार के शब्द प्रयोग होते हैं।

डण्डी पाती: उत्तर प्रदेश के जौनपुर जनपद के एक गाँव “खपरहाँ” में इस खेल को ‘चिल्हड़ पाती’ कहा जाता है। इस खेल में एक बालक डण्डी लेकर अपनी टाँगों के बीच से पीछे की ओर फेंकता है। चोर बना बालक जब तक इस डण्डी को

यथा स्थान (गोले) में रखता है तब तक सब लड़के-लड़कियाँ पेड़ पर चढ़ जाते हैं। और पेड़ पर चढ़े लड़के उतर कर उस डंडे को छूने का प्रयत्न करते हैं। इस खेल में बालकों की संख्या निर्धारित नहीं होती। खेल में बेइमानी न हो इसके लिए कसम (किरिया) चढ़ाई जाती है।

जे करी बेईमानी ओकर मरी जाई नानी।

लेजूरी गिरी जाई इनरवा जे भरी पानी॥

इस प्रकार बालकों के खेल के गीतों की संख्या अनेक हैं। कोड़वा बदाम, कोनूल, बणवा सूर इत्यादि।

3. बालिकाओं (लड़कियों) के खेल के गीत : बालिकाएँ अधिकतर गुड़िया के खेल ही खेलती हैं, जिसमें गृहिणी के क्रिया-कलापों का अभिनय होता है जिसमें समयानुकूल सोहर, विवाह, गारी, नाच के गीत आदि रहते हैं। कुछ गीत बालक-बालिकाएँ दोनों ही गाकर खेलते हैं।

‘सखी जोड़ का गीत: बालिकाओं को ‘सखी जुगाने’ (सखी बनाने) में बहुत आनन्द आता है। जिन कन्याओं को परस्पर सखी बनाना होता है, वे वृत्ताकार में खड़ी हो जाती हैं तत्पश्चात् एक दूसरे को मिष्ठान या पान खिलाने के बाद ये जनम-जनम के लिए एक दूसरे को सखी हो जाती हैं। ये लोग अपनी सहेली का नाम कभी नहीं लेती।

हे सखी आज खाई ल किरिया,

बलम आवें चाहे चढ़ावें पियरिया,

नाहिं बिसरे सखि सहेलियां,

नाम न पूछौ एक का दूजो से,

बाढै सखि जुग जुग तोहरी उमरिया।

4. ‘तुक’ शब्दों का उच्चारण सम्बन्धी गीत : कुछ खेल के गीत ऐसे होते हैं जिनके उच्चारण में बाधा होती है। बालक इस प्रकार के गीतों या शब्दों के उच्चारण शुद्ध करके मनोरंजन करते हैं—‘तुक’ बाजो भी ऐसे गीतों में बहुत होती है।

जैसे - तोहरि टंगिया में काटै माटा,

तोरे बाबा पिसावै आटा

तोरी माई पियावै माठा।

5. जल-क्रीड़ा के गीत : लड़कियाँ तालाब, पोखर या नदी में जल-बिहार के समय जल गीतों को गायकर क्रीड़ा करती हैं। जल के आँगनी से हवाकर फिर को

पीछे करके जल में डुबकी लेते हुए कहती हैं—

“ओह पार खड़ा बा ओकर छोखा,
नाहीं जाई देबे सखी तोहें ओई ओखा।

(5) प्रणय सम्बन्धी गीत

प्रणय सम्बन्धी गीतों के निम्नलिखित भेद किये जा सकते हैं। जो इस प्रकार हैं।

1. नकटा — बारात की निकासी के उपरान्त वरपक्ष के समस्त पुरुष वर्ग के बारात में चले जाने के पश्चात् घर में केवल स्त्रियाँ ही रह जाती हैं, उस रात स्त्रियाँ घर पर अनेक प्रकार के शृंगारात्मक अभिनय करती हैं जिन्हें नकटा कहा गया है।

2. पूर्वी : यह गीत उत्तर-प्रदेश के पूर्वी क्षेत्र में अधिक गाया जाता है इसलिए इसका नाम ‘पूर्वी’ पड़ गया। इसको लय का माधुर्य श्रोता को भाव विभोर किये बिना नहीं रहता। “ये गाने द्रुत गति से गाये जाते हैं। गाते समय ऐसा मालूम होता है कि एक शब्द दूसरे शब्द को धक्का देकर आगे बढ़ रहा है।”⁴

3. झूमर : झूमर भी प्रणय भावना प्रधान गीत है। इनके गाने का कोई अवसर नहीं होता, बल्कि ये प्रत्येक प्रसन्नतादायक अवसर पर या मनोरंजन के लिए गाये जाते हैं। झूमर मस्ती का गीत है अतः इसे स्त्रियाँ झुण्ड में झूम-झूम कर गाती हैं।

4. लचारी : ‘लचारी’ गीतों में प्रायः विवश स्त्रियों के उदगार का चित्रण होता है। निम्न गीत में एक स्त्री बहुत दिनों से अपने माता-पिता के घर नहीं गई, क्योंकि उसका पति उसे जाने की आज्ञा नहीं देता। स्त्री की विवसता का चित्रण इस गीत में इस प्रकार है—

हमरो बलमा हमका न जावै दें नइहरवा।
माई क सुरतिया बिसर गये,
बाबू क अंगनवा बिसर गये,
बिसरगये भाई भतीज,
हमरो बलमा।
है, प्रभु हमरी सुन ल अरजिया,
कौनों कँहरवा आवै, आवै नउवा,
नइहरवा के हमरे दईदे संदेशवा,
हमरो.....

5. विदेसिया : गाँव के स्त्रियों का भय विदेसिया गीतों में देखा जा सकता है। इन गीतों में पति के विदेश चले लाने पर पत्नी व्याकुल भी है साथ ही उसे यह भय

भी है कि कहीं उसका पति उसे छोड़कर किसी अन्य नारी से विवाह न कर ले। निम्नगीत में पत्नी की व्याकुलता एवं भय का संगम इस प्रकार है—

जब पिया छोड़के जाब विदेशवा,
कईसे काटब बारह महिनवा।
तुत पिया जाइके बसहुं विदेशवा,
कईसे काटब हम दिनवां रतियां।
अइसन करनी कर जिन सईयां,
हमका छोड़ कौनऊँ अऊर स्नेहिया।

6. गज़ल : प्रणय सम्बन्धी गीतों के अन्तर्गत गज़ल का विशेष महत्व है। गांव के नर-नारियाँ किसी खुशनुमा मौसम में गज़ल गाती हैं। इन गज़लों के अनेक सन्दर्भ होते हैं। एक उदाहरण इस प्रकार है¹⁵—

धोखा गरूर का जब बरबाद हो गयल,
असली सरूप तब तोहार याद हो गयल।
कलहन पुरान - बेद पै सुनली न कोई का,,
ठोकर ज लगल, आपै तब याद हो गयल।
पचड़ा में पड़के गइली रस्ता तोहार भूल,
रस्तौ जौ बंद देखली, तब याद हो गयल।

(श्री गिरिजाशंकर पांडेय द्वारा रचित)

श्रृंगात्मक भाव का एक गज़ल देखिए¹⁶

आँख में आके बस गइल केहू।
प्राण हमरो परस गइल केहू॥
हमरे लीपल पोतल अँगनवां में,
बनके बदरा बरस गइल केहू॥

(श्री दिनेश भ्रमर द्वारा रचित)

एक रूबाई भी देखिए-¹⁷

मन के बछरू छटक गइल कइसे,
नयन-गगरी ढरक गइल कइसे।

हम ना कहनी कुछ बयरिया से,
उनके अँचरा सरक गइल कइसे॥

(श्री दिनेश भ्रमर द्वारा रचित)

(6) प्रकीर्ण गीत

1. गारी गीत : ग्रामीण महिलाओं द्वारा हर शुभ अवसर पर 'गारी' गीत गाने का प्रचलन है। 'गारी गीत' को शुभ माना जाता है। इन गालियों का उद्देश्य किसी को मानसिक आघात पहुँचाना नहीं होता बल्कि इनमें हास्य, स्नेह एवं माधुर्य का पुट होता है। विवाह में वर पक्ष के बड़े से छोटे प्रत्येक व्यक्ति को गारी दी जाती है ताकि कोई अपने को उपेक्षित न समझे। बाजे वाले को भी गाली दी जाती है—

चँदन चौका पुरावौ हो कवन लाला,
आवत हैं कृष्ण मुरारी सीता राम को भजो।
दाल-भात मैदा क रोटी परवर की तरकारी,
सीता राम को भजो।
जेवन बैइठैं कृष्ण मुरारी देत सखी
सब गारी सीता राम को भजो।
दे सखी गारी दियाव सखी गारी
लैबै पटूका पसारी सीता राम को भजो।
सीता बिआही राम घर के लऊटलै,
हांसी हंसी पूछे माता कौशल्या
कैसी ललन ससुरारी,
सीता राम को भजो।
साली से सरहज अधिक पियारी
सासू गंगा जल पानी
सीता राम को भजो।
ससुरो गोत काहां लग वरनौ
देई सखीन सब गारी
सीता राम को भजो।
नवई मास बेटा मोरी कोखि रहल
कबहू न किन्ह बड़ाई
सीता राम को भजो।
चार दिन के बेटा गय ससुरारी
सासु क इतनो बड़ाई

सीता राम को भजो।
 राम दोहाई राजा दशरथ किरिया
 सीता राम को भजो।
 अब नाहिं जाबै ससुरारी
 सीता राम को भजो।
 जुग-जुग बाढ़ै बेटा तोहरी ससुरारी
 नित रे भोजन गारी
 सीता राम को भजो।

सोहर गीतों में गाली का बहुत प्रचलन है। पुत्र जन्म के अवसर पर भी बुआ को तरह-तरह के परिहास सुनने पड़ते हैं।

2. मुसलमानों के गीत : ग्रामीण में मुस्लिम समाज और हिन्दू समाज बड़े ही प्रेम, भाई चारे के साथ रहते हैं। एक दूसरे के शुभ कार्यों से लेकर शोक कार्यों में सम्मिलित होते हैं। इनके गीतों को दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है—

(1) हर्षदायक अवसर के गीत, (2) दाहा रोने के गीत (शोक गीत)

हर्षदायक अवसर के गीत

पुत्र-जन्म : मुस्लिम समाज में भी पुत्र-जन्म के अवसर पर प्रसन्नता को व्यक्त करने के लिए गीत गाये जाते हैं। मुसलमानों के यहाँ हिन्दुओं में प्रचलित सोहर का उलारा कह गाने की परम्परा है। केवल भाषा में थोड़ा अन्तर अवश्य है, इनमें उर्दू का प्रयोग होता है। एक सोहर (उलारा) प्रस्तुत है—

“अल्ला के करिली दुआ कबूल, हमारे घर बच्चा पैदा हुआ।

बच्चा कै दादी खुसी भई हैं, जच्चा ने किया है कमाल हमारे घर बच्चा पैदा हुआ”

खतना : खतना के अवसर पर बालक के स्वास्थ्य की मंगल कामना हेतु ईश्वर से प्रार्थना की गयी है—

“अल्ला सन्नल से बोझी हमरी नाव गाजी मियाँ पार लगावा।

लोहे के छुरिया गढ़ावै कौन मियाँ (बाबा, अब्बा, चाचा का नाम)

कौनी बेगम (दादी, अम्मी आदि का नाम) अल्ला मनावें, गाजी मियाँ पार लगावा।”

विवाह : मुसलमानों के विवाह परम्परा के अन्तर्गत सर्वप्रथम माँगनी की रस्म होती है। इसमें नौशे (वर) के पिता दूल्हन के पिता से कन्या का हाथ वर के लिए माँगते हैं।

वर-पक्ष 'मेहर' के रूप में कन्या को एक धन राशि प्रदान करता है। विवाह-उत्सव मंझा से प्रारम्भ होता है। दुल्हा-दुल्हन से उसकी मर्जी पूछकर काजी के सामने 'कबूल' करवाया जाता है। तत्पश्चात् 'रूखसती' की रस्म अदा की जाती है। इस प्रकार बिना आडम्बर के सादी तरह से इनका विवाह सम्बन्धी कार्य सम्पन्न होता है।

नहान और दूल्हे का श्रृंगार : हिन्दुओं में वर को नहाते-सजाते समय भी गीत गाये जाते हैं उसी प्रकार इनके यहाँ भी गीत गाये जाते हैं।

सेहरा : मुसलमानों में 'मौर' के स्थान पर फूलों का 'सेहरा' पहनाया जाता है। 'सेहरा' गाने का ढंग 'गजल' जैसा है। एक 'सेहरा' गीत का उदाहरण—

“खुशनुमा क्यों न हो परियों ने बनाया सेहरा। इस सेहरे की खुशी अब्बा के दिल से पूछौ, जबसे देखा है दूल्हे के सिर पै सेहरा।”

इन्हीं के प्रभाव स्वरूप अब शहरों में हिन्दुओं के विवाह के अवसर पर भी 'सेहरा' गाया जाता है।

दाहा रोने के गीत (शोक गीत) : दाहा गीत 'मुहर्रम' में 'नवी' की सन्ध्या से गाये जाते हैं और दसवीं के दिन भी। चौक पर जहाँ 'ताजिया' बिठाया जाता है उसी के पास बैठकर मुस्लिम स्त्रियाँ करुण स्वर में 'दाहा' गाकर सबके मन में करुणा का संचार करती हैं। इन गीतों में उनके पूर्वजों के शौर्य और बलिदान को गाथा तो रहती है उसके साथ ही परिजनों का क्रन्दन भी।

दाहा गीत का एक उदाहरण इस प्रकार है—

“हमन बैठे चउकता रे हाय, उपरां भँवर भहनाय, पाँच मुसाफिर बगिया म उतरै, दादी वन के पूछै बाति, कह तू, मुसाफिर करबले की हलिया, हाल खबर नाही मिली।”

(7) लोकगीतों में राष्ट्रीय भावना

लोकगीतों में संस्कार गीत, जाति गीत, धार्मिक गीत, श्रम परिहार के गीत, खेल सम्बन्धी गीत, प्रणय सम्बन्धी गीत, प्रकीर्ण आदि गीतों के अतिरिक्त लोकगीतों ने राष्ट्रीय क्रान्तियों को अधिक प्रबल बनाने तथा जन-जन में राष्ट्रीय चेतना जगाने में प्रमुख भूमिका निभाई है।

आजादी के बाद नेहरू जी जन-जन के लोकप्रिय नेता बन गये थे। ग्रामीण लोग लोकगीतों के माध्यम से अपनी प्रशंसा प्रस्तुत करते थे। नेहरू की प्रशंसा, लाला लाजपत राय एवं गाँधी के बलिदान से सम्बन्धित अनेक गीत प्रचलित हैं। एक गीत जो इस प्रकार है—

नेहरू भारत के प्रधान मोर परान सजनी।
 मखमल पर मोटर चलती थी,
 जर से भरा खजाना,
 आनन्द भवन में आनन्द करता
 वह नेहरू मस्ताना,
 कपड़ा पैरिश में धो आये मोर परान सजनी।
 लाठी खायके लाजपत मर गये,
 पहन स्वदेशी बाना,
 गाँधी गोस्ती क निशान मोर परान सजनी।
 अँगरेजवन ने निती लगाई,
 चलई अनेकौऊं चाल,
 धीर-बीर-गम्भीर, सहासीय,
 वीर जवाहिरलाल
 कइलै भारत क उत्थान मोर पराव सजनी।

(8) साक्षरता से सम्बन्धी गीत

साक्षरता से सम्बन्धित लोक गीत जनमानस में अत्यधिक प्रचलित है। लोकगीत साक्षरता के प्रति जागरूकता लाने का एक सशक्त माध्यम है। साक्षरता के बिना व्यक्ति कौ क्या स्थिति हाँती है इसका वर्णन भी लोकगीतों में देखा जा सकता है। यथा-

बिना विद्या के हमार दुरगति होई गई ना।
 बाबू पूछै कहौं जाईक बा
 हम कहे ससुरारी
 आने बचवा क महतारी। हमार....
 जब हम पहुँचे ससुरारी
 पहिलै मिल गई हमरी सारी
 पूछै अंगरेजी या सवाल। हमार

इस प्रकार देखें तो लोकगीतों का सन्दर्भ अत्यन्त विस्तृत है। मानव जीवन के प्रत्येक पहलू के प्रतीक हैं-लोकगीत। लोकगीतों की चमक निरन्तर सागर की धारा की भाँति नित-नये सन्दर्भ से आगे बढ़ती रहेगी। साथ ही भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को प्रकाशित करती रहेगी।

सन्दर्भ

1. अवधी लोकगीत : समीक्षात्मक अध्ययन-डॉ० विद्याबिन्दु सिंह, पृ० 33
2. लोक साहित्य की भूमिका, डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, पृ० 73
3. लोक साहित्य की भूमिका, डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, पृ० 76-77
4. गंगा घाटी के गीत, डॉ० हीरालाल तिवारी, पृ० 84
5. रामचरितमानस (बालकाण्ड), तुलसीदासकृत, पृ० 216
6. लोक साहित्य की भूमिका, डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, पृ० 90
7. भारतेन्दुयुगीन हिन्दी काव्य में लोकतत्त्व, डॉ० विमलेश कान्ति, पृ० 387
8. तुलसीदास वैशाख में अर्पित त्रैलोक्य काल।
जनम भरन से मुक्त तेहि करत नंद के लाल॥ वही, पृ० 386॥
9. कृष्णक जीवन सम्बन्धी ब्रजभाषा-शब्दावली, द्वितीय खण्ड, डॉ० अम्बा प्रसाद 'सुमन' पृ० 321
10. अवधी लोकगीत : समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ० विद्याबिन्दु सिंह, पृ० 182
11. वही
12. वही
13. वही, पृ० 187
14. अवधी लोकगीत: समीक्षात्मक अध्ययन डॉ०, विद्याबिन्दु सिंह, पृ० 256
15. भोजपुरी के नयेगीत और गीतकार, राहगीर, पृ० 149
16. वही, पृ० 111
17. वही।

तृतीय अध्याय

प्रचलित ऋतुकालीन लोकगीतों की परम्परा

(अ) ऋतुगीतों का सौन्दर्य एवं संगीत से सम्बन्ध : मानव जीवन एवं उसके क्रिया-कलाप के अन्तर्गत ऋतुओं का विशेष महत्त्व है। यद्यपि परम्परा से छः ऋतुएँ मानी जाती हैं, पर उत्तरी भारत में चार ऋतुयें प्रधान हैं-वर्षा, शरद, बसन्त और ग्रीष्म।

कृषिकार्य एवं दैनिक क्रिया-कलाप, रीति-रिवाज आदि ऋतुओं के अनुसार विभाजित हैं। ऋतुओं के अन्तर्गत जहाँ भी 'लोकगीतों' का सम्बन्ध है, बसन्त के हंगली सम्बन्धी गीत और वर्षा ऋतु के पावस-गीत ही अधिकतर उपलब्ध हैं। भारत के प्रत्येक राज्य में विभिन्न ऋतुओं में गीत-गायन की परम्परा प्रचलित है ऋतु सम्बन्धी गीतों में जनमानस पूर्णरूपेण तरंगित दिखाई पड़ता है।

भारत एक ऋतु-प्रधान देश है यहाँ हमें प्रकृति की असीम छटा और उसकी सहज अनुकम्पा देखने को मिलती है। भारतीय ऋतुओं ने यहाँ के साहित्य, संगीत और अन्य कलाओं को प्रभावित किए हैं।

ऋतुकालीन गीतों का वर्णन करने से पहले ऋतुओं का वर्णन करना अनिवार्य हो जाता है।

भारत में दो-दो मास के अन्तराल से छः ऋतुएं आती हैं। और इस छोटी सी अवधि में ही वे अपना मनोहर रंग और प्रभाव धरती के कण-कण में बिखेर कर मानव-चेतन को झंकृत कर चली जाती है। ये ऋतुएं इस प्रकार हैं—

1. बसन्त - ऋतु-चैत और वैशाख
2. ग्रीष्म - जेठ और आषाढ़
3. वर्षा (पावस) - सावन और भादों
4. शरद ऋतु-आसोज (क्वार) तथा कार्तिक
5. हेमन्त - अगहन और पौष
6. शिशिर ऋतु-फाल्गुन

1. बसन्त ऋतु

बसन्त ऋतु में प्रकृति का रूप विशेषतः मनोहर होता है। चारों ओर फूलों की शोभा दिखाई देती है, भौरे गूँजते हैं, मन्द-मन्द सुगन्धित हवा बहती है। बसन्त के इसी मनोहर रूप का वर्णन बिहारी जी ने अत्यन्त सुन्दर शब्दों से प्रस्तुत किया है—“झाड़ियों में से बसन्त की मादक हवा एक मदमस्त हाथी के समान चली आ रही है। गूँजते हुए भौरों का समूह आयु रूपी हाथी के गले में बँधी हुई घंटियों के समान बज रही है। और चारों ओर खिले हुए फूलों से हाथी के मद-जल के समान पुष्प रस टपक रहा है।”

भाव स्पष्ट है कि बसन्त ऋतु में प्रकृति का मादक रूप देखने योग्य है। वायु बह रही है, चारों ओर फूल खिले हुए हैं, जिनसे पुष्प-रस झर रहा है तथा उन पर मण्डराते हुए भ्रमर गूँज रहे हैं।

श्री रामचन्द्र जी के जन्म के अवसर पर तुलसीदास ने मधुमास का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है—

नौमी तिथि मधुमास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरि प्रीता॥^१
मध्यदिवस अति सीत न घामा। पावन काल लोक विश्रामा॥
बसन्त ऋतु में पुष्पवाटिका का मनोहर वर्णन करते हुए तुलसीदास जी कहते हैं—
भूप बागुबर देखेउ जाई। जहँ बसन्त ऋतु रही लोभाई॥
लागे बिटप मनोहर नाना। बरन-बरन बर बेलि बिताना॥
नव पल्लव फल सुमन सुहाए। निज संपत्ति सुर रुख लजाए॥^२

—बालकाण्ड

इसी प्रकार ‘सरस बसन्त’ नामक रचना में बसन्त ऋतु का अत्यन्त मनोहारी एवं सजीव चित्रण हुआ है—

बन बसन्त बरनत मन फूल्यौ। लता-लता - झूलनि संग झूल्यौ॥
मलय पवन - आगमन सुखसारा। रोचक महा सुदेस सुढार॥
बरसत पुहुप पुहुमि पर सोहत। बन छवि लखि ब्रजमोहन सोहत॥
कुसुम सु आसव स्यामहि प्यावत। बन तरु जड़ पै यों जिय ज्यावत॥^३

“बच्चन गीत संगीत” के अन्तर्गत वर्णित कविता ‘बसन्त गोद में गड़ी प्रकृति परी’ में बसन्तऋतु के सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार हुआ है। देखिए

बसन्त दूत कुंज-कुंज कूकता,
बसन्त राग कुंज-कुंज फूँकता,

पराग से सजी सुहाग मंजरी,
 बसन्त गोद में लसी प्रकृति परी।
 प्रणय संदेश कुंज-कुंज गूँजता,
 प्रणय स्वरूप को सदैव पूजता,
 कहाँ स्वरूपिनी न स्नेह पर ढरी,
 बसन्त गोद में झुकी प्रकृति परी।
 बसन्त-दूत मुग्ध भूक हो गया,
 बसन्त-वात गंध-मंढ सो गया,
 हुई सफल-विनम्र आम्र मंजरी,
 बसन्त गोद में गड़ी प्रकृति परी मिलन यामिनी।
 बसन्त ऋतु का एक मोहक चित्र देखिए:⁶
 छकि रसाल सौरभ सने मधुर माधवी गंध।
 ठौर ठौर झूमत झपत भौर भौर मधुअंध॥

इस पंक्ति में रूप, रस, स्पर्श, गंध सभी का मानसिक प्रत्यक्षीकरण किया जा सकता है। बसन्त की व्याप्ति का एक उदाहरण देखिए:⁷

कूलन में, केलि में, कछारन में कुंजन में,
 क्यारिन में कलिन कलीन किलवंत है।
 कहै पद्माकर पराग हू में, पौन हू में,
 पानन में, पिकन पलासन पगंत है॥
 द्वार में, दिसान, दुनीमे, देस देसन में
 देखो द्वीप द्वीपन में दीपत दिगंत है।
 बीथिन में, ब्रज में, नवेलिन में, बेलिन में,
 बनन में बागन में बगरयौ बसंत है।

स्पष्ट है कि बसन्त ऋतु में प्रकृति सुगन्धित हो उठती है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति झूम-झूमकर सब को सम्बोधित कर रही हो और हवा, पुष्प, भौरों, नदियों, वृक्षों तथा कण-कण के कानों में आनन्द रूपी रस घोल रही हो। तभी तो सारी प्रकृति मदमस्त हो झूम उठती है।

2. ग्रीष्म ऋतु

ग्रीष्म ऋतु का वातावरण प्रचण्ड गर्मी का होता है। पथिक थकाहारा किसी वृक्ष के नीचे बैठकर शीतलता का अनुभव करने का प्रयास करता है। सारी पृथ्वी मध्यदिवस में ज्वाला उगलने लगी है। ऐसा प्रतीत होता कि मानों धरा प्यास से व्याकुल हो उठी है, पेड़-पौधे कुम्भला गये हैं। पशु-पक्षी गर्मी से तप रहे हैं। इसी सन्दर्भ में सेनापति का ग्रीष्म का एक चित्र देखिए—

वृष कौ तरनि तेज सहस्रौ किरन करि,
ज्वालन के जाल बिकराल बरसत है।
तपति धरनि, जग जरत झरनि, सीरी
छौंह कौ पकरि पंथी पंछी बिरमत है॥
सेनापति नेक दुपहरी के ढरत, होत
घमका विषम ज्यों न पात खरकत है।
मेरे जान पौनौ सीरी ठौर को पकरि कौनौ
घरी एक बैठि घामै बितवत है।⁹

9879

विकराल ज्वलजाल की वर्षा, छाया में पंथी का विश्राम करना, पत्तों का निष्कप होना इसे इस ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि ग्रीष्म की तपन का अनुभव सभी प्राणी को हो जाएगा।

परस्पर विरोधी जीवों को एक साथ एकत्र कर ग्रीष्म का प्रभाव दिखाने का चित्र बिहारी जी ने खींचा है। ग्रीष्म ऋतु की प्रचण्ड गर्मी से व्याकुल होकर प्राणी अपने स्वाभाविक बैर भाव को भूल जाते हैं, इस भाव को प्रस्तुत करते हुए बिहारी जी कहते हैं—

“ग्रीष्म ऋतु की प्रचण्ड गर्मी से व्याकुल संसार के सारे प्राणी अपनी सुध-बुध भूल जाते हैं, उन्हें शत्रु और मित्र की पहचान भी नहीं रह जाती। सांप और मोर एवं हिरण और बाघ परस्पर विरोधी हैं। एक भक्षक है, तो दूसरा भक्ष्य, किन्तु गर्मी से व्याकुल होकर वे एक साथ पड़े रहते हैं, कोई किसी से नहीं डरता-डराता। ऐसा प्रतीत होता है मानों ग्रीष्म ऋतु ने सारे विश्व को तपोवन (ऋषियों का आश्रम) बना दिया। (प्रसिद्ध है कि तपोवन के शान्त और पावन वातावरण में प्राणियों की चित्तवृत्ति निर्मल हो जाती है, वे ईर्ष्या द्वेष आदि भावों से मुक्त हो जाते हैं।)”¹⁰ इसी सन्दर्भ में

ग्वाल कवि का एक ग्रीष्म चित्र देखिए:¹⁰

पूरन प्रचण्ड मारतंड की मयूरवे मण्ड,

जोर ब्रह्मांड, अंड डारे पंख घरिए।
 लूँ तन छूँ, बिन धूँ की अगिन जैसी,
 चूँ स्वेद बुंद, बुंद धारे अनुसरिए॥
 'ग्वाल कवि' जेठी मास की जलाकन में,
 प्यास की सलाकन ते ऐसी चित्र अरिए।
 कुंड पिए, कूप पिए, सरपिए, नद पिए,
 सिंधु पिए, हिम पिए, पीए बौई करिए॥

ग्रीष्म ऋतु का एक अन्य वर्णन देखिए-इस ग्रीष्म ऋतु में प्रचण्ड दावानल से घास फूस भस्म हो रहे हैं। तौक्ष्ण हवा के झोंकों से सूखे पत्ते उड़े जा रहे हैं। सभी ओर सूर्य के प्रचण्ड आतत से सरोवर सूखे जा रहे हैं। इस प्रकार सूनसान जंगल को देखने से भय लग रहा है।¹¹

ग्रीष्म ऋतु में मानव ही नहीं वरन् कण-कण शान्ति, व्याकुलता तथा बावन आदि अन्य-अनेक चित्तवृत्तियों का समागम होता है।

3. वर्षा ऋतु

वर्ष के बारह मासों में चातुर्मास का विशेष महत्व माना जाता है और उसमें भी वर्षा के श्रावण व भाद्रपद इन दोनों महीनों का सबसे अधिक। वास्तव में इस वर्षा ऋतु पर ही बारह महीनों का आधार है और चराचर सृष्टि के जीव मात्र के आरोग्य, सुख, शान्ति, आनन्द और जीवन का यही एक मात्र अवलम्ब है।

भगवान् कृष्ण को वर्षा ऋतु अत्यन्त प्रिय हैं। भगवान् श्री कृष्ण उद्धव जी से कहते हैं कि वर्षा ऋतु यह मेरा ही स्वरूप है। मेरे स्वरूप का सम्यक रूपेण अनुभव करना हो तो वर्षा ऋतु की विचित्र लीला का अवलोकन करो।

प्रावृट् श्रियं च तां वीक्ष्य सर्वभूतमुदावहाम्।¹²

भगवान् पूजयाञ्जके आत्मशक्त्युप बृंहिताम्॥

प्राणीमात्र को आनन्द देने वाली उस वर्षा ऋतु की शोभा को निहार कर भगवान् श्री कृष्ण ने उसकी बड़ी प्रशंसा की। और श्री कृष्ण के प्रभाव से उस वर्षा ऋतु की स्वाभाविक शोभा और भी अधिक वृद्धिगत हुई थी।

वास्तव में ही इस ऋतु की महत्ता अलौकिक है। चहुँ ओर उछल-उछल कर वेग पूर्ण बहती नदियाँ, छलकते हुए नाले, श्याम घन घटाओं में रह-रह कर चमकती हुई बिजलियाँ, अपनी न्यारी उमंग में नृत्य करते मयूरगण, गम्भीर मेघगर्जन, छोटे-मोटे बूंदों

से गिरती हुई वर्षा की झड़ियाँ, ग्रीष्म काल में संतृप्त होकर वर्षा की सुधावर्षिणी अनंत धाराओं में परिप्लावित हो संतृप्त धरतित्रि, उस पर मानो हरे मखमल के गलीचे बिछाये हों, त्यों उस पर छाई हुई नयन मनोहर हरियाली, सकल दिशा में हरी-हरी नई जीवन सामग्री को लिये हुए प्रफुल्लित वृक्ष-तरुवर, लता, बेलि और फूल-पत्ते, एवं क्रीड़ा - कल्लोल करते हुए उत्साह व प्रसन्नता और युवा नर-नारियों में पूर्ण उमंग व मादकता भरे भाव। इस प्रकार भावों को उद्दीपित करने वाले इस सुन्दर मोहक और मादक विविध दृश्य युक्त वातावरण का जन-मानस-पर प्रभाव अवश्यम्भावी है।

प्रसिद्ध है कि चकवा-चकवी रात को एक दूसरे से अलग हो जाते हैं और दिन के समय मिल जाते हैं। उनका प्राकृतिक नियम वर्षा ऋतु के समय रात-दिन की पहचान में सहायक होता है। वर्षाऋतु का सुन्दर वर्णन एवं चकवा-चकवी की स्थिति का चित्रण करते हुए बिहारी जी कहते हैं—

“वर्षा ऋतु में बादलों की घनघोर घटा छाने पर ऐसा अन्धकार हो जाता है कि यह जानना मुश्किल हो जाता है कि रात है या दिन है। बादलों के घटा-टोप के कारण रात और दिन में अन्तर नहीं रह जाता। उस समय चकवा-चकवी को देखकर ही रात दिन की पहचान हो सकती है। अर्थात् यदि चकवा-चकवी एक साथ दिखाई दें, तो दिन और यदि वे एक-दूसरे से अलग हों तो रात समझी जाती है।¹³

वर्षा वर्णन से सम्बन्धित श्रीमद्भागवत में एक छन्द इस प्रकार है—

मेघोगमोत्सवाहृष्टाः प्रत्यनन्दन शिख पण्डिनः

गेहेषु तप्ता निर्विघ्नाः यथाऽच्युत जनागमे॥¹⁴

इसका अविकल अनुवाद हम गोस्वामी जी की इन निम्नलिखित पंक्तियों को कह सकते हैं—

लक्ष्मन देखहु मोरगन नाचत वारिद पेखि।

गृही विरति रत हरष जस विष्णुभगत कहुं देखि॥¹⁵

श्री गोस्वामी तुलसीकृत श्री रामचरित मानस किष्किंधा काण्ड में भगवान श्री रामचन्द्र जी कहते हैं:—

“वरषाकाल मेघ नभ छाये, गरजत लागत परम सुहाये।¹⁶

इसी प्रकार से वर्षा ऋतु के मनोहर स्वरूप का विशद चित्रण कवियों एवं साहित्यकारों ने किया है

4. शरद ऋतु

शरद ऋतु की मोहकता प्राणी मन ही नहीं, अपितु पृथ्वी, आकाश, वन-वृक्ष, जीव-जन्तुओं एवं पशु-पक्षियों को भी आनन्दित कर देती है।

इस शरद ऋतु में कुमुद पुष्पों के संस्पर्श से पवन शीतल होकर बहता है। मेघों के न रहने से दिग्विभाग स्वच्छ एवं सुन्दर हो गए हैं। जल का मटमैलापन समाप्त हो गया है, पृथ्वी का सारा कीचड़ सूख गया है और नभ में निर्मल किरणों वाला चन्द्रमा एवं तारे प्रकाशित होते हैं।¹⁷

गोस्वामी जी ने रामचरितमानस (किष्किंधाकाण्ड) में शरद ऋतु के आगमन से लक्ष्मण के हर्षभाव को वर्णन करते हुए कहते हैं—

बरषा बिगत शरद ऋतु आई। लछिमन देख हु परम सुहाई॥

फूलें कास कमल महि छाई। जनु बरषाँ कृत प्रकट बुझाई॥¹⁸

‘पदमावत में भी शरद ऋतु का कुछ इसी प्रकार का वर्णन मिलाता है। हर्ष, उल्लास और आनन्द से ओतप्रोत प्राकृतिक चित्रण देखते ही बनता है।

शरद ऋतु में प्राकृतिक सौन्दर्य अपने चरम सीमा पर पहुँच जाता है। चहुँ ओर सौन्दर्य की सत्ता व्याप्त हो जाती है। शरद ऋतु में प्रकृति का मनोहर चित्रण देखिए—

“इस शरद ऋतु ने काश से पृथ्वी को, चन्द्रमा की किरणों से रात्रियों को, हंसों द्वारा सरिताओं के जल को, कुमुदों द्वारा सरोवर को पुष्पभार से अवनत सप्तवर्ण (छतिवन) के वृक्षों से वन प्रान्तों को तथा मालती पुष्पों से उपवनों को धवल बना दिया है।¹⁹

शरद ऋतु सम्पूर्ण वातावरण को स्वच्छ और निर्मल कर देती है। शरद ऋतु की पूर्णिमा आनन्दमयी और प्रभावोत्पादक होती है। वर्षा ऋतु की समाप्ति पर शरद की सुहावनी ऋतु आती है। शरद ऋतु के आते ही आवागमन के रास्ते खुल जाते हैं।

5. हेमन्त ऋतु एवं शिशिर ऋतु

शीत के आधिक्य के कारण “पौष-माघ” की कठिन शीत (पाला), बर्फीली हवा और सर्वत्र ओला-पाला से वन-उपवनों, बाग-बगीचों में मनोरम लता-वृक्षों के पुष्प ही नहीं, वरन् पत्ते तक झड़ने लगते हैं। तब प्राकृतिक सौन्दर्य समाप्त हुआ-सा जान पड़ता है। इस हेमन्त ऋतु में वे क्षितिज भाग चित्त को समुत्सुक बना रहे हैं जिनके खेतों में धानों की बालियाँ लहलहा रही हैं हरिणियों के झुण्ड सुशोभित हो रहे हैं। तथा जो मनोहर क्रौन्व पक्षियों के कलरव से ध्वन्यमान हो रहे हैं।²⁰

‘बालकाण्ड’ में ‘धनुष भंग’ से उद्धृत निम्न चौपाई में हेमन्त ऋतु का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

मंगल मूल लगन दिनु आवा। हिम ऋतु अगहन सासु सहावा।²¹

राम-सीता जी के विवाह का शुभ दिन आ गया है। इसलिए हेमन्त ऋतु (अगहनमास) बहुत भा रहा है।

ऋतुओं का संगीत में विशेष स्थान है, भारत के विविध ऋतुओं में ही चित्रकार के रंग सहज ही स्वाभाविक चित्रण के लिए विवश हो जाते हैं, लोक गायकों के हृदय से अनेकों लोकगीत धुनें अन्तरात्मा से निकलते हैं, मूर्तिकार के हृदय से कल्पना का फुहार उठता है साथ ही शास्त्रीय संगीत के अनेकों राग चमकते हैं। ऋतुओं का सौन्दर्य प्रत्येक प्राणी में निखर उठता है।

सर्वप्रथम ऋतुओं का संगीत से सम्बन्ध की चर्चा करते हैं। जो अनिवार्य प्रतीत होता है यथा—

बसन्त एवं ग्रीष्म ऋतु संगीत की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। संगीत में कई राग एवं गीत हैं जो विशेषतः बसन्त ऋतु में ही गाए जाते हैं। छंदोग्य के अनुसार वृष्टि-विषयक पाँच प्रकार की सामोपासना का वर्णन है—

“वृष्टौ पञ्चविधं सामोपासीतपुरावातो-हिंकारो मेघोजायते।

स प्रस्तावो वर्षति स उद्गीथो विद्योतते स्तनयति से प्रतिहार।”²²

अर्थात् वृष्टि (वर्षा ऋतु) में पाँच प्रकार के साम को उपासना का विधान किया गया था। वायु हिंकार है। मेघ जो उत्पन्न होता है, वह प्रस्ताव है। जो बरसता है, वह उद्गीथ है तथा जो धमकता-गर्जता है, वह प्रतिहार है। छंदोग्योपनिषद् में ही आगे कहा गया है—

“ऋतुषु पञ्चविधं सामोपासीत वसंतो हिंकारो ग्रीष्मः प्रस्तावो

वर्षा उद्गीथः शरत्प्रति हारो हेमन्तो निधनम्।”²³

अर्थात् ऋतुओं में पाँच प्रकार के साम की उपासना करनी चाहिए। वसंत में हिंकार, ग्रीष्म में प्रस्ताव, वर्षा में उद्गीथ, शरद् में प्रतिहार तथा हेमन्त में निधन। वैदिक युग में रथमंतर साम का गायन बसन्त ऋतु में, बृहत्साम का ग्रीष्म ऋतु में वैभव का वर्षा ऋतु में तथा शाक्वर और रैवत का हेमन्त ऋतु में।

औरंगजेब के सूबेदार फकीरुल्लाह ने ‘राग-दर्पण’ में एक सम्पूर्ण अध्याय ही इस रोचक विषय पर लिख डाला है कि कौन सी ऋतु में कौन-सा राग अथवा रागिनी अथवा उनके पुत्र आदि का गायन किया जाए। उनके अनुसार देवताओं ने संगीत विद्या

को उत्पन्न किया और एक वर्ष में षट्-ऋतुओं के आधार पर षट् राग स्थित किए गए। एक ऋतु में एक राग अपनी रागिनी और पुत्रों के साथ गाया जाता है। पुनः देवताओं ने यह कार्य नायकों द्वारा सम्पन्न कराया। इन नायकों में बैष्ण नायक और गोपाल नायक के नाम भी सम्मिलित हैं। राग का प्रभाव यह है कि दुष्ट और संत, छोटा और बड़ा, वृद्ध अथवा युवक, जो भी सुने, वह आनन्दित हो उठे।

संगीत दर्पण में रागों का ऋतुओं के साथ सम्बन्ध स्थापित करते हुए निम्न श्लोक उपलब्ध होता है—

श्री रागो रागिणी युक्तः शिशिरे गीयते बुधैः

वसन्त सहायस्तु वसन्ततौ प्रगीयते।²⁴

अर्थात् श्रीराग तथा उसकी रागिनियों को पंडितजन शिशिर ऋतु में गाते थे। राग वसन्त तथा उसका परिवार वसन्त ऋतु में, भैरव तथा उसका परिवार ग्रीष्म ऋतु में गाया-बजाया जाता था। उसकी रागिनियों को वर्षा ऋतु में गाया-बजाया जाता था। इस प्रकार विभिन्न राग और उनके परिवारों का सम्बन्ध षट्-ऋतुओं के साथ स्थापित किया गया।

शास्त्रीय संगीत हो या लोक संगीत, ऋतुओं के अनुसार ही गाये जाते हैं। विभिन्न ऋतुओं की, ऋतु परिवर्तन की मन पर क्या-क्या प्रतिक्रियायें होती हैं, इसका लोकगीतों में बहुत ही स्वाभाविक तथा मनोवैज्ञानिक वर्णन मिलता है।

रामायण, महाभारत तथा महाकवि कालिदास की रचनाओं में भी गायन-वादन के संदर्भ में समय व ऋतु की अनुकूलता के अनेक उदाहरण होते हैं उदाहरणस्वरूप अभिज्ञान शाकुन्तलम् में “नान्दी” के उपरान्त सूत्रधार उपस्थित प्रेक्षकों को आनन्दित करने के लिए नटी को ग्रीष्मऋतु कालीन गीत गाने का आदेश देते हुए कहता है—

किमन्यदस्याः परिषदः श्रुतिप्रसादनतः? तदिमेव।

तावदचिर प्रवृत्तिमुप भोगक्षयं ग्रीष्म समय विकृत्य गीयताम्।²⁵

महान् विद्वान् नान्यदेव ने भरतभाष्य में रागों का सम्बन्ध समय व ऋतु से बताते हुए विभिन्न रागों का उल्लेख निम्न प्रकार से किया है—

सर्वे रागाः महादेव सम्यक् संतोषकारकः

हेमन्त ग्रीष्म वर्षासु कालेषु राग शासिभिः

षड्ज मध्यम गान्धार ग्रामा तेषां यथाक्रमम्

हेमन्त भिन्नषड्जाख्येः शिशिरे चैव कैशिकाः

बसन्ते चैव हिंदोलः प्रे ख कण्ठे? विगीयते
 पञ्चमो गीयते ग्रीष्मे मध्यमग्राम नामकः
 अन्नाग ये षड्जग्रामण्टक्क रागश्च गीयते।
 कुकुभः शुभभिच्छाद् भर्गेयस्तु शरदाग मे
 पूर्वाद्धने चैव मध्याह्ने चापराह्ने यथा क्रमम्
 ग्राम त्रितयमेतन्तु गेयं श्रेयोभिवाच्छता
 शुद्ध भिन्ना च या गीतिराया मे प्रथमे मता
 मध्यप्रहर युग्मे च गौडी गीति प्रशस्यते।²⁶

प्राचीनकाल के अन्तिम ग्रंथकार पं० शारंगदेव ने सभी वर्गों के रागों का सम्बन्ध ऋतुओं तथा दिन व रात के विभिन्न प्रहरों के साथ स्थापित करते हुए षड्जग्राम राग वर्षा ऋतु में, भिन्न कैशिक शिशिर में, गौड़ पंचम ग्रीष्मऋतु में तथा हिंदोल बसंत ऋतु में गाए जाने के निर्देश दिए हैं।

इसी प्रकार अहोबल ने संगीत परिजात में समय व ऋतु की अनुकूलता को दृष्टिगत रखा है। रस कौमुदी में श्री कण्ठ ने तथा फकीरुल्लाह ने राग दर्पण में अनेकानेक रागों का उल्लेख इसी दृष्टिकोण से किया है।

इस प्रकार से यह स्पष्ट हो जाता है कि लगभग हर युग में ऋतुओं का विशेष महत्त्व संगीत के विविध शैलियों, मानव की मनोभावनाओं तथा उमंगों से पूर्ण रूप से जुड़ा है। इसी प्रकार लोकगीत भी षड्ऋतुओं में बंटे हुए हैं। ऋतुओं से सम्बन्धित अनेक लोक गीत जनमानस में प्रचलित हैं।

भारत, ऋतु प्रधान देश है। यहाँ हर ऋतु का अपना सौन्दर्य एवं महत्त्व है। इन ऋतुओं ने हर काल में कवियों को प्रभावित किया है। चाहे ग्रीष्म में फूल पलाश हो, चाहे वर्षा की भीनी सुगंध हो, शरद की गुलाबी रातों का निर्मल आकाश हो या प्रेमियों का प्यारा ऋतुराज बसन्त हो, कवि की कल्पना हर ऋतु पर नया वेश बदलती रही है।

भारत वर्ष को प्रकृति ने छः ऋतुएँ प्रदान की हैं किन्तु वर्षा, बसन्त तथा शरद का ही लोक गीतों में प्राधान्य है। लोकगीतों में विभिन्न ऋतुओं का वर्णन तथा उनसे प्राप्त हर्ष और विषाद का उल्लेख हुआ है। ऋतुओं के मोहक रूप सौन्दर्योपासक लोक-मानस को सदा रिझाते रहे हैं।

बसन्त ऋतु : संस्कृत साहित्य से लेकर आज तक बसंत ऋतु अपनी मादकता

तथा सौन्दर्य के लिए साहित्य का वर्ण्य-विषय बनतो रही। 'फाग' और 'चइता' तथा 'बारामासा' गीतों में वसन्त ऋतु का वर्णन विभिन्न प्रकार से हुआ है।

ग्रीष्म ऋतु : ग्रीष्म ऋतु का वर्णन बारामासे में मुख्यरूप से मिलता है। यूँ तो सभी ऋतुओं का वर्णन बारहमासा में होता है जैसा कि नाम से ही विदित है-बारहमासा।

वर्षा ऋतु : वर्षा ऋतु का वर्णन लोकगीत में अत्यन्त सौन्दर्य पूर्ण रूप से हुआ है। वर्षा ऋतु में मानव हृदय में स्वतः उल्लास, उमंग भर जाता है। वर्षा ऋतु का वर्णन कजरी, सावन आदि गीतों में होता है।

शरद ऋतु : बारामासा गीतों में शरद ऋतु भी उद्दीपन रूप में अधिक आयी है क्योंकि बारामासा गीत प्रायः विरह गीत ही है।

हेमन्त ऋतु : लोकगीतों में हेमन्त ऋतु के महीनों का वर्णन इस ऋतु की विशेषताओं को उजागर करता है।

शिशिर ऋतु : शिशिर ऋतु में शीत की प्रधानता रहती है। इन गीतों में जाड़े का वर्णन होता है शिशिर ऋतु के गीतों में फागुन फाग आदि का वर्णन होता है।

ऋतुओं का विशद् वर्णन लोकगीतों में देखा जा सकता है। ऋतुओं का सौन्दर्य, लालित्य, कोमलता, मधुरता, एवं विशालता का जीवन्त उदाहरण लोकगीतों में स्पष्ट रूप से वर्णित रहता है। प्रकृति का वैभव 'षड्ऋतु' से ही कायम है। मानव की चेतना पूर्ण रूप से ऋतुओं से जुड़ा है। विभिन्न ऋतुओं के माध्यम से ही मानव मन में सुख-दुःख वियोग, हर्ष, विषाद, का संचार होता है। अतः स्पष्ट है कि ऋतुओं का सम्बन्ध पृथ्वी के कण-कण से है। लोकगीतों में प्रत्येक ऋतुओं से सम्बन्धित गीत व्यक्ति के मनोभाव को स्वच्छ एवं स्वतंत्र रूप से उजागर करते हैं। आगे इन्हीं षट् ऋतुओं में गाये जाने वाले मोहक लोकगीतों का वर्णन किया गया है।

(ब) ऋतु लोकगीतों का वर्णन :

1. कजरी

कजरी (कजली) : कजरी का उद्गम और विकास

ऋतु सम्बन्धी गीतों में 'कजरी' का विशेष महत्त्व है। मुख्यतः सावन मास में काले-काले बादल उमड़-घूमड़ करते हुए श्यामल-श्यामल घनघोर घटा से धिर जाते हैं तब धरती हरे-भरे, रंग-बिरंगे सुमनों से सुगन्धित हो उठती है। सम्पूर्ण धरा सतरंगों की मखमली सौन्दर्य से सुसज्जित हो उठती है। ऐसे मनमोहक वातावरण में प्रफुल्लित

हृदय ही नहीं, बल्कि नीरस हृदय में भी मदमस्त रस का संचार उमड़ पड़ता है। बादलों की कालिमा समेटे हुए, श्रावण में घिरने वाले काजल की भाँति कजरे बादलों की कालिमा से उमड़े सौन्दर्य के कारण ही कजरी गीत विधा का नामकरण हुआ है।

लोकगीतों में सबसे अधिक कजली की शैली में गीत लिखे गए हैं। कजली सावन में स्त्रियों द्वारा गायी जाने वाली हिन्दी प्रदेश के एक अति प्रचलित गायन शैली है। “कजली,” कज्जली या कजरी शब्द संस्कृत कज्जल से बना है जो बहुअर्थी है किन्तु मुख्य रूप से इसका अर्थ कालिमा से सम्बन्धित है जिससे इसके अर्थ (1) काजल या अंजन (2) वर्षा की काली घटा (3) कजली देवी अर्थात् विंध्याचल की काली देवी (4) कजली का त्योहार या उत्सव (5) कजली रागिनी या गीत है।

कजली की उत्पत्ति इस प्रकार से मानी जाती है।

कुधातु - कुत्सितं जलं, यस्मात् शुभ्रमपिजलं

संयोगात् स्ववर्णत्वं नयतीति।

कज्जलं-काजल इति भाषा।

कज्जली-कु+जल+क्विप्+अच्+डीप्²⁷

काजल समान कजरे बादलों को देखकर शीतलमय अनुभव उत्पन्न कल्पना के कारण ही वर्षागीत विशेष को कजली या कजरी नाम दे दिया गया। काला रंग बरखा का द्योतक है। कजरी का अर्थ है (बनारस आदि उत्तर पूर्व भारत की बोली भाषा में) कृष्णावर्णी, सौवली, काले-काले बादलों वाली, कालीघटावाली, काले नैनो के और काले मेघों के पावस की, सावन की काली रात में कभी-कभी चमकती बिजुरी की, और ऋतु में वियोग और संयोग श्रृंगार में नायिका की जो मनोदशा होती है उनका वर्णन करने वाले गीत की स्वरों के माध्यम से अभिव्यक्ति। कजरी बनारस के गायकों को जोड़े रखती हैं।

कजली गीतों की उत्पत्ति और नामकरण के विषय में विद्वानों में विभिन्न मत हैं। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने भोजपुरी सन्त-कवियों, विशेषकर लक्ष्मीसखी की रचनाओं में कजली गीत मिलने का उल्लेख किया है।²⁸

कहा जाता है कि कजली का नामकरण सावन के काले बादलों के कारण पड़ा है। “भारतेन्दु” के अनुसार मध्यप्रदेश के दादूराय नामक लोकप्रिय राजा की मृत्यु के बाद वहाँ की स्त्रियों ने एक नए गीत की तर्ज का आविष्कार किया, जिसका नाम कजरी पड़ा। कुछ लोग कजली वन से भी इसका सम्बन्ध जोड़ते हैं। पं० बलदेव

उपाध्याय के विचार में आजकल को कजली प्राचीन लावनी की ही प्रतिनिधि है। कजली का सम्बन्ध एक धार्मिक तथा सामाजिक पर्व के साथ जुड़ा हुआ है। भादों के कृष्ण पक्ष की तृतीया को कज्जली व्रत पर्व मना जाता है। यह स्त्रियों का मुख्य त्योहार है स्त्रियाँ इस दिन नव वस्त्र-आभूषण पहनती हैं, कज्जली देवी को पूजा करती हैं और अपने भाइयों को 'जई' बाँधने के लिए देती हैं। उस दिन वे रात भर जागती हैं (इसे रतजगा कहते हैं) और कजली गाती हैं।²⁹

इसी प्रकार लोक-देवियों में विन्ध्याचल देवी या कजली देवी का विशेष महत्त्व है। विन्ध्याचल देवी चूँकि कज्जल के समान काली हैं इसलिए इनका नाम विन्ध्याचल देवी के साथ-साथ कजली देवी भी है।³⁰

कजली नामकरण का एक अन्य कारण प्रसिद्ध कजली रचयिता मिर्जापुरी प्रेमधन ने दिया है – जैसे बसंतोत्सव के त्योहार का नाम होली दहन के कारण होली पड़ा, ऐसे ही सुप्रसिद्ध त्योहार कजली तीज के रहने से इस बरसाती उत्सव का नाम भी कजली कहलाया और जैसे होली में गाये जाने योग्य गीतों का नाम होली पड़ा उसी प्रकार कजली के अवसर पर गाए जाने वाले गीत कजली नाम से विख्यात हुए।³¹ वर्षाऋतु में गाये जाने के कारण इसका नाम कजली पड़ा क्योंकि इस ऋतु में आकाश काले बादलों से आच्छादित रहता है।³²

कजली को उत्पत्ति के बारे में एक किंवदन्ती भी प्रचलित है। विशाल सुमेरुगिरि की एक शाखा बढ़ कर प्राचीन दिशा में कृष्ण वर्ण को शिखा के रूप में परिणत हुई है, जिसका नाम 'कज्जल गिरी' है। कज्जल गिरी का शिखर अत्यन्त रमणीय है। उस पर रक्त चंदन, कुटज, लोध्र, अर्जुन आदि सुशोभित वनस्पतियों के मध्य मूकंड ऋषि का आश्रम है। एक दिन विहार की इच्छा से प्रेरित होकर मुंजलिक स्थली नाम की अप्सरा वहाँ अवतरित हुई। वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य पर मुग्ध वह इधर-उधर देख रही थी। अचानक उसकी दृष्टि आश्रम में तप-निरत महातेजस्वी ऋषि पर पड़ी। उसे आश्रम में कुछ दिन रहने की इच्छा जाग्रत हुई। ऋषि के समागम से उसे एक कन्या की प्राप्ति हुई। कन्या को जन्म देकर वह वापस स्वर्ग लौट गई। वह बालिका महर्षि की देख-रेख में युवावस्था को प्राप्त हुई। कज्जल - गिरी पर जन्म लेने के कारण उसका नाम 'कज्जली' अथवा 'कजरी' पड़ा। कुछ समय बाद उसकी किसी अवज्ञा से क्षुब्ध होकर ऋषि ने उसे श्राप दे दिया कि चार महीने (वर्षा के दिनों में) वह पति से वियुक्त रहेगी अपने प्रियतम से वियुक्त वर्षा ऋतु में वह जो गीत गाया करती थी, वही बाद में कजली के नाम से लोक में प्रचलित हुआ।³³

कजली गायकी की शुरुआत कब और कहाँ से हुई यह बताना कठिन है, तब भी ऐसा माना जाता है कि सर्वप्रथम यह गीत विशेष कज्जला देवी (माँ विन्ध्यवासिनी)

को प्रसन्न करने के लिए किसी मुसलमान शायर द्वारा रचा गया था। कजली शैली में रचे गए उस गीत को सुनकर माँ ने भक्त शायर को वरदान दिया कि जो तुम्हारी इस शैली में गीत रचकर मुझे सुनाएगा उसे मेरी भक्ति सहज ही प्राप्त हो जाएगी। तभी से हिन्दू हो या मुसलमान जब भी अखाड़े में सम्मिलित होता है तो पहला गीत माँ के प्रति गाता है। आज भी माँ के धाम में कजली गाने और काजल का टीका लगाने की परम्परा है।³⁴

कजली पर्व के विषय में भविष्योत्तरपुराण में लिखा है कि एक बार देव-सभा हुई, जिसमें विष्णु भगवान के सामने महादेव जी ने श्री महाकाली के कृष्ण पर्व को देखकर विनोद में कज्जल सी कह दिया, जिससे अपमानित होकर अपनी श्याम छुति को भस्म कर हिमनया पार्वती ने अत्यन्त सुन्दर रूप धारण किया था और तभी से कजली की शुरूआत की परंपरा चल पड़ी।³⁵

पं. बद्रीनारायण चौधरी (प्रेमबन) के अनुसार कजली त्योहारों का आरम्भ भविष्यपुराण से सम्बन्धित है। काष्ठ चिह्ना स्वामी के 'श्याम सुधा मलार' में इसके संकेत मिलते हैं। कजरी मल्हार लोक विश्रुत है।³⁶

कजली के उद्भव के सम्बन्ध में राजकुमारी कज्जली का रोचक प्रसंग तथा माँ विन्ध्यवासिनी के उपनाम कज्जला देवी से संबंधित कथा का उल्लेख विशेष रूप से होता आ रहा है।

जो भी हो, इस लोकगीत का जन्म माँ विन्ध्यवासिनी के प्रशस्ति-गान के रूप में हुआ और यही मत अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है। महाकाली (कज्जला देवी) की स्तुति में रचे गए तथा गाए गये लोक गीतों को कजली नाम दिया गया है। बोल चाल की भाषा में कजली को 'कजरी' भी कहते हैं। मिर्जापुर (जहाँ विन्ध्यवासिनी देवी प्रस्थापित है,) की कजली बहुत प्रसिद्ध है, जैसा कि इस उक्ति से प्रचलित है:

लीला राम नगर की भारी,

कजरी मिरजापुर सरनाम।

इस प्रकार कजली के विषय में अन्तिम निष्कर्ष देते हुए हम कजली के प्रमुख मिर्जापुर के निवासी 'प्रेमघन' जिन्होंने भारतेन्दुयुगीन कवियों में सबसे अधिक तथा विविध प्रकार की कजलियाँ लिखी हैं उन्हीं के ही शब्दों में हम कह सकते हैं – “कजली के स्वाभाविक उत्सवमय समय के आनन्दमय क्रीड़ा कुतूहल युक्त बरसाती उत्सव को कजली उत्सव अथवा त्योहार कहते हैं एवं उससे सम्बन्ध रखने वाले अनेक वर्णनीय विषयों के वर्णन से युक्त और कुछ स्थापित तथा सामाजिक बातों का भी बयान जिसमें होता, उसे समय प्रातः उन्हीं क्रीड़ा कुतूहलों में एतद्देशीय बहुधा

ग्राम्य नारियों के द्वारा गाई जाने वाली एक विशेष गीत कजली है।¹³⁷

कजली नामकरण से सम्बन्धित उपर्युक्त कारण सर्वाधिक संगत प्रतीत मान पड़ते हैं। इसके निम्नलिखित कारण हैं:

(क) इस महीने की शुक्ल तीज का नाम कजली तीज है और इस दिन कजली गाई जाती है अतएव कजली नामकरण का मुख्य कारण एक यह भी हो सकता है।

(ख) मिर्जापुर में सबसे अधिक कजलियां गाई जाती हैं और वहीं यह कजली तीज का उत्सव भी सबसे व्यापक रूप से मनाया जाता है।

(ग) कजली त्योहार हर्ष का त्योहार है और इस दिन कजरिया तथा विंध्याचल देवी की पूजा होती है। अतएव कजली में हर्ष तथा उल्लास के भाव व्यक्त हुए हैं।

(घ) प्रसिद्ध कजली रचयिताओं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रेमधन, प्रतापनारायण मिश्र आदि भी कजली नामकरण का उपर्युक्त कारण मानते हैं।

कजली की उत्पत्ति से सम्बन्धित अनेक मत हैं। कजरी उत्पत्ति का कारण कुछ भी हो लेकिन यह गायन विधा लोक मानस में प्रचलित अत्यन्त मनोहर एवं विकसित लोक गीत है। लोकगीतों में कजरी का अपना विशेष स्थान है साथ ही विद्वान शास्त्रीय गायक भी कजरी गायन शैली को पसन्द करते हैं।

सावन का महीना और कजरी गीत : वर्ण्य विषय

काली घटाएँ और उनके मध्य बार-बार कौंध जाती हुई चंचलता, दिशा-दिशा को गुंजित कर देने वाली मेघों की मन्द गर्जना, चारों ओर पसरती हरियाली, बूँदों का रिमझिम - रिमझिम संगीत, तन-मन को झकझोर देने वाली अलमस्त पुरवाई, मुग्धा नवयौवन प्रकृति का हर्ष और उल्लास से भरा आँगन, दादुरों का मृदंग और झींगुरों का मंजीरा, मयूरी के प्रणय - आमंत्रण पर मयूरों का नर्तन, विहग - वृंद का गान और पपीहे का पंचम स्वर में तान, नदी - नद, झील सरोवर की उठान, रंग-विरंगी कलियों की मधु मुस्कान और उनकी गलियों में अलियों का मधुलोभी अभियान, ऐसा होता है चित्त को भाव विभोर कर देने वाला सावन का सुहावन मनभावन महीना। ऐसे में झूले पर झूलती युवतियाँ और पेंग मारते हुए युवक अपने-अपने प्रणयाकुल कंठ से कजली धुन छेड़ देते हैं तो लगता है समूची सृष्टि ही गा रही है। अमराइयों में डालों पर झूला पड़ जाता है। झूला-झूलती स्त्रियाँ झूले की पेंग की लय पर समवेत स्वर में कजली गा उठती हैं।

हरे रामा उठी घटा घनघोर बदरिया कारि रे हारी

कौन दिशा बदला भये कौन बरस गये मेह, बदरिया....।

अगम दिशा बदला भये पच्छम बरस गये मेहबदरिया।

सावन में प्रकृति का अद्भुत वर्णन निम्न पंक्ति में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। आकाश में काली घटाएँ एक दम नीचे तक झुक गई हैं, चारों ओर बिजली चमक रही है और रिमझिम बूँदे गिर रही हैं। बगीचे में रंग बिरंगे झूलें टंगे हैं, जिन पर युवतियाँ झूल रही हैं। किसी अमराई से गिरती हुए कुछ पंक्तियाँ कानों में गूँजती हैं—

झुलुवा झूलै सखी झमाझम,
सावन झन-झन बूँद भरै।
उरझि रही पिथ के हिय कामिन,
गल हुमेल लहरै
झोंका खाय कान में झूमक,
झूलती नथ थहरै

पावस ऋतु में बरसती धरा में सहेलियों को साथ ले कजरी की नायिका अमराई में झूला-डाल परदेशी सांवरिया को याद करती हैं, यही नहीं सावन में अपने माता-पिता के घर जाये या नहीं इस दुविधा में भी वह पड़ जाती है। भाई सावन में बहन को लिवा जाने के लिए आया है पर वह कह उठती है कि—

भईया अइले अनवैईया सवनवा में ना हो जाबै ननदी
सोने की थाली में जेवना परोसूँ चाहे भईया खायें चाहे जाये,
सवनवा में न हो जईवै.....।

मिर्जापुर में प्रचलित कजरी का सौन्दर्य और भी बढ़ जाता है जब अष्टभुजा के ऊपर का पर्वत वर्षाकाल में और भी सुन्दर हो जाता है। नीचे पुण्यसलिला गंगा, बहुत दूर तक विन्ध्यमाला चारों ओर छाए काले काले मेघ मिर्जापुर की कजली की मादकता इनसे और भी बढ़ जाती है और प्रसिद्ध कवि प्रेमघन कह उठते हैं—

साचैहु सरस सुहावन, सावन गिरिवर
विन्ध्याचल पै रामा,
हरि-हरि मिर्जापुर की कजरी लागे
प्यारी रे हरी।

कजली का मुख्य विषय है, शृंगार रस के संयोग और वियोग पक्ष। इस संदर्भ गीत की पंक्ति यूनै है। एक स्त्री अपने पति के परदेश से वापस आने पर आनन्द से झूम किस प्रकार झूम उठती है—

कजरिया गाब हो सखी झूमि झूमि,
पियामोरे परदेशवा से आइगए हो।

कजली गीतों में प्रिय के वियोग को पीड़ा भी साकार है। काले बादलों से त्रस्त वियोगिनी का चित्र खींचते हुए सूरदास कहते ("गोपी-विरह" शीर्षक के पदों से उद्धृत) हैं। कृष्ण के विरह में गोपियाँ व्याकुल हैं—

श्याम बिना उनए ये बदरा
आजु श्याम सपने में देखे,
भरि आप नैन ढरि कि गयौ कजरा।³⁸

कृष्ण की अनुपस्थिति में ये बादल घिर आए हैं। आज स्वप्न में कृष्ण को देखा तो आँखों में प्रेमवश आँसू भर आए और काजल कपोलों पर बह गया। सूरदास के निम्न पद को गाँव के लोग इस प्रकार से गाते हैं—³⁹

श्याम बिनु बरसे बदरवा
जियरवा तरसे हो हरि।
अजहूँ पिया देखेहूँ सपनवा,
बरस गयो नयनवा,
ढलक गयो कजरवा हो हरि।

कृष्ण जन्म से सम्बन्धित एक कजरी जिसमें कृष्ण जन्म का चित्र खींचा गया है—⁴⁰

जन्म लियो जेल खाने में मुरारी पिया
सुन ल हाल सारी पिया ना।
जबहिं जन्में हैं गोपाल,
तब क सुन तनि हाल,
बेड़ी टूट गईल खुल गईल किवाड़ी पिया।
सुन।
तड़के बिजूरी अपार,
जमूना मारे उफान,
वासु चहुँच गयेन नंद केँ दुवारे पिया।
सुन।

कृष्ण की महिमा का भी अनुपम वर्णन कजरी गीतों में मिलता है जो इस प्रकार है—⁴¹

कृष्ण कूद परै कालीदह में जाइके
 गेंदा गिराई के ना।
 लागे नाग के जगावे नागिन लागै समझावै
 आपन प्रान न गवावौ इहां आईके, गेंदा।
 कान्हा मानई नाहिं बात मारे कालिया के लात
 गिरधर नाथ लिखो नाग के जगाई के, गेंदा.....।
 माई यशोदा बबरावै ग्वाल शोर मचावै
 कान्हा दरश दिये बन्सी बाजइ के, गेंदा.....।

श्रृंगारिक भाव से ओत-प्रोत कजरी भी कम नहीं है। कजरी गीतों में मेंहदी लगाने का विशेष वर्णन देखा जाता है। जो प्रायः श्रृंगारिक शैली में ही प्राप्त होते हैं। यथा—

पिया मेंहदी मेंगाई द मोती झिल से,
 जाइके जमुना तीर से ना।
 पिया मेंहदी मेंगवाई द, सासु रानी से पिसवाइद,
 अपने हथवां से लगाईद काटा किल से
 आइके नजदिक से ना।

कजरी के भाव-सन्दर्भ अत्यन्त विशाल हैं। यही कारण है कि एक कजरी के चार पंक्तियों में नौ वाद्यों की गणना कराई गई है। निम्न कजरी इस प्रकार है—⁴²

कोउ मृदंग, मुहचंग, चंग, ले सारंगी सुर छेड़े रामा।
 हरि हरि कोउ सितार तंबूरा आनी रे हारी।
 कोउ जोड़ी टनकारें, कोउ घुंघरू पग झनकारें रामा।
 हरि हरि नीचे कितनी माती जोम जावानी रे हरी।

कजरी के दो प्रकार मानी जाती हैं एक को बहर या गजल की बन्दिश में कजली दंगलों में सुना जा सकता है। दूसरी है दुनमुनिया कजली, जिसे औरतें वृत्त बनाकर ताल देते हुए झुक-झुककर गाती हैं।

कहो चित्त लोक शीश नवाके गणपति बाँके ना।
 सँवलिया सुत गिरजा के ना॥

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि शायद ही ऐसा कोई विषय बचा हो जिस पर कजली न लिखी गई हो। लोकजन के मनोभाव कजरी के निर्मल स्वर धारा,

लयधारा और पदधारा द्वारा लोक संगीतज्ञों, साहित्यकारों, कविजन एवं जन-जन को शीतलता प्रदान करती रही हैं और आनन्दित करती रहेंगी।

2. फगुआ (फाग गीत)

“संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ में ‘फल्गु’ शब्द के कई अर्थ दिये गये हैं— असार, अल्प, गया कौ एक नदी, उत्सव, होली का त्योहार और बसन्तोत्सव। ‘फाग’ शब्द आजकल बसन्तोत्सव तथा रंग-गुलाल की क्रीड़ा के अर्थ में रूढ़ हो गया है”⁴³

‘फाल्गुन’ शब्द ‘फल’ धातु में ‘गुक्’ प्रत्यय लगाकर बना है। फल्गु>फगु>फागु>फाग। यह महीना लगभग फरवरी-मार्च में पड़ता है। फाल्गुन मास में गाये जाने के कारण इस समय के गीतों को ‘फाग’ कहा जाने लगा।

बुन्देलखण्ड में फागों के छःप्रकार प्रचलित हैं—सख्याऊ फाग, ढप या डहका, चौकड़िया या टहूका, छन्दयाऊ या लावनी, खड़ीफागों और, खुरयाऊ फाग।

डिढ़खुरयाऊ फाग गीत देखिए—

ढुड़वा लैयौ राजा अमान।

हमारी खेलत बैंदी गिरगई॥

अरे हौं, हमारी॥

खड़ीफाग का उदाहरण देखिए—

ये दिन ललित बसंती आन लगे, हरे पत्र पियरान लगे।

चौकड़िया फाग का उदाहरण देखिए—

मेरो अब गौनो नियरानों, करबी कौन बहानों।

फागुन के गीतों में मादकता, मस्ती, ललक और उन्माद मिलता है—

फागुन महीना सुहावन लागै, सखी फागुन महिना सुहावन।

फागुन पूर्णिमा के दिन होली जलाना और फाग तथा चांचर गाने का उल्लेख पद्मावत में हुआ है।⁴⁴

पिउ संजोग धनि जोबन जारी। भौरं पुहुप सगं करहि धमारी।

होई फाग भलि चांचरि जोरी। बिरह जराई दीन्ह जस होरी॥

फागु करहिं सब चांचरि जोरी। मोहि तन लाइ दीन्ह जस होरी।

चेत बसंता होई धमारी। मोहि लेखे संसार उजारी॥

फाग राग का शुभारंभ बसंत – पंचमी के दिन से होता है, किन्तु यह ऐसा मादक राग है कि कभी-कभी ग्रामीण और पहले से ही मन ही मन गुनगुनाने लगते हैं। शायद इसीलिए एक कहावत प्रचलित है—

जब जौ पर कूँड़े।

तब फगुआ चढ़ा मूँड़े॥

फाग यूँ तो फागुन भर गाया जाता है किन्तु फागुन के अन्तिम और चैत के पहले दिन विशेष धूम रहती है। फाग गीतों का वर्ण्य विषय अनेक होते हैं, लेकिन विशेषतः श्रृंगारिकता की प्रधानता होती है। मिलन की ललक, नोक झोंक, जोर-जबरदस्ती, मान-मनुहार आदि के वर्णनों से फाग के गीत भरे पड़े हैं।

एक श्रृंगारिक फाग गीत देखिये—

वृंदावन फाग मचा सखियां।

उड़त गुलाल, लाल भये बादर,

रंग बिनु कोउ न बचा सखियां,

वृंदावन फाग मचा सखियां।

गोरी हेरै करार-करार, झुलनियाँ पानी—

हाँ हाँ रे झुलनियाँ पानी में गिरि गई रे।

ई झुलनी मोरे नैहर से आई,

पछड़ दिया कोई यार।

ई झुलनी मैं जब - जब पहिरउँ

देखि सवत जरि जाई झुलनियाँ पानी—

हाँ हाँ झुलनियाँ पानी में गिरि गई रे।

गोरी हेरै करार-करार, झुलनियाँ पानी में गिरि गई रे।

फाग गीतों में वियोग पक्ष की मार्मिकता देखिये—

सूनी भई फागुन हमार सजन बिन तोहार सौं,

फगुनवा कइसे बीती।

हमरी ओढ़निया कोउन रंगी रंगनवा

कऊन उड़ावे गाल गुललवा

तोहार सौं

सूनी भई

फागुन की साँझ का वर्णन देखिये⁴⁵

बनवां में चिरई गावै ले,
जियरा क हलिया सुनावे ले,
सझियाँ में गते गते, मनवां डोलावे लगल
फागुन क अब त बयार हो।
सुरुज क मुँह भईलन लाल कि,
पोतले हो जइसे गुलाल कि,
सझियाँ के अँगना में होरी हुरदंग भईल,
भईल अबीरे क मार हो।
फुलवन में छिपलन बसवा,
जइसे गोरिया के अँखिया में कतं,
मनवा हो झूमी जाला, भँवरा भईलन मतवाला
देहिया के पावें ना सम्हार हो।
इनरे पर पिए कोई भंग,
कोई फाग गावै बाजे मिरिदंग,
कि फागन के अइते गऊवन क रंग बदलल,
बदलल सब संसार हो।

फाग गीतों में प्रकृति का वर्णन भी अति मनोहर प्रतीत होता है। एक फाग गीत देखिये—

सखि फाग के दिन आए रे। बन उपवन सुमन सुहाये॥ टेक॥
बाँरे रसाल। फूले पलास सजीले।
गहि अब गुलाब रंगीले। चित चंचरिक ललचाये।
सखी फाग के दिन आए रे॥
कल कोकिल कूक सुनाई। जनु बजत मनोज बधाई।
मिलि पौन पराग सुहाई। विरही बनिता विलखाई।
सखी फाग के दिन आए रे॥⁴⁶

तथा

ए हो छबीले छैला। अब तो रंग डालन देरे॥ टेक॥
दिन फागुन सरस सुहावन, होली हरख उपजावन।
प्यारे बदरी नारायन। आवहु लागी जाहु गले रे।
ए हां छबीले छैला अब तो रंग डालन दे॥⁴⁷

फागुन का सुहाना मौसम आते ही सबको एक-दूसरे पर रंग डालने का अधिकार मिल जाता है। इस मौसम में एक-दूसरे को रंग से सराबोह कर देने के पश्चात् गले से लगाकर प्रेम रस में डूब जाने का मन करता है। फागुन महीना अत्यन्त पावन होता है। फागुन में हर्ष, उल्लास, आनन्द और अपनत्व की माला गूँथ जाती हैं। एक दूसरे में नर-नारी, आकाश-धरती, वन-उपवन, नहर-पोखर, पशु-पक्षी, सब एक ही रंग में रंग जाते हैं। मानों जगत् रंगमय हो गया हो।

फागु वसन्ति जि खैलइ वे लइ सुगुण निधान

विजयवंत तै छाजइ राजइ तिलक समान⁴⁸

इस उद्धरण से स्पष्ट होता कि फागु उल्लासपूर्ण मधुऋतु का महोत्सव है, जिसमें खेलना, गाना और रंग में डूब जाना ही फागु की प्रकृति रही है। फागु गीतों में राधा-कृष्ण सम्बन्धी अनेक गीत प्रचलित हैं यथा—

वृन्दावन सखी फागु मच्यो है,

भिगे राधा मुरारी नर-नारी हो।

कोउ उड़ावत धानी रंगनवा, सखी

कोउ उड़ावत गुलाबी गुलाल-अबीरा।

इस प्रकार फागु गीतों का वर्ण्य-विषय का कोई अन्त नहीं है। फागु गीतों में विविध रूपों का स्वाभाविक चित्रण हुआ है।

श्री नाहटा जी ने लिखा है कि — बसन्त ऋतु का प्रधान उत्सव फाल्गुन महीने में होता है। उस समय नर-नारी मिलकर एक दूसरे पर अबीर आदि डालते हैं और जल की पिचकारियों से क्रीड़ा करते अर्थात् फागु खेलते हैं। जिनमें बसन्त ऋतु 7के उल्लास का कुछ वर्णन हो या जो बसन्त ऋतु में गाई जाती है, ऐसी रचना को फागु की संज्ञा दी गई है।⁴⁹

अतः यह स्पष्ट है कि इसका विषय अधिकतर श्रृंगारिक होता है। इसमें मधुमास का वर्णन होता है। फाल्गुन उल्लासपूर्ण भावाभिव्यक्ति का महोत्सव है।

3. होरी

उत्पत्ति की दृष्टि से होली शब्द 'हो' तथा 'ली' इन दो शब्दों के संयोग से बना है। भाषा शब्दकोष⁵⁰ के अनुसार 'हो' शब्द सम्बोधन वाचक है और उल्लास एवं हर्ष की अभिव्यक्ति का बोधक है। आनन्द एवं उल्लास की प्रवृत्ति होली गान की समस्त विधाओं में परिलक्षित होती है। जनभाषाओं में 'ल' के स्थान पर प्रायः 'र' का भी प्रयोग मिलता है। साहित्यिक हिन्दी में जहाँ 'ल' का प्रयोग होता है वहीं लोक भाषाओं तथा क्षेत्रीय बोलियों में 'र' का प्रयोग भी यत्र-तत्र प्राप्त होता है।

प्राचीन ग्रंथों के अनुसार बसन्त ऋतु में एक उत्सव बड़े धूमधाम से मनाया जाता था जिसका नाम था बसन्तोत्सव। उस युग में प्रत्येक ऋतु से सम्बन्धित यज्ञों का विधान किया जाता था और यज्ञों का आयोजन मुख्य रूप से त्योहारों या पर्वों पर होता था।⁵¹

होली ऋतु परिवर्तन का सांकेतिक त्योहार है। शीतकाल की समाप्ति और बसन्त ऋतु के आगमन से समस्त धरती पर बसन्ती बयार और गुलाबी जाड़ा का शौर्य चारों दिशाओं में मादकता जगाने लगते हैं। यह दो महीनों के सम्मिश्रण का महीना है। होली के पवित्र पर्व पर चारों ओर वातावरण रंगीन बन जाता है। इसलिये ये सब राष्ट्रीय पर्व राष्ट्र के महोत्सव हैं यही भारतीय संस्कृति का अमर इतिहास है। 'होली' पवित्र त्योहार है जिसे मनाने से मानसिक दुर्बलता, खेद व शिथिलता मिटकर प्राचीन इतिहास व संस्कृति के संस्मरणों से नूतन प्रेरणाएँ पाकर जीवन उन्नति की ओर अग्रसर होता है।

संवतारम्भ और बसन्त के उपलक्ष्य में जो यज्ञ किया जाता है जिसमें अग्नि देवता की पूजा होती है, प्राचीन मान्यता के अनुसार यही 'होलिका-दहन' का सर्व प्राथमिक स्वरूप है।

भक्त प्रह्लाद तथा होलिका की पौराणिक कथा तो सर्वत्र प्रसिद्ध है। यही कथा होलिकोत्सव मनाने की प्रथा के मूल में विशेष प्रचलित है। प्रह्लाद को मारने के अनेकानेक प्रयत्न जब विफल हुए तब हिरण्यकश्यप के कहने से होलिका प्रह्लाद को अपनी गोद में लेकर अग्नि में बैठ गई। वैसे अग्नि में न जलने का उसे घरदान था परन्तु प्रभु पर अत्याचार करने के कारण वह तो जल गई और प्रह्लाद की रक्षा हुई। अनन्य भक्त की रक्षा होने के उपलक्ष्य में महोत्सव मनाने की प्रथा चल पड़ी। तब से आज भी महोत्सव सात्विक वृत्ति के लोग मंगलमय उपकरणों द्वारा मनाते हैं, जबकि रजो-तमोगुणी अपने मनमाने ढंग से।

प्राचीन काल में भी भारत में समय-समय पर भिन्न-भिन्न ऋतु-उत्सव मनाने की प्रथा थी यथा वसन्तोत्सव, शरदोत्सव आदि जिसमें बसन्तोत्सव - मदनोत्सव का अपना एक विशिष्ट स्थान होता था जो एक प्रकार से होलिका-उत्सव का ही रूप होता था। संस्कृत साहित्य में स्थान - स्थान पर इसके सम्बन्ध में पर्याप्त वर्णन देखने को मिलता है।

फाल्गुन मास जैसी सुन्दर, रसमयी व सुहावनी ऋतु में जन मानस उस प्राकृतिक आनन्द में डूबकर अपनी व्यथा व पीड़ा को भूल जाना चाहता है। इस ऋतु में प्राकृतिक सौन्दर्य पूरे बहार में होता है। वृक्षों पर कोमल लाल पल्लव और पलाश पर लाल फूल शोभित होते हैं, बगीचों में सुन्दर पुष्पों की मनोहर महक से वातावरण में मस्ती छा जाती है, आम के बौर पर मुग्ध हुई कोकिला की मधुर कुहक जहाँ-तहाँ सुनाई देती है।

यह-ऋतु संगीत है जो बसंत पंचमी से शुरू होकर फागुन की पूर्णिमा तक गाया जाता है। होली पर यह विशेष रूप से गाया जाता है। ब्रज की होली विशेष प्रसिद्ध है और वहाँ गीतों में विषय प्रायः राधाकृष्ण की होली खेलने का रहता है। होली समवेत स्वर से गाया जाने वाला गीत है।

निराला ने भी होरी गीत में नायक-नायिका का प्रसंग और ग्रामीण जन जीवन का चित्र उभारा है, जहाँ हँसी ठिठोली के साथ श्रृंगारिकता का पुट है:

‘नयनों के डोरे लाल।

गुलाल भरे खेली होली।⁵²

या

मार दी मुझे पिचकारी।⁵³

ब्रज और बरसाने की होरी बहुत प्रसिद्ध है। वास्तव में ब्रज की होरी तो अपने ढंग की, एक अनोखे आकर्षण को लिये होती है। नर - नारियों में उत्साह समाता नहीं, लोग जहाँ-तहाँ रसिया गाते नृत्य करते, रंग भरी पिचकारियाँ चलाते हैं। ब्रज नारियाँ बड़े उमंग से लोक गीत गाती हैं। यत्र - तत्र श्री राधा-कृष्ण की होरी लीला का अभिनय किया जाता है। ब्रजभाव से ओत-प्रोत होरी पद देखिये-

होरी खेले किसन गिरिधारी

जमना के नीर-तीर धेनु चरावत। खेलत राधाप्यारी।

आलि कारे गंगा ओली कोरे जमुना। बीच मां राधा प्यारी॥

मोर मुकुट पीताम्बर शोभे। कुण्डल की छवि न्यारी॥

-मीरा - सुधा - सिन्धु से उद्धृत

ब्रज नगरी का एक मनोहर होरी गीत देखिये-

होरी खेलन कूँ आई राधा प्यारी, हाथ लिये पिचकारी।

कितना बरस के कुँवर कनैया, कितना बरस राधा प्यारी॥

सात बरस के कुँवर कनैया, बारा बरस राधा प्यारी॥

अगुँलि पकड़ मेरी पोंच्यो पकड़यो, बैयां पकड़ झकझारी।

-मीरा-सुधा-सिन्धु से उद्धृत

होली के गीतों में प्रायः राधा कृष्ण होली खेलते दिखाई पड़ते हैं, वहाँ निम्न गीत में शिव जी होली का आनन्द ले रहे हैं। यथा-

चल देखि आई भोले क कुंज गलियाँ

चल ।

के हो बोवै भाँग धतुरा

के हो बोवै अनार कलियाँ

चल ।

के हो सीचै भाँग धतुरा

के हो सीचै अनार कलियाँ

चल ।

के हो काटै भाँग धतुरा

के हो तोरे अनार कलियाँ

चल ।

शंकर जी काटै भाँग धतुरा

गौरा जी तोरे अनार कलियाँ

चल ।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम और सीता भी होरी के रंग से अछूते नहीं रहे हैं। एक गीत में राम और सीता सोने की पिचकारी में रंग भरकर एक-दूसरे पर डाल रहे हैं—

होरी खेले रघुवीरा अवध में

होरी ।

राम के हाथ कनक पिचकारी

सीता के हाथ अबीरा, अवध में

होरी ।

हनुमान जी से सम्बन्धित अनेकों होली गीत पाये जाते हैं। निम्न होरी गीत में, सीता हनुमान से लंका में घुसने का बहाना पूछ रही हैं कि किस प्रकार आपने लंका में प्रवेश किया। सीता एवं हनुमान जी का वाद-संवाद होरी गीत में देखिए—

कौनै बहाने आर्या पवन सुत

कौनै बहाने आयौ,

कहाँ छोड़ राम कहाँ छोड़ लक्ष्मिन

कहाँ मुद्रिका पाय पवन सुत

कौन बहाने आयौ।
 बने छोड़ राम बने छोड़े लक्ष्मण
 बनहिं में मुद्रिका पाये पवनसुत
 कौन बहाने आयौ।
 काहे का गढ़ लंका बना है
 काहे की लागी किवाड़ी पवनसुत
 कौने बहाने आयौ।
 सोने क गढ़ लंका बना है।
 चंदन की लागी किवाड़ी पवनसुत
 कौने बहाने आयौ।
 कैइसे लंका दहन कियो हो
 कैइसे तोड़ी किवाड़ी पवन सुत
 कौने बहाने आयौ।
 उलट-पलट लंका दहन किये हैं।
 गदा से तोड़ी किवाड़ी पवन सुत
 कौने बहाने आयौ।

इसी प्रकार से होली के गीतों में कृष्ण एवं गोपियों से सम्बन्धित अनेक वर्णन मिलते हैं। निम्न गीत में वर्णित है कि कृष्ण गोपियों से छेड़छाड़ करते हैं। गोपियाँ कृष्ण जी से प्रार्थना करती हैं कि हमें जमुना पानी भरने के लिए जाने दो, हमें मत रोको। इस होरी गीत में उपरोक्त सन्दर्भ का वर्णन है। गोपियाँ कृष्ण से किस प्रकार आग्रह कर रही हैं देखिये—

हमें जाने द जमुना पानी मोहन
 हमेजाने द जमुना पानी को।
 काहे तु हमें रोकत छेकत
 हम धन नारी बेगानी मोहन
 हमें।
 दधि मोरा खाये मटक सिर फोरे
 मटकी जमुना बहाये मोहन

हमें।

तुम तो ओढ़त हो लालपिताम्बर

हम धन चिरा ओ सारी मोहन

हमें।

मीरा ने कृष्ण से सम्बन्धित गीतों में होरी खेलने का मनोहर वर्णन किया है—

कुंज बिहारी राधा गोरी, नव निकुंज में खेलैं होरी।

भरि-भरि अरगजा लई कमोरी।

छिरकत झकझोरी झकझोरी॥

अबीर गुलाल उड़ावत होरी।

डफ दुंदुभी बाजत थोरी-थोरी॥

पहुप पराग लिये भरि झोरी।

पिय पर डारति हँसी मुख मोरी॥

आँखि आँजि सिर गूथत मोरी।

झूमत गावत अंचल जोरी॥

मीरा प्रभुरस सिंधु झकोरी।

नवलहि गिरधर नवल किशोरी॥

—मीरा सुधा सिन्धु से उद्धृत—

श्रृंगारिकता से सम्बन्धित होरी गीत देखिये, जिसमें पत्नी अपने पति से कह रही है कि उसके लिए हीरे से जड़ा कंगना बनवा दे क्योंकि होली आने में सिर्फ दो ही दिन शेष हैं—

कँगना में हीरा जड़ा दे सांवरिया

होली क दूई दिन बाकि बाँ।

कँगना पहिन हम बगियन गई थी

मलिया के लागी नजरिया सांवरिया

होरी.....।

कँगना पहिन हम तालौ गई थी

धोबिया क लागी नजरिया सांवरिया

होरी।

कंगना पहिन हम महिलौ गई थी
राजा क लागी नजरिया सांवरिया
होरी.....।

होली सम्बन्धी गीतों का अन्य अनेक सन्दर्भ है। जिस प्रकार रंगों की गिनती असम्भव है उसी भाँति इन गीतों का सन्दर्भ भी विशाल है। होली एक ऐसा पर्व है जिसके नाम मात्र से ही उन्माद एवं उल्लास का संचार मानव हृदय में हिलोरें लेने लगता है।

4. चैती

‘चैत्र’ शब्द ‘चित्रा’ के ‘अण्’ प्रत्यय लगाकर बना है। यह एक चान्द्र मास का नाम है, जिसमें चन्द्रमा चित्रा नक्षत्र में स्थिर रहता है। यह महीना अंग्रेजी के मार्च-अप्रैल महीने में पड़ता है। इससे बनने वाले अन्य पद हैं—चैत्री (चैत्र+इच्), चैतिक (चित्रा+इक्) और चैत्रिन् (चित्रा+इनि)। इन सभी शब्दों का अर्थ चैत्र मास होता है। चैत्री (चित्रा+अण्+डीप्) का अर्थ चैत्र मास की पूर्णिमा है। लोकभाषा का ‘चैती’ शब्द उसी चैत्री का अपभ्रंश कहा जा सकता है।

एक सुभाषित ग्रंथ में चैत्र मास के सौन्दर्य एवं विरही जनों के लिए इस समय की कष्टमय स्थिति का चित्रण किया गया है—

स्तोत्र चैत्रगुणोदयस्य विरहीप्राण प्रयाणानकः

टकारः स्मरकार्मुकस्य सुदृशां शृंगार शिक्षा गुरुः

ढोलाकेलिकलासु मंगलपदं बन्दी वनान्तश्रियां

नादोयं कलकण्ठकण्ठकुहरे प्ररवलितः श्रुयते⁵⁴

चैती गीतों के उद्गम का कोई निश्चित इतिहास नहीं है। चैती गीत भी लांक-गीतकार की सहज, स्वाभाविक माधुर्य से ओत-प्रोत रचना है जो अनायास ही एक कंठ से दूसरे कंठ में जाकर लोक प्रचलित हो गई। चैती की गाथा कृषि-प्रधान देश में निश्चित रूप से खेत-खलिहानों से सम्बन्धित है। फसल तैयार होने के बाद जब अनाज घर में आ जाता है, इसी खुशी में किसान निश्चित होकर जो गीत गाता है यहाँ से चैती का उद्गम मानना उचित जान पड़ता है।

नाम के अनुरूप चैत मास से सम्बन्धित होने के कारण इसका सम्बन्ध चैत से ही होना चाहिए। किन्तु चैत के महीने को कहीं-कहीं ‘मधुमास’ की भी संज्ञा दी गई है।⁵⁵

उत्तर-प्रदेश के अवध, बलिया, गाजीपुर, मिर्जापुर, गोरखपुर, इलाहबाद और

बनारस आदि स्थानों पर गाई जाने वाली चैतियों में भोजपुरी का प्रयोग होता है। किन्तु बनारस और मिर्जापुर की चैतियों का अपना ही रंग है। भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में चैती को अलग-अलग नामों से गाया जाता है—कुमाँऊ में वहाँ की चैत्रमास में चैती गेय विधा को 'चैतू', बुंदेलखण्ड की चैती 'फसल' सम्बन्धी गीतों में रामारे, रमटेरा, दिनरा और बिलवारी मुख्य है। चैत्रवदी में राजस्थान में 'घुड़ला गीत' या 'घुड़ल्यों घूमेलागीत' राजस्थानी बोली में गाई जाती है। गुजरात प्रान्त में चैती गीत उपलब्ध नहीं है 'गरबा' गीत में चैत-फागुन एवं बसन्त का चित्रण होता है। महाराष्ट्र में स्त्रियाँ 'चैतागणा' गाती हैं। इन गीतों की भाषा मराठी होती है। मैथिली में 'चैतावर', मगही बोली में 'चैतार' कहा जाता है।

चैती गीतों की प्रधान विशेषता है कि गाते समय इसमें प्रारम्भ में 'रामा' और अन्त में 'हां रामा' टेक लगायी जाती है। 'राम' की टेक इन लोकगीतों की मौलिक विशेषता है।

चैती गीतों के सन्दर्भ

चैत का माह अनेक धार्मिक पर्वों एवं धार्मिक भावनाओं से जुड़ा है। रामनवमी के दिन चैता गाने का एक विशेष उद्देश्य होता है, जो राम जन्म एवं उनके जीवन की अन्य घटनाओं से जुड़ा है। चैतियों में धार्मिक भावनाओं का स्पष्ट उदाहरण इस प्रकार है— जो रामजन्म निमित्त बधैया के रूप में होता है—

बाजे बाजे रे अवध में बधैया हो रामा॥

राम लखन भरत शत्रुघ्न प्रकटे चारो भैया हो रामा॥

नृप दशरथ अति उदिस भये सुनि कंचन देत लुहैया हो रामा॥

एक चैत गीत में धनुष-यज्ञ का वर्णन है जिसमें जनक, सीता का विवाह शिव-धनुष तोड़ने वाले से करेंगे इसका सजीव चित्रण इस प्रकार है—

रामा राजा जनक जी कठिन प्रण छाने हो रामा।

देसे देसे लिखि लिखि पतिया पठावे हो रामा॥

अनेक 'चैतियों' में राष्ट्रीय भावना का स्पष्ट चित्रण देखने को मिलता है। गाँधी जी का स्वप्न लोक-मानस का स्वप्न था। जिसमें सबको समान अधिकार, सुविधाएँ मिलेंगी। गाँधी जी का स्वप्न पूर्ण होगा। इसका उद्गार एक ग्रामिण महिला ने इस प्रकार किया है।

“गाँधी तोरा सुराज-सपनवाँ हरि मोरा पूरा करिहैं ना।

सोने की थारी म ज्योना परोस्यों, सबका जेवाई के जेईहैं ना।

गाँधी

झांझर गेडुआ गंगाजल पानी, सबका पियाह के पीहें ना। गाँधी
फूला हजारी कै सेजा बिछायौं, सबका सोवाय के सोइहें ना।
गाँधी

चैती का वर्ण्य विषय: चैती गीतों में जीवन के प्रत्येक रूपों की विशद् व्यंजना हुई है। इन गीतों में कहीं विवाहित कन्या अपने भाई का इन्तजार करती है जिसके माता-पिता अब इस संसार में नहीं हैं। कहीं आलसी पति को सूर्योदय के बाद सोते देख जगाने का वर्णन, तो कहीं पति-पत्नी के प्रणय-कलह को झांकी, ननद और भाभी को एक साथ पनघट पर पानी भरते जाते देखकर दुश्चरित्र पुरुष द्वारा छेड़खानी करने का वर्णन, तो कहीं ग्वालिनियों द्वारा सिर पर मटका रखकर दही बेचने जाते समय कृष्ण के गोरस माँगने का वर्णन, कहीं राधा-कृष्ण के प्रेम-प्रसंग है तो कहीं राम-सीता का आदर्श दाम्पत्य-प्रेम और उनके भाइयों के बीच अमर-प्रेम प्रदर्शित हुआ है। चइता गीतों में आध्यात्मिक चिन्तन और योग के भी दर्शन होते हैं। वियोग हृदयों के उच्छ्वास से तो चइता गीत भरे पड़े हैं। चैत के गीतों में प्रकृति चित्रण का बाहुल्य है। बसन्त ऋतु को छटा, फूली सरसों, बौरे आम, रस भरे महुआ, पुष्पों पर भवनों के गुंजार आदि का सुन्दर वर्णन इन गीतों में उपलब्ध होते हैं। लोक संगीत के खजाने से निकली यह चैती प्रस्तुत है।

हन्यवा लगत कुम्हीलय गइले रामा, जूही के फुलत

आधीरात फुलैली चमेलिया, अरे जुहिया फलत भिन सखा हो रामा॥

सुप्रसिद्ध तुमरी गायिका श्रीमती गिरिजा देवी जी के द्वारा गाई गई 'कालिगंडा जोगिया' चैती में नायिका की व्यथा किस प्रकार व्यक्त हुई है।

सोवत निंदीया जगाये हो रामा, मोरे रे मोरे॥

जब हम भइली बरह बरस की तब सैया मांगल गवनवाँ हो रामा॥

जब हम भइली सोलह बरस की, तब सैया गइले बिदेसवा हो रामा॥

इस प्रकार चैत गीतों में कलापक्ष एवं भाव पक्ष दोनों का प्रभाव है। चैती गीतों में माधुर्य, भाषा सौष्ठव, सुन्दर शैली, सौन्दर्य एवं अनुभूति प्राप्त होती है इसका कारण है इन गीतों का स्वाभाविक रचना प्रणाली। चैती गीतों में अलंकार योजना का अपना ढंग है। चैती के अधिकतर पदों में शृंगार एवं करुण रस की व्यंजना हुई है।

वियोगी हृदयों के उच्छ्वास से तो चइता गीत भरे पड़े हैं कभी-कभी सुख के क्षण स्वयं आ जाते हैं और मनुष्य अज्ञानतावश उनका मूल्य नहीं समझ पाता, उनका उपभोग कर आनन्द नहीं उठा पाता वही क्षण जब दूर हो जाते हैं तब उनकी आकांक्षा तीव्र हो जाती है। एक वियोगिनी का उच्छ्वास एक चइता गीत जो उपरोक्त वर्णित

ठुमरी की लोक भाषा में इस प्रकार प्रचलित है—

“आल्हर निंदिया जगावे हो रामा मोर सनेहिया।
जब हम रहे न बारह बरिस कै, तब लाये गवनवाँ
हो राम मोरा सनेहिया।
अब जब भयेन हम सोलह बरिस कै, तब सड़ियाँ छाये विदेसवाँ
हो रामा मोर सनेहिया।”

चड़ता गीतों में प्रकृति चित्रण का अनमोल वर्णन इस प्रकार वर्णित हैं—

“सखि आये बसन्त बहार कहाँ लौ बखौनी हो राम चड़त मासे।”
मधुवन मदभरे महुआ महके,
रस की गागरि ढरकाने हो रामा,
चड़त मासे।
अमवाँ की डरियाँ फूटे टिकोरवा,
पिया मिलन काँ जिया हुलसाने हो रामा,
चड़त मासे।
फूले कमल और उमगे जजोबनवा,
पिय के हियाँ लपटाने हो रामा,
चड़त मासे।

इसी प्रकार निम्न चौती गीत में विवाहित स्त्री के हृदय में उठ रहे करुण भाव देखिये—

नइहर से कैउ नाहीं अइले हो रामा बितल फगुनवा। नइहर...
माई मोरी रहती त भईया के पठवती,
भौजी के कटैला करेजवा हो रामा बितल फगुनवा। नइहर...
बाबु मोरे रहते त नइया के पठवतै,
चौली संग टिकुली सिंदुरवा हो रामा, बितल फगुनवा। नइहर...
अमुवा की डारी पे बोले कोयलिया,
झर-झर बहेला पवनवा हो राम, बितल फगुनवा। नइहर...

सामान्य दृष्टि से चौती गीत तीन प्रकार के होते हैं—

1. साधारण चैती,
2. झलकुटिया चैती,
3. घाँटो चैती

1. साधारण चैती — एक ही गायक ढोल आदि वाद्यों के साथ इनका गायन करता है। यद्यपि इसे समूह में भी गाया जाता है। इसमें जोश तथा मस्ती कम होती है। साधारण चैती के भी कुछ अन्य प्रभेद हैं—

- क. खड़ी चैती,
- ख. निगुर्ण चैती,
- ग. झूमर चैती,

2. झलकुटिया चैती : इस प्रकार की चैती के समान 'खँजरिया चैती' भी होती है। यह सामूहिक रूप से गायी जाती है। इसमें दो दल होते हैं। पहला दल एक पंक्ति गाता है तुरन्त बाद दूसरा दल दूसरी पंक्ति को उच्च स्वर से गाता है। हो रामा, आहोरामा की गर्जना से, झाँझ की झनकार तथा ढोलक और कण्ठ मिलकर वातावरण में सौन्दर्य भर देते हैं।

3. घाटो चैती : झलकुटिया चैती की तरह ही घाटो चैती गाते समय भी प्रत्येक दल को विश्राम मिलता है। पहला दल जिस स्वर में गाता है, दूसरा दल उससे उच्च स्वर में टेक पद को दुहराता है। गीत का जब अन्त होना प्रारम्भ होता है तो गाने वाले उच्चतम स्वर में पहुँचकर एकाएक गाना समाप्त कर देते हैं।

उत्तर प्रदेश के चैती गीतों के तीन भेद किये गये हैं—

- (1) चैती, (2) घाँटो और, (3) गौरी

गायन शैली के अनुसार तीनों का स्वरूप भिन्न हो जाता है। चैता गौरी का एक उदाहरण इस प्रकार है—

“सेज चढ़त डर लागे हो रामा पायल बाजे।”

कुछ लोग चैती और घाँटो में अन्तर मानते हैं, परन्तु ये अलग नहीं है। हाँ, गायन शैली की दृष्टि से साधारण चैती और घाटों में अन्तर मात्र इतना ही है कि साधारण चैत के गायन का ढंग ज्यादा अलमस्त से ओजपूर्ण नहीं होता, जितना घाँटों का होता है। यही कारण है कि यह नारी स्वर में भी गाया जा सकता है।

इस प्रकार से ज्ञात होता है कि चैती गीतों में जीवन के प्रत्येक पहलू के दर्शन सम्भव हैं। अपने विशद् विषय तथा मनोहर शैली से ओतप्रोत चैती गीतों का गायन-युगों-युगों तक कायम रहेगा।

5 बारहमासा

‘बारहमासा’ गीत वर्षा ऋतु में गाये जाते हैं। इन्हें स्त्री-पुरुष दोनों ही गाते हैं। इनमें बारहों महीने का बड़ा विशद एवं रूचिकर वर्णन होता है। ऋतु-गीतों में यह बड़ा लोकप्रिय है। वस्तुतः बारहमासा वियोग के गीत हैं। ये प्रकृति-वर्णन के गीत हैं, किन्तु प्रकृति का आलंबन रूप में वर्णन न होकर वियांग के उद्दीपन विभाव का वर्णन होता है। साहित्य में ऋतु षड्-वर्णन का जो स्थान है वही लोकगीतों में बारहमासे का है। बारहमासा लोकगीतों की परम्परा बहुत प्राचीन है। महाकवि जायसी ने ‘पद्मावत’ में नागमती का विरह-वर्णन इसी शैली में किया है।

“ऐसा प्रतीत होता है कि जायसी से बहुत पहले ही लोकगीतों के रूप में बारहमासे प्रचलित थे। जायसी ने उसी परम्परा का अनुसरण अपने काव्य में किया है।”⁵⁶

अनेक सन्त कवियों ने भी इस शैली में लिखे हैं। वीरगाथा काल में ‘वीसलदेव रासों’ का बारहमासा प्रसिद्ध है जिसमें राजमती का विरह वर्णन है। यह बारहमासा गीत में ही नहीं वरन् सभी लोक भाषाओं में प्राप्त होते हैं। बँगला में इन गीतों को ‘बारामाशी’ कहते हैं जो बारहमासा की ही रूपान्तर है। बँगला साहित्य में ‘पल्लौगान’ में और विजय गुप्त को ‘मनसा मंगल’ में बहुला की ‘बारमाशी’ का वर्णन पाया जाता है। भारतचन्द्र के ‘अन्नदा मंगल’ में भी बारहमासा उपलब्ध होता है।⁵⁷

मुख्यतः यह पावस ऋतु का गीत है किन्तु हर ऋतु में गाया जाता है। इसकी लय अनेक है। फागुन के बारहमासे, फाग गीतों के लय में, सावनी गीतों की लय में तथा सोहर व श्रम गीतों के उन्हीं की लय में गाये जाते हैं। कुछ बारहमासा गीतों की स्वतन्त्र लय भी मिलती है।

बारहमासा गीतों में क्रम से प्रत्येक महीने की विशेषताओं का वर्णन किया जाता है। बारह महीने में जितने भी त्योहार, व्रत आदि पड़ते हैं उनके प्रभावों का भी वर्णन इन गीतों में होता है। कुछ बारहमासा गीत सुखान्त और कुछ दुःखान्त हैं। कुछ गीतों में बारह महीनों के अन्दर ही पित्रतम से मिलन दर्शाया गया है और कुछ बारहमासा गीत अन्त तक विरह की पीड़ा को दर्शाते हैं।

“बारहमासा लोक गीतों का एक महत्त्वपूर्ण अंग है और इस प्रकार से वह लोक साहित्य की वह सम्पत्ति है जो न मालूम कब से लोक-जीवन और साहित्य जीवन दोनों को ही अनुप्राणित करते हुए सजीव बनाये है।”⁵⁸

‘बारहमासा’ लोकगीतों का वह प्रकार है जिसमें किसी विरहिणी के वर्ष के प्रत्येक मास में अनुभूत दुःखों तथा मनोवेदनाओं की विवृति पाई जाती है। चूँकि इनमें वर्ष के बारहों मास में अनुभूत दुःखों का वर्णन होता है इसलिए इन्हें बारहमासा कहा

गया है। बारहमासा की उत्पत्ति कहाँ से हुई इस संबंध में विद्वानों में मतभेद है। सुकुमार सेन आदि का विचार है कि बारहमासी परम्परा कालिदास के ऋतु संहार से प्रारम्भ होती है और उसी का प्रभाव आगे बारहमासा की शैलियों पर पड़ा है, किन्तु आशुतोष मुकर्जी⁵⁹ आदि विद्वान बारहमासा की उत्पत्ति लोक गीतों से मानते हैं। वस्तुतः बारहमासा की लोक गीतों से उत्पत्ति मानना अधिक संगत है और जिसमें क्रम से प्रत्येक मास का वर्णन है अधिक स्वाभाविक है। बारहमासा की लोक गीतों से उत्पत्ति हुई यह अधिकांश विद्वान मानते हैं।⁶⁰

लोक जीवन में तो ऋतुएँ और भी अधिक उल्लास और आनन्द की वर्षा करती हैं। विभिन्न समयों में होने वाली ऋतुओं के अनुसार उत्सव, व्रत तथा प्रचलित रिवाज जीवन को प्रभावित करते हैं और उनसे जीवन में एक गहरा असर पड़ता है। इसके अतिरिक्त ऋतुएँ हमारे खान-पान, विवाह, भोजन आदि को प्रभावित करती हैं। लग्नोत्सव, धार्मिक क्रिया-प्रक्रिया, आदि सब पर जब ऋतुओं का अक्षुण्ण प्रभाव पड़ता है, तब काव्य अपनी समस्त मधुरता से अभिभूत होकर अनुस्यूत क्यों न होगा? ऋतु काव्य के नूतन अंकुर और किसलय क्यों नहीं फूटेंगे? वेदों में ऋतुओं के सम्बन्ध में अनेक सूत्र मिल जाते हैं।⁶¹

यद्यपि अधिकांश बारहमासों का वस्तु-शिल्प, विरह वर्णन और संवेदन है, परन्तु संत कवियों द्वारा लिखे बारहमासे का वस्तु-वर्णन के अपवाद कहे जायेंगे। बारहमासे मुसलमानों ने भी लिखे हैं। अनूप संस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर में संग्रहीत कुतुबन की भृगावती कौ प्रति के अन्त में लिखा है—गंगा का बारहमासा - हिन्दी की सबसे प्राचीन रचना है।⁶² इसके पश्चात् तो भक्ति और रीतिकाल में केशव, सुन्दर दास, वृन्द, बिहारी आदि में भी बारहमासे मिलते हैं। मुसलमानों में बुल्लासाह समद काजी, महम्मदपुरमही, अहमद खरासाह आदि ने 122 पद्याँ तक के बारहमासे लिखे हैं।

निम्न बारहमासा में बारहमहीनों का वर्णन, ऋतुओं के वर्णन विषय से सम्बन्धित है जो निम्न प्रकार है—

चढा असाव घना घन गरजे रिमझिम बरसे सावनवाँ ना।
सखि होरी रिमझिम बरसे
भादव मास में पड़ा हिलोरवा सब सखि झुले झुलनवाँ ना।
कुवार मास में खिले बनटेसर कातिक दीप जलनवाँ ना।
अगहन मास में रिती गवने की सब सखी चली गवनवाँ ना।
पूसमास में परे तुसारि मघवा में काँपे करेजवा ना।
फागुन मास में पिया घर नाहीं केहि संग खेलू रंगनवाँ ना।
चैत्र मास में चिठिया पठायें बैसखवा में लिखे अवनवाँ ना।
जेठमास में पिया घर आए, सिर से चुए पसिनवाँ ना।

6. छहमासा

छहमासा बारहमासे का ही एक संक्षिप्त रूप है। इसका वर्ण्य-विषय बारहमासा की तरह ही होता है। अन्तर, मात्र इतना है कि इनमें केवल छः महीनों का वर्णन होता है। ये गीत अपेक्षाकृत कम प्रचलित हैं। इन गीतों में विरह वियोग आदि संवेदनाओं का ही वर्णन होता है।

7. चौमासा

बरसात के कुल चार महीनों की विरह-व्यथा इन गीतों में पाई जाती है समय की दृष्टि से ये बारहमासा की अपेक्षा गाये जाते हैं, क्योंकि इनको गाने में समय कम लगता है। चौमासा, बारहमासा का लघु रूप है। चौमासा में अषाढ़ से कुवार अथवा सावन से कार्तिक तक की प्रकृति का विरहिणी के मन पर प्रभाव चित्रित किया जाता है। प्राचीन में वाणिज्य-व्यवसाय बंद रहता था। जीविका के लिए परदेश गये लोग घर लौट आते थे और घर की मरम्मत आदि कराकर आषाढ़ी को फसल बो-काट कर विजय दशमी के बाद पुनः काम पर चले जाते थे। चौमासे की प्रोषिपतिका की दारुण अवस्था ने ही चौमासे की सृष्टि की है। चौमासा कजली की विभिन्न धुनों में केवल बरसात में ही गाया जाता है और वर्णन भी बरसात का ही होता है। इनमें भी विरह की पीड़ा ही अधिक मुखर हुई है। चौमासा गीतों में जिस महीने में प्रकृति का जो रूप होता है उसी का स्वाभाविक वर्णन उसके प्रभाव के साथ किया गया है। चैत्र की वसन्ती मादकता में प्रिय की सुध स्वाभाविक है—

“चैत मास बन टेसू फूले, चम्पा लाल गुलाल,
जबसे गये पिया विदेसवाँ, नहिं भेजे कुछ हाल।
मैं तो पड़ी रहूँ बेहाल, कैसे धरी सखी धीर।
वैसाख बाँस कटैहीं सखिया, रचि रचि मन्दिर छतौँवैं,
चौमुख खिड़कौ खोलि कै बैठौं, आवै जूड़ बयारि,
जी की सारी जलन मिटि जाए, कैसे धरी सखि धीर।
जेठ मास मा तपै भूभुरी, भीजे तन की चीर,
पिया विदेशी घर ना आये, उठै कलेजे पीर,
मन की सारी तपन बुझाय, कैसे धरी सखि धीर।
असाढ़हि मेह झमाझम बरिसै, ओरी से चूवै पानी।
अँखिया बरसै अँचरा भीजे, तबौ न जलन सिरानी।

नारी मन का अत्यन्त स्वाभाविक और मार्मिक चित्रण एक चौमासे में द्रष्टव्य है

जिसका जीवन अभावों में सिमटा है—

“पहिला मास अषाढ़, बरखा भई है अपार,
गोदी नहीं मोरे बार, केकर करौ इन्तजरिया हरे
साँवरिया।
दूजे सावन झरि लाय, पिया पात्नी न पठाय,
झूला हम्भे के झुलाई, सूनी बाटै मोर महलिया हरे
साँवरिया।
ताजे भादों की अन्हियारी, नइहर बाप न महतारी,
भइया बसैं ससुरारी, धूमिल होइगै पियरिया हरे साँवरिया।
चौथा मास कुवार, पिया मोरा बनिजार,
जी मा आवै न करार, पार के करी उमिरिया हरे साँवरिया।

8. एकमासा

‘एकमासा’ प्रायः सुनने को नहीं मिलता। इसका प्रचलन बिल्कुल भी नहीं है। परन्तु इसका वर्ण्य-विषय बारहमासा, छमासा तथा चौमासा की तरह होता है किन्तु केवल एक महीने का वर्णन एकमासा में होता है। यह अति लघु गीत शैली है।

निम्न एकमासा में प्रियतम की प्रतीक्षा में विरह से व्याकुल नारी हृदय प्रतीक्षा का एक-एक क्षण किस प्रकार व्यतीत कर रही है। साथ ही प्रकृति सौन्दर्य का दर्शन भी निम्नलिखित पंक्ति में इस प्रकार है—

सावन बीतल जात सोहावत सैयों नहीं आये मोर।
बादर गरजै बिजुरी चमकै, छाई घटा घन घोर।
पापी पपीहरा पिउ पिउ बोले, बन-मोर मचावै सोर।
बेगि आइ दरसन देइ जाओं, कहाँ छिपे चितचोर,
देव कहैं धीरज धर गोरिया जल्दी आयेगें पिया तोर॥

9. बसंत पंचमी

बसंत पंचमी भी माघ शुक्ल पंचमी को मनाया जाने वाला ऋतु-परिवर्तन सम्बन्धी अति प्राचीन लोकोत्सव है। मुख्य रूप से यह उत्सव ऋतुराज बसंत के आगमन स्वरूप मनाया जाता है। ऋतु की दृष्टि से बसन्त ऋतु सबसे सुन्दर तथा महत्त्वपूर्ण है, इसीलिए मनाया जाता है। ऋतु की दृष्टि से बसन्त ऋतु सबसे सुन्दर तथा महत्त्वपूर्ण

है, इसीलिए साधारण जन वर्ग अति प्राचीन काल से हर्ष और उल्लास के साथ बसंत का स्वागत करता रहा है। ब्राह्मण वर्ग में इस पर्व का विशेष महत्त्व है। सरस्वती-पूजन भी इस दिन होता है। इस दिन से ही लोग होली की प्रतीक्षा करने लगते हैं तथा धमार चौताल आदि गाना प्रारम्भ कर देते हैं। यह प्राचीन लोकोत्सव है। श्री हर्षकृत रत्नावली में भी इस उत्सव का उल्लेख है। बसन्त पंचमी को श्री पंचमी मदनोत्सव और बसंतोत्सव तीनों ही नामों से अभिहित किया जाता है।

आये बसंत, कहो हर सों,

बौर आम, फूली है सरसों।

इस उत्सव पर पुरुष द्वारा सावन मल्हार तथा स्त्रियों द्वारा कजरी सावन लोकगीत गाया जाता है।

आयी बसन्त सुहावन महिनवाँ

झूला झुलावे हमरौ सजनवाँ।

कूकै कोयलिया, पपीहा बोलै

झूला झुलावे हमरो सजनवाँ।

10. आल्हा

आल्हा वर्षा ऋतु में पुरुषों द्वारा ढोल तथा मृदंग पर गाया जाने वाला अति प्रचलित लोकगीत है जिसमें आल्हा ऊदल के शौर्य का वर्णन रहता है। वर्षा ऋतु में ग्राम-ग्राम में ढोल तथा मृदंग पर गाए जाते हुए आल्हा की तानें सुनी जा सकती है। इसकी शैली वीर रस तथा ओज प्रधान शैली मानी जाती है। मुख्य रूप से यह वीर रस का गीत है और इसमें आल्हा ऊदल के शौर्य का ही वर्णन रहता है किन्तु बाद में इस शैली ने लोक में इतना प्रचलन पाया कि अनेक प्रकार के भाव इसी शैली में लिखे जाने लगे। आल्हा गानेवाला अल्हैत कहलाता है। आल्हा के गीतों का मुख्य विषय महोबे के आल्हा, ऊदल, मलखान और ब्रह्मा आदि की प्रशंसा और युद्ध - वर्णन होता है। आल्हा⁶³ छन्द में गायी हुई कोई रचना, लोक में आल्हा ही कही जाती है।

आल्हा में लोक प्रवृत्ति के अनुकूल ही बीच में विभिन्न लोक देवताओं और देवियों का उल्लेख मिलता है, बीच में लोकोक्तियों तथा भाग्यवादी उक्तियों का समावेश है। इसी प्रकार अनेक लोक सांस्कृतिक तत्वों का भी उल्लेख है। जिनका प्रस्तुत प्रबंध में यथा स्थान उल्लेख हुआ है। आल्हा में कहीं-कहीं लोक सीख से उदाहरण भी मिलते हैं।

11. रसिया

रसिया होली का एक प्रमुख लोक गीत प्रकार है। रसिया की एक विशेष ढाल या ताल होती है और जो होली संबंधी गीत उस ढाल या तर्ज में गाए जाते हैं रसिया कहे जाते हैं। जिस प्रकार होली का ही एक प्रमुख भेद कबीर है उसी प्रकार रसिया भी होली का एक गीत प्रकार है। श्रृंगार प्रधान विषय में रसिया अधिक लिखे गए हैं। ब्रज में रसिया सदा गाया जा सकता है किन्तु होली धमार फागुन में ही गाये जाते हैं। होली मुक्तक गीत है जिसके दो भेद माने जाते हैं—एक साधारण होली और दूसरी राजपूती होली। साधारण होली में 'रसिया' जैसे विषयों और भावों के साथ होली खेलने का उत्साहपूर्ण वर्णन रहता है।

'रसिया' रास की एक विशेष धुन है, जिसे निश्चित स्वर में गाकर रासलीला करते हैं।

श्रृंगार भावना से ओत-प्रोत एक रसिया गीत इस प्रकार है—

काँटा लगे रे देवरिया

मोपै गैल चली ना जाय।

रसिया की व्युत्पत्ति 'रसिक' से हुई है। रसिया और होली का घनिष्ठ संबंध है। रसिक कृष्ण की सम्पूर्ण लीलाओं का वर्णन रसिया में हुआ है। बाद में श्रृंगारिक बातों का चित्रण ही रसिया का प्रतीक बन गया। एक रसिया में बरसाने की होली का सुन्दर चित्रण है—

बरसाने में सामरे की होरी रे

लाल गुलाल लाल भये बदरा

मारत भरि भरि झोरी रे।

12. बिरना

'बिरना' शब्द भाई के लिये प्रयुक्त होता है, जो 'वीर' शब्द से बना है। सावन में बहनें झुला झूलते समय अपने भाई को सम्बोधित करके जो गीत गाती हैं, उन्हें 'बिरना' कहते हैं—

सावन क झुलवा झुलावै सब सखी मिल के,

तबहिं बिरन धरौं हमरा पहरवा।

काहे के हो भेजू माई मोरी ससुरारी,

अब कवन बिरन धारौं हमरौ पहरवा।

13. मोरा

श्रावण में गाये जाने वाले 'मोरा' गीत में मोरा प्रियतम का प्रतीक है। ब्रज का मोरा-गीत बहुत प्रसिद्ध है। इन गीतों में प्रकृति की विशालता एवं सौन्दर्य का वर्णन होता ही है, साथ में प्रेम-प्रसंग का मनोहर चित्रण भी होता है। चित्र-विचित्र रंगों से रंगे और पंख फैलाकर नृत्य करने वाले सुदर्शन 'मोर' के कारण ब्रज का रंग बढ़ गया है। 'मोर' गीत का एक उदाहरण इस प्रकार है—

“तेरे बिरज में मोर बहुत हैं, बोलत मोर फटै छतिया”

रानी गागर भरती है तो मोर लुढ़का देता है और पंख फैलाकर पानी पीता है। रानी मोर से कहती है—

‘परै रे सरक जा मोरा भरन दै नी, मोघर सास रिसायगी जी।’

परन्तु मोर कहता है—

‘आज बसेरौ हरियल बाग में जी।’

मोर गीत का अन्य उदाहरण—

भर भादों की मोरा रैन अँधेर

राजा की रानी पानी नीकरी जी

काहे की गगरी रे मोरा काहे की लेज

काहे जड़ाऊ धन ईडरी जी।

14. मेघासिन

मेघों की देवी मेघासिन और राजा इन्द्र : वर्षा ना होने के कारण किसान दम्पति का व्याकुल होना स्वाभाविक है। ऐसे में आकुलमन मेघों की रानी 'मेघासिन' को लौट कर आने की विनती करती हैं— 'मेरे मरद हार गये हैं मेरी भैंसों का दूध सूख गया है और मेरी सारी फसल सूख गई है, मेघासिन रानी, तुम कहाँ चली गयी हो—

मेरौ धरौ ऐ चपटियन-बीच मेघासिन रानी कित गई जी।

मेरे भदर गये ऐं सब हार, मेघासिन रानी कित गई जी।

रानी ऊँची तौ चौरौ चौखनौ, दूध पखासूँगी पाँय,

मेघासिन रानी कित गई जी।

15. चन्द्रावली

चन्द्रावली नाम की लड़की को कुछ मुगल घेर लेते हैं? उस समय वह लड़की अपना सन्देश चील द्वारा पिता और ससुर के पास भेजती है। पिता और ससुर चन्द्रावली को मुगलों के चंगुल से उसे छुड़ाने का पूरा प्रयत्न करते हैं, परन्तु असफल रहते हैं। तब चन्द्रावली अपने सतीत्व के लिए आग में जलकर भस्म हो जाती है। इसी लोक कथा के आधार पर चन्द्रावली नाम के गीत प्रचलित हैं।

यह गीत श्रावण में इस ऐतिहासिक घटना की स्मृति में ब्रजमंडल में ही नहीं, अन्य जनपदों में भी गाया जाता है। बुंदेलखण्ड में यह चन्द्रावली न होकर 'मथुरावली' है। ब्रज में यह गीत बहुत प्रचलित है। इसका एक रूप यों है—

सात सखियन के झुंड में सुन्दरि पनियाँ कूँ जाय,
बीच मिलौ है पठान कौ सुँदरि लई है छुड़ाय लाल सिपाही जालिमा।
एक अन्य रूप इस प्रकार है—

गलिन-गलिन मुगला फिरैं छज्जने फिरैं पठान,
घेर लई चन्द्रावली जैसी राजकुमारि।

जब चन्द्रावली के डोले को मुगल घेर लेते हैं, तब 'सरग-उड़ती-चिरहुली' से वह आग्रह करती है कि तुम मेरे पीहर को जाओ और बाबुल से कहो कि तुम्हारी बेटी को 'जालिम लाल सिपाही' ने घेर लिया है।

16. शिवरात्रि

हिन्दू संस्कृति में शिवरात्रि फाल्गुन के तेरस को मनाया जाता है। बसन्त ऋतु के अन्त में शिवरात्रि का व्रत पड़ता है। जो बहुत बड़ा धार्मिक त्योहार के रूप में उल्लास के साथ मनाया जाता है। उत्तर-प्रदेश के लगभग सभी जनपदों में शिवरात्रि मनायी जाती है। शिवरात्रि के दिन भगवान शंकर का विवाह पार्वती देवी के साथ सम्पन्न हुआ था। प्रायः कजरी, फाग, चैती आदि गीतों में धार्मिक गीतों का प्रचलन होता है। राधा-कृष्ण, राम-सीता, शंकर-पार्वती आदि देवी-देवताओं से सम्बन्धित रचना गाई जाती हैं। शिवरात्रि के दिन प्रातः काल से ही परिवार के समस्त लोग व्रत रखते हैं और मन्दिर में जाकर पूजा-अर्चना करते हैं। इस अवसर पर शिव-पार्वती से सम्बन्धी अनेक गीत गाये जाते हैं यथा—

सिव भोले न जागै जगाय हारी।
ब्रह्मा जगावैं, विष्णु जगावैं, नारद जगावैं बजाय तारी,

सिव बाबा न जागै जगाय हारी।
गंगा जगावै, यमुना जगावै, सरजू जगावै लहर भारी,
सिव बाबा न जागै जगाय हारी।
राधा जगावै, रुक्मिणी जगावै, गौरा जगावै हिलाय दाढ़ी।
सिव भोला न जागै जगाय हारी।

17. हरियाली तीज

सावन के शुक्ल पक्ष की तृतीय को 'हरियाली तीज' का लोकपर्व तो अत्यन्त हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। ब्रज में 'हरियाली तीज' का प्रचलन अधिक है। इस त्योहार में विवाहित कन्या को उसके माता-पिता सुहाग से सम्बन्धित श्रृंगार का सामान भेजते हैं। इस व्रत का उद्देश्य पति की लम्बी आयु से होता है। सभी स्त्रियाँ व्रत रखती हैं।

एही वर देवौ प्रभु, एही देवौ असीस हो,
सोलह श्रृंगार हमारौ जुग - जुग बाढ़े हो।

18. नागपंचमी के गीत

यह श्रावण शुक्ल पंचमी के दिन मनाई जाती है। गाँवों में यह 'नागपंचमै' नाम से प्रसिद्ध है। इसमें नाग देवता की पूजा कर उनके भोजन के लिए दूध और धान को खील दी जाती है। इस अवसर पर सभी बहनें किसी नदी या तालाब में गुड़िया बनाकर फेंकती हैं और भाई एक डंडे से उस गुड़िया को पीटते हैं। इसके बाद वहाँ उपस्थित सभी भाई-बहन एक दूसरे को मिठाई-पान आदि खिलाते हैं। इस दिन सभी लड़कियाँ घर के बड़े बुजुर्गों के कान के पीछे जरई (धान का छोटा पौधा) लगाती हैं। और उनसे आशीष और नेग माँगती हैं।

अजहू त आव हो नाग बाबा,
जेहि देहो पूरखन असीस,
हमरो झोलिया डारो असीस।

19. ढोला गीत

यह गीत वर्षा ऋतु में गाया जाता है। ब्रज के ढोला गीत को 'पथगीत' के अन्तर्गत रखा जाता है। साधारणतः यह चिकाड़े पर गाया जाता है जो सारंगी की शक्ल का होता है। अवकाश में ढोला-गायक मनोरंजक लोक-कहानी भी कहते हैं।

20. बिरहा

गाँवों में पावस आता है तो वहाँ के गरीबों को ओढ़ने-बिछाने के लिये ठौर नहीं मिलता। चरवाहा ऐसे समय बिरहा गाकर दुःख भूलता है—

मन तोरा अदहन, तन तोरा चाउर

नयना मूँग की दालि-

अपने बलम के जेवना जेबतिउ

बिनु लकड़ी बिनु आगि।

21. झूला या हिंडोला

वर्षा ऋतु में हिंडोले के गीत गाये जाते हैं। भादों में तीज तक और कजरी के मौसम में रात भर हिंडोला चलता है तथा गीत गाये जाते हैं। इस प्रकार के गीत विशेष रूप से झूले पर ही बैठकर गाये जाते हैं। इनके वर्ण्य-विषय में झूलने का वर्णन होता है।

वर्षा ऋतु में विशेष कर नारियाँ झूला झूलती हैं। प्रियतम के साथ हिंडोला झूलने का उल्लेख पद्मावतकार ने किया है।⁶⁴

हरिषर भूमि कुसुम्भी चोला।

ओ पिय संग म रचा हिंडोला॥

गुजराती भाषा में ब्रजभाव का एक झूला गीत इस प्रकार है⁶⁵

ओ हिंदोरोहेली झूले छे नन्दकिशोर।

हो हींदोरे झूले छे नन्दकिशोर॥

चम्पे की डार हींदोरे घाल्यो, रेशम नी गज डोर॥1॥

राधे जी कृष्ण झूलन लागा, झुलावे छे सखियाँ को साथ ॥2॥

दादुर मोर पपैया बोले, कोयल कर रही शोर॥3॥

बाईं मीरों के प्रभु गिरधर नागर, हरिचरणा बलिहार॥4॥

झूला को ही झूलन या हिंडोर शब्द से भी प्रायः सम्बोधित किया जाता है। यह श्रावण के महीने में कृष्ण और राधिक। तथा राम और जानकी के झूला झूलने के अवसर पर गाए जाते हैं। इनका प्रचार मथुरा, वृन्दावन गोकूल से ही हुआ, किन्तु पीछे

जाकर

था वि

गया।

वर्तमा

ने श्यामा-श्याम, राम-जानकी तथा साधारण नायक-नायिकाओं, तीनों के झूला के संबंध में पद लिखे हैं।⁶⁶ बारहमासा गीतों के विपरीत झूला या हिंडोला गीत में संयोग श्रृंगार की प्रधानता होती है। इनमें प्रायः बगीचे में राधा कृष्ण या नायक-नायिका के झूला झूलने तथा मान-मनुहार आदि का वर्णन मिलता है।

कुंज - बन डारौ रे।

झूलन आई राधिका प्यारी रे॥

22. सावन

यह गीत श्रावण मास में गाया जाने वाला छन्द है जिसमें कजली की सारी विशेषताएँ समाहित हैं। किन्तु इसके गाने का जो तर्ज है कजरी से भिन्न है। इन गीतों में मुख्यतः गीत के अन्त में 'हरे साँवरिया' टेक पद लगाया जाता है।

“हर-हर बहेला पवनवाँ, हरे साँवरिया।

छवहीं महीनवाँ कहिके गये परदेसवाँ,

बीति गये बारहा महिनवाँ, हरे साँवरिया॥”

ब्रज में सावन गीत आज भी 'मल्हार' कहलाते हैं। कजरी की भाँति एक और प्रकार के गीत अवध में गाये जाते हैं जिन्हें 'सावन' कहते हैं। सावन नामक गीतों में कहीं उल्लास है तो कहीं करुणा की अभिव्यक्ति है। यहाँ झूला-झूलते समय जो गीत गाये जाते हैं, उन्हें सावन, बिरना या कजरी कहते हैं। ब्रज में सावन गीतों के अन्तर्गत 'मोरा गीतों' की स्वर-लहरी बड़ी मनमोहक होती है। ब्रज में 'सावन का पटका' भी बहुत प्रचलित है—

सावन का महीना मेहा रिमझिम बरसे।

ठंडी ठंडी बियार बादल बरसै रे फुहार।

ब्रज क्षेत्र में सावन के जो गीत गाये जाते हैं, इनमें पनिहारिन, नटवा, चन्दना, आदि प्रबन्ध-गीत भी हैं। सावन के गीतों में यहाँ चन्द्रावली की कथा भी गाई जाती है। सावन के गीतों में प्रायः प्रियतम के वियोग में अधीर प्रेमिका (पत्नी) का वर्णन होता है। जो प्रियतम के बिछोह में व्याकुल हो उठती है। अब प्रियतम की चिट्ठियों का भी कोई महत्त्व में नहीं रह गया है जिनमें उसके लौटने का कोई सकेंत न हो। ऐसे में छोटा देवर ही विपत्ति का साथी है। भाग्य की बिडम्बना यह है कि प्रतीक्षा की घड़ियाँ अब समाप्त हो गयी हैं परन्तु प्रियतम साथ में सौत भी ले आए हैं। जो अत्यन्त पीड़ादायक है। सावन की रिमझिम फुहार अंगार बन गयी है। इस विरहिणी नायिका की व्यथा इस गीत में उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है—

जबहिं गये विदेशवा बिसर गये मोहें हरे साँवरिया
देवर संग करूँ हूँ तोरी बतिया हरे साँवरिया
लहुरा देवर बनि गये मोरे दुखवा के सथिया॥ हरे साँवरिया॥
इतनी बरस बीत गई तबहिं तुम लउटे
अंगना लड़ आये हमरी सवतिया॥ हरे साँवरिया॥

इस प्रकार सावन के गीतों में वियोग-पक्ष का विदारक वर्णन प्राप्त होता है। सावन गीत स्त्री मन के अत्यन्त समीप होता है। यदि किसी स्त्री का प्रियतम उससे दूर है तो, वह सावन के सुहावने मौसम में विकल हो उठती है। और कहीं, स्त्री अपने प्रियतम के साथ होती है तो वह मोर के समान प्रसन्नता में नाचने लगती है। उसके द्वारा गाये जाने वाले सावन के गीतों में शृंगारिकता, चंचलता, अलहड़पन सभी भावों के दर्शन स्वतः हो जाते हैं।

अतः सावन गीत में प्रकृति सौंदर्य और मानव हृदय का समागम देखते ही बनता है। प्रकृति का अनुपम सतरंगी रूप ही सावन गीत को प्रेरणा देता रहा है जो अनेक भावरूप मानव मुख से गीत बन कर बिखरते रहे हैं।

निष्कर्षतः उत्तर प्रदेश में प्रचलित ऋतुकालीन लोकगीतों का भाव एवं सन्दर्भ अनन्य है। वियोग, संयोग, शृंगार एवं उन्माद की मनोहर छटा इन लोकगीतों में देखे जा सकते हैं इस प्रकार देखा जाय तो ऋतुओं का सृष्टि पर सम्पूर्ण अधिकार है। ऋतुओं के बदलने से मनुष्य के जीवन का हाव-भाव सोच-विचार, काम-काज प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। ऋतु परिवर्तन सृष्टि के कण-कण को परिवर्तित कर देता है। यही कारण है कि लोकगीतों का मर्म भी ऋतुओं से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

सन्दर्भ

1. रनित भृंग-घंटावली, झरित दान मधु-नीरु।
मंद-मंद आवतु चलयौ कुंजर कुंज समीरु॥
सुबोधक, तनसुखराम गुप्त, पृ० 193
2. श्रीरामचरित मानस, तुलसीदासकृत पृ० 140-141
3. वही (बालकाण्ड से उद्धृत)
4. भारतीय संगीत और कवि घनानंद, डॉ० अर्चना पाण्डेय, पृ० 104
5. बच्चन गीत संगीत, महावीर प्रसाद, 'मुकेश', पृ० 85
6. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (षष्ठ भाग), रीतिकाल : रीतिबद्ध काव्य,
डॉ० नगेन्द्र, पृ० 206
7. वही, पृ० 207
8. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, डॉ० नगेन्द्र, पृ० 206
9. कहलाने एकत बसत, अहि, मयूर, मृग बाघ।
जगतु तपोवन सौ कियो दीरध-दाध निदाध॥
सुबोधक (मन्दाकिनी, बिहारी लाल के दोहे से उद्धृत) तनसुखराम गुप्त पृ०
194
10. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, डॉ० नगेन्द्र, पृ० 206
11. वही
12. मीरा-सुधा-सिन्धु, स्वामी आनन्द स्वरूप, पृ० 434
13. पवस-धन अधियार, महि रहयो भेषु नहि आनु।
गत द्यौस जान्यौ परतु, लखि चकई चकवानु॥
सुबोधक (मन्दाकिनी-बिहारी लाल के दोहे, से उद्धृत) तनसुखराम गुप्त,
पृ० 195
14. श्री रामचरित मानस का सौन्दर्यतत्त्व, डॉ० कवीश्वर ठाकुर, पृ० 213
15. वही
16. श्री रामचरितमानस, तुलसीदासकृत, किष्किंधाकाण्ड से उद्धृत
17. In the autumn Season, the breezes blow cool coming in contact with
kumuda flowers; the quarters are beautiful since the clouds have
disappeared; the water has lost its turbidity; the earth is freed of mud;
and the sky is adorned with the clear - rayed moon and the stars.
कालिदास, संगीत-मंजरी-2, ऋतु संहार संगीत सुरभि डॉ० सुषमा कुलश्रेष्ठ,
पृ० 141

18. श्री रामचरितमानस (किष्किंधाकांड)
19. In the autumn Season, the earth is whitened by the 'Kasa' flowers, the night by the moon, the waters of the rivers by swans, the ponds by Kumuda flowers. the forest-regions by the saptacchde trees.
कालिदास-संगीत-मंजरी-2, ऋतु संहार-संगीत-सुरभि, डॉ. सुषमा कुल-श्रेष्ठ, पृ० 115
20. The numerous fields, being Covered with profuse paddy, beautifield with flocks of Femaie deer and resonant with graceful 'kraunce birds are glad bening the minds of the people.
कालिदास-संगीत, मंजरी-2, ऋतु संहार-संगीत, डॉ० सुषमा कुलश्रेष्ठ, पृ० 157
21. श्री रामचरितमानस, तुलसीदासकृत (बालकाण्ड से उद्धृत)
22. हिन्दुस्तानी संगीत में राग की उत्पत्ति एवं विकास, डॉ. सुनन्दा पाठक, पृ० 286
23. वही
24. वही, पृ० 292
25. संगीत मधुबन (निबन्ध संग्रह) डॉ. राकेशबाला सक्सेना, पृ० 65
26. वही
27. लोक गीतों के सन्दर्भ और आयाम, डॉ० शान्ति जैन, पृ० 191
28. हिन्दी साहित्य कोश, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ० 181
29. संगीत, अगस्त 1969 अंक 8, शम्भुनाथ मिश्र, पृ० 38
30. भारतेन्दुयुगीन हिन्दी काव्य में लोकतत्त्व, डॉ. विमलेश कान्ति, पृ० 389
31. वही, पृ० 59
32. लोक साहित्य की भूमिका, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ० 98
33. संगीत, सितम्बर 1990, अंक 9, श्यामरंगशुक्ल, पृ० 37
34. वही
35. वही
36. वही
37. भारतेन्दुयुगीन हिन्दी काव्य में लोकतत्त्व, डॉ० विमलेश कान्ति, पृ० 51
38. सुबोधक (मंदाकिनी), तनसुखराम गुप्त, पृ० 176
39. जौनपुर जनपद के 'खपरहौ' ग्राम के बुजुर्ग महिला से प्राप्त कजरी।

40. वही
41. वही
42. भारतेन्दुयुगीन हिन्दी काव्य में लोकतत्त्व, डॉ. विमलेश कान्ति, पृ० 61
43. अवधी लोकगीतः (समीक्षात्मक अध्ययन) डॉ. विद्याविन्दु, सिंह, पृ० 109
44. रीतिकालीन परम्परा में पद्मावत, द्वारिका नाथ राय, पृ० 270
45. भोजपुरी के नये गीत और गीतकार, राहगीर, पृ० 61
46. भारतेन्दुयुगीन हिन्दी काव्य में लोकतत्त्व, डॉ० विमलेश कान्ति, पृ० 64
47. वही
48. आदिकालीन हिन्दी साहित्य शोध, डॉ. हरीश, पृ० 137
49. वही, पृ० 143
50. हिन्दुस्तानी संगीत में होली-गान (उद्गम, विकास, परम्परा और वर्तमान स्वरूप), नीता माधुर, पृ० 4
51. रीतिकालीन परम्परा में पद्मावत, द्वारिका नाथ राय, पृ० 269
52. निराला, भाषा छंद और लय, मीना व्यास, पृ० 57
53. वही
54. लोकगीतों के सन्दर्भ और आयाम, डॉ. शान्ति जैन, पृ० 304
55. चैती, डॉ. शान्ति जैन, पृ० 75
56. लोक साहित्य की भूमिका, डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, पृ० 104
57. वही, पृ० 105
58. अवधी, लोकगीत : समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. विद्या विन्दु सिंह, पृ० 100
59. भारतेन्दुयुगीन हिन्दी काव्य में लोकतत्त्व, डॉ. विमलेश कान्ति, पृ० 71
60. वही
61. आदिकालीन हिन्दी साहित्य शोध, डॉ. हरीश, पृ० 402
62. वही
63. आल्हा छन्द में 31 मात्राएँ होती हैं। 8, 8, 5 पर यति होती है। अन्त में गुरु-लघु आते हैं। प्रसिद्ध कवि जगनिक ने इसी छन्द का प्रयोग किया था। (पृ० 358 के फुट नोट से उद्धृत), कृषक, जीवन, सम्बन्धी ब्रज भाषा शब्दावली (द्वितीय खण्ड), डॉ० अम्बा प्रसाद 'सुमन'
64. रीतिकालीन परम्परा में पद्मावत, द्वारिका नाथ राय, पृ० 271
65. मीरा-सुधा-सिन्धु, स्वामी आनन्द स्वरूप, पृ० 448
66. भारतेन्दुयुगीन हिन्दी काव्य में लोकतत्त्व, डॉ० विमलेश कान्ति, पृ० 275

चतुर्थ अध्याय ऋतुकालीन लोकगीतों में शास्त्रीय संगीत की भूमिका

(1) लोकगीत एवं शास्त्रीय संगीत का सम्बन्ध

ब्रह्म से अलग सम्पूर्ण सृष्टि तथा नाद रहित सृष्टि की कल्पना करना असम्भव है। नाद 'ब्रह्म' है यह समस्त प्राणियों का चैतन्य है, आनन्द रूप है, उपास्य है-

चैतन्य सर्वभूतानां विवृत्तं जगदात्मना।

नाद ब्रह्म तदानन्दमद्वितीयमुपास्महे॥^१

नादोपासना से ब्रह्मा, विष्णु महेश तीनों ही उपासित हो जाते हैं क्योंकि वे स्वयं नादात्मक हैं-

नादोपासनया देवा ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः।

भवन्त्युपासिता नूनं यस्मादेते तदात्मकाः॥^२

नाद ही संगीत कला का स्रोत है। गीत, वाद्य और नृत्य तीनों ही नादात्मक हैं। संगीत में 'नाद' के महत्त्व को लोचन ने इस प्रकार वर्णित किया है:-

न नादेन बिना गीतं न नादेन बिना स्वरः।

न नादेन बिना ज्ञानं न नादेन बिना शिवः॥^३

अर्थात् न नाद के बिना स्वर की उत्पत्ति सम्भव है, न नाद के बिना गीत-रचना सम्भव है, न नाद के बिना ज्ञान प्राप्त हो सकता है और न ही नाद के बिना शिव (कल्याण) की उपलब्धि हो सकती है। फलतः नाद ही स्वर है, वाद्य तथा नृत्य है।

गीत, वाद्य और नृत्य-ये तीनों संगीत कहलाते हैं। सर्वप्रथम संगीत की परिभाषा 'संगीत रत्नाकर' में इस प्रकार की गई है-

गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते।^४

यह संगीत की व्यापक परिभाषा है। शार्ङ्गदेव ने रंजक स्वरसमूह को 'गीत' की संज्ञा दी है। गीत संज्ञा का प्रयोग वहाँ व्यापक अर्थ में हुआ है जिसमें समस्त संगीत विधाओं का अन्तर्भाव होता है। शार्ङ्गदेव ने उसी अर्थ में गीत शब्द का प्रयोग किया है-

रजकः स्वरसंदर्भो गीतमित्यभिधीयते।

गान्धर्व गानमित्यस्य भेदद्वयमुदीरितम्॥^५

शाङ्गदेव ने गीत के दो भेद गान्धर्व तथा गान बताये हैं। गान्धर्व श्रेणी में वह संगीत आता है जो अपौरुषेय, अनादि है तथा उसका लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति है। गान वाग्गेयकारों द्वारा निर्मित अर्थात् पौरुषेय है तथा उसका लक्ष्य जनरंजन है। गान, देश या जनरूचि के अनुसार परिवर्तनशील रहता है, अतः देशी कहलाता है।

देशी संगीत दिश् धातु से बना है। दिश् का अर्थ है— देश विशेष या किसी कस्बे में रहना, व्यवहार या आन्तरिक रिवाज, संसार की दिशाएँ। देशी संगीत सदा जनसाधारण के मनोरंजन के लिए होने के कारण लोकरूचि पर आधारित रहता है और इसीलिए परिवर्तनशील होता है।^६

“संगीत दर्पण” ग्रंथ में श्री दामोदर पण्डित ने संगीत का जन्म ब्रह्माजी के द्वारा माना है। उन्होंने लिखा है—

“दुहिणेन यदन्विष्टं प्रयुक्तं भरते न च।

महा देवस्य पुरतस्तन्मार्गाख्यं विमुक्तम्॥”

अर्थात् ब्रह्मा जी ने जिस संगीत को शोधकर निकाला भरतमुनि ने महादेव जी के सामने जिसका प्रयोग किया तथा जो मुक्तिदायक है वह मार्गीय संगीत कहलाता है।

श्री पदबन्धोपाध्याय के अनुसार, ‘मार्ग’ संगीत वैदिक पौराणिक समय का सामगायन और भक्ति गायन ही था। ‘देशी’ विभिन्न समय व विभिन्न स्थानों का संगीत है और यही बाद में हिन्दुस्तानी और कर्नाटक संगीत बना।^७

यदि देखा जाय तो लोकगीतों में केवल रागों का आभास या छाया मात्र है। इसी मात्र आधार पर हम इसका शास्त्रीय विस्तार कर लेते हैं। मूल स्वरों को राग के नियमों में बांधकर उसकी प्रकृति के अनुसार भिन्न-भिन्न रागों में बांध लेते हैं। लोकगीतों की स्वर-रचनाओं में स्वरों का उपयोग व्यक्ति या समूह की रागात्मक या भावात्मक वृत्ति के आधार पर होता है। जिसमें शास्त्रीय रागों का बीज रूप परिलक्षित होता है। लोक संगीत से रागोत्पत्ति का स्पष्ट संकेत निम्न श्लोक से होता है—

“येषां श्रुति स्वर ग्राम जात्यादि नियमो न हि।

नानादेश गतिच्छाया देशी रागास्तु ते स्मृताः॥”

अर्थात् जिन रागों में श्रुति स्वर ग्राम जाति इत्यादि का नियम नहीं होता और जिन पर विभिन्न लोक रूचियों का प्रभाव होता है, वे देशी राग हैं। इस प्रकार आंजनेय का कथन है।

रागों की उत्पत्ति का इतिहास जानने के लिए जब हम इतिहास का अध्ययन करते हैं तो राग की उत्पत्ति का स्पष्ट प्रमाण प्राप्त होता है। अतः राग जिनकी उत्पत्ति प्रादेशिक धुनों से अथवा वन्य लोक धुनों से हुई है। कुछ राग ऐसे हैं, जिनकी उत्पत्ति भरत पश्चात् प्रादेशिक तथा वन्य लोक धुनों से हुई है। बहुत से ऐसे रागों के प्रचार में नामकरण भी उनके अपने प्रदेश या धुनों से सम्बन्धित नाम दिये गये हैं: जैसे- कामभोजी, मालवा, आन्ध्री, छेवाती, गुर्जरी, पुलिदिका, सावेरी, बंगाली टक्क आदि। वोदट राग भी एक वन्य धुन से सम्बन्ध रखता है, वो वोदट देश में प्रचलित है।

देशे देशे रुच्या यज् जनह्रद्रव्जनं तु सा देशी।

स तु लोकरुचिविकलितः प्रायो लक्ष्यात्र देशी तत्॥¹⁰

अर्थात् 'देशी' लोगों की रुचि के कारण विकलित अर्थात् विकृत स्वरूप वाला, आलाप आदि से विहीन होता है। लक्ष्य अर्थात् प्रचार में प्रायः 'देशी' होता है।

अबलाबालगोपालैः क्षितिपालैर्निजेच्छया।

गीयतेयानुरागेण स्वदेशे देशिरूच्यते॥¹¹

कहने का तात्पर्य है— अपने-अपने देश में जिस संगीत को स्त्रियाँ, बच्चे, गोपालक और राजा अर्थात् सभी वर्गों के लोग अपनी इच्छा से आनन्दपूर्वक प्रयुक्त करते हैं, उसे 'देशी' कहा जाता है।

ब्रह्मा ने जिसका निर्माण या अन्वेषण वेदों से किया वह मार्ग संगीत कहा गया और देश-देश की जनरुचि के अनुसार जिस हृदयरंजक संगीत की अभिव्यक्ति हुई, वह देशी कहा गया। देशी संगीत के विकास की पृष्ठभूमि में लोक संगीत विद्यमान रहा। जिसे देश या जाति का संवेदनशील मानव जिस समय अपने हृदय के भावों की अभिव्यक्ति करने के लिए उन्मुख हुआ, उसी अवसर पर स्वर-स्वर-लय प्राकृतिक रूप से उसके मुख से उद्भूत हुए और इन्हीं स्वर-गीत और लय को नियमबद्ध कर उनका जो शास्त्रीय विधान किया गया, वह देशी संगीत बना। यही देशी संगीत आज शास्त्रीय संगीत है। शास्त्रीय संगीत और लोक संगीत दोनों में ही संगीतात्मक एवं काव्यात्मक छंदों का प्रयोग निहित है। इसीलिए दोनों ही संगीत के 'स्वरतालपदात्मकम्' सूत्र को सार्थक सिद्ध करते हैं। परन्तु अन्तर यह है कि शास्त्रीय संगीत में संगीतात्मक छंदों का विशेष महत्त्व है और काव्यात्मक छंद केवल संगीत की रस-निष्पत्ति में सहायक का कार्य करते हैं जब कि लोक संगीत में काव्यात्मक छंद प्रबल रहता है और संगीतात्मक छंद उसके सहायक का कार्य करता है।

भारतीय संगीत के मुख्य रूप से तीन प्रकार दृष्टिगत होते हैं— शास्त्रीय संगीत, सरल संगीत और लोकसंगीत। शास्त्रीय संगीत अर्थात् पक्का गाना, जो शास्त्रीय नियमों में पूर्ण रूप से बंधा रहता है। इसके अन्तर्गत ध्रुपद, ख्याल, तुमरी (उपशास्त्रीय),

टप्पा, दादरा इत्यादि प्रमुख शैलियों की गणना होती है। अधिक प्रचार व प्रसार में होने के कारण वर्तमान समय में 'शास्त्रीय संगीत' के पर्यायवाची के रूप में प्रचलित हैं। सरल संगीत की शैलियों में कुछ को शास्त्राधार प्राप्त है, कुछ को नहीं। किन्तु लोक संगीत शास्त्र के बंधनों से यथा सम्भव मुक्त है।

साम तथा गान्धर्व दोनों का मूलाधार लोक संगीत रहा है इस दृष्टिकोण से दोनों मूलतः देशी संगीत का प्रतिनिधित्व करते हैं। युगों-युगों से लोक संगीत शास्त्रीय संगीत का प्रेरणा स्रोत रहा है।

विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित विभिन्न प्रकार के लोकगीतों में कुछ राग स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते हैं, कुछ में कई रागों का सम्मिश्रण है। कुछ गीतों में राग अस्पष्ट व असम्बद्ध रूप से दिखाई पड़ते हैं। सामाजिक और दैनिक जीवन के प्रत्येक अवसर पर स्त्री-पुरुषों के द्वारा या सामूहिक रूप से या अलग-अलग गाये जाने वाले गीतों का प्रचलन है। बंगाल में बाउल, भटियाली, प्रभाती, गंभीरा इत्यादि प्रधान रूप से प्रचलित है। हरियाणा में 'झुला-गीत' राजस्थान में 'घुमर', गणगौर, बिहार तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश में भोजपुरी, बिदेसिया, खिलौना, चैती, और कजरी, महाराष्ट्र में 'लावनी' आदि प्रधान रूप से प्रचलित है।

लोक गीत में अलग-अलग अवसर के गीतों की अलग-अलग लय है। इनकी प्रवाहमयता गीतों के भाव और रस पर आधारित है। चंचल प्रकृति के राग द्रुत कहरवा में है, संयोग शृंगार के गीतों में कहरवा, दादरा का प्रयोग हुआ है।

संगीत लोकरुचि पर आधारित लोक संगीत था। इस कथन की पुष्टि करते हुए ठाकुर जयदेव सिंह आधुनिक समय में प्रचलित शास्त्रीय संगीत को मार्ग के अन्तर्गत तथा लोक-संगीत को देशी संगीत के अन्तर्गत मानते हैं।¹²

लोक संगीत में संस्कार गीतों का विशेष महत्त्व है। जन्म से मृत्यु तक हर संस्कार के अलग-अलग गीत हैं, उनकी अलग-अलग धुनें हैं। 'सोहर' जिसकी गति विलम्बित लय की होती है। द्रुत लय के सोहर गीत को (उतारा) या 'उलारा' कहते हैं।

इसी प्रकार विवाह संस्कार के गीतों में भी लम्बे और मार्मिक गीत विलम्बित लय में होते हैं। इन बड़े गीतों को गाकर द्रुत लय के छोटे गीत गाये जाते हैं। इन्हें 'सहाना' गीत कहते हैं। संस्कार गीतों के अतिरिक्त श्रम गीत होते हैं जिनमें अवधी क्षेत्र में प्रमुख है—जैतसार, निरवाही, रोपनी और कोल्हुई के गीत। जैतसार, गीत प्रायः अत्यन्त मार्मिक होते हैं और विलम्बित लय में गाये जाते हैं।

संगीत शास्त्र की दृष्टि से लोक गीतों का बहुत महत्त्व है। शास्त्रीय संगीत के विकास में लोक संगीत ने काफी योगदान किया है। टप्पा, दादरा, कीर्तन, भजन आदि

लोक संगीत के ऋणी हैं। ये ताल, लय, गति और स्वर से युक्त हैं। यद्यपि लोकगीतों में संगीत का सर्वांगीण रूप नहीं मिलता, किन्तु लोक-संगीत शास्त्रीय संगीत से सर्वथा पृथक् है, यह कहना उचित नहीं है। भारतीय जन समाज में स्वर के साथ-साथ लय का स्वरूप भी प्राकृतिक रूप से जुड़ा हुआ दिखलाई पड़ता है।

आदिकाल के ऋचाओं से लेकर अब तक जितनी भी धुनें बनी हैं, उन धुनों के बनने में लय, ग्रह, गति, यति, काल, मार्ग, सम आदि रूप से सम्बन्धित सभी प्रकरण अप्रयास ही धुनों के साथ घुले-मिले हुए मिलते हैं। इन्हीं अवयवों के समष्टि रूप को हम सताल कहते हैं।

इन धुनों में स्वराघात के आधार पर सात मात्राओं के ही तालों का रूप हम पाते हैं, जिसे आज की भाषा में दादरा, कहरवा, झपताल, खेमटा, रूपक और दीपचन्दी कहते हैं। इन लोक गीतों में अधिकतर शास्त्रीय परम्परा के कहरवा, दादरा, खेमटा, दीपचन्दी (चाँचर) तथा जततालों का प्रयोग पाया जाता है। जतताल चौदह मात्राओं का होता है तथा खेमटा छह मात्राओं का। कहरवा ताल के कुछ गीतों में चार मात्राओं का प्रयोग होता है, कुछ में आठ मात्राओं का। सात मात्रा के रूपक ताल का प्रयोग अक्सर चैता तथा सोहर में देखा जाता है। कहरवा तथा दादरा ताल का प्रयोग अस्सी प्रतिशत लोकगीतों में होता है। सोरठा, कजरी, बिरहा, पचरा, झूमर, पूर्वी, निर्गुण, पराटी, पीड़िया, छठी, माता आदि के गीत इनके अन्तर्गत आते हैं।

सोहर, जनेऊ, गवना, गोधन, होली, चैत, जँतसार आदि जतताल में गाये जाते हैं। विदेसिया दीपचन्दी ताल में गाया जाता है किन्तु इनके लिए कठोर नियम नहीं हैं। एक लोकगीत दो भिन्न तालों में भी गाया जा सकता है, जैसे- विदेसिया दीपचन्दी एवं जतताल में, झूमर, कहरवा एवं दादरा दोनों में गाया जाता है।

प्रायः लोकगीतों में चार थाटों का अंश अधिक रूप में उपलब्ध होता है— 1. विलावल, 2. खमाज, 3. काफी और 4. भैरव थाट।

लोक गीतों में प्रायः सात शुद्ध स्वरों तथा विकृत कोमल गन्धार एवं कोमल स्वरों का प्रयोग मिलता है। कहीं-कहीं कोमल ऋषभ एवं कोमल धैवत का प्रयोग भी मिलता है। तीव्र मध्यम से युक्त लोकगीत कम हैं। अधिकांश लोकगीतों में तीन, चार या पाँच स्वर ही प्रयुक्त होते हैं, जबकि सम्पर्क बढ़ने के साथ-साथ अब स्वर-परिधि भी बढ़ रही है।

लोक धुनें सरल होती हैं, किन्तु उनमें गायन के सौन्दर्यवर्धक उपकरणों का अभाव नहीं होता। इनमें भी गाते समय खटके, मुर्की तथा मीँड आदि का प्रयोग किया जाता है। शास्त्रीय संगीत में अनेक रागों का जन्म भी लोक धुनों से हुआ है। आसावरी, भैरवी, झिंझोटी और पहाड़ी आदि इसके उदाहरण हैं, जिनका मूल स्रोत लोकगीतों में

खोजा जा सकता है/ राग तिलक कामोद पर आधारित पश्चिमी उत्तर का एक लोकगीत प्रस्तुत है जिसकी धुन का स्पष्ट प्रभाव एक प्रसिद्ध ठुमरी में दिखाई पड़ता है। जो दीपचन्दी (चांचर-मात्रा 14) ताल में बद्ध है।¹³

ताल-दीपचन्दी (चांचर 14-मात्रा)

सुनो सखी सैयों जोगिया होय गये।

हम हूँ जोगिन होय जाए॥

प	प	S	नि	-	नि	-	नि	सा	-	ग ^३	रे	ग	स
सु	नो	S	स	S	खी	S	सै	या	S	जो	S	गि	S
	X		2				0			3			
मग	-	-रे	सासा	-	रे	नि	सा	-	-	-	-	नि	सा
या	S	S	होय	S	S	ग	ये	S	S	S	S	S	S
	X		2				0			3			
प	-	-म	-पध	-	प	म	-	ग	गै	-रे	सा	नि	
हो	S	S	S	S	S	जा	S	S	S	S	S	ए	S

इस लोक धुन पर आधारित एक प्रसिद्ध ठुमरी¹⁴ इस प्रकार है।

ठुमरी (ताल दीपचन्दी चांचर-14 मात्रा)।

अब की सावन घर, आ जा रे,

ठड़ जा रे कागले जाइयो सँदेसवा।

स्थाई

प	प	-	नि	-	नि	-	नि	सा	-	गै	सारे	ग	स
अ	ब	S	की	S	सा	S	व	न	S	S	S	घ	र
	X		2				0			3			
ग ^३	-	रे-	सा	-	-	-	सा	-	-	नि	-	-	-
आ	S	S	S	S	S	S	जा	S	S	रे	S	S	S
	X		2				0			3			

अन्तरा

रे	रे	-	म	-	म	-	प	-	-	प	-	प	-
उ	ङ	५	जा	५	रे	५	का	५	५	गा	५	ले	५
X			2				0			3			
म	म	-	प	-	-	प	म	पध	प	म	ग-	रे	सा-
ज	इ	५	यो	५	५	सँ	दे	५५	स	वा	५५	५	५५

यही तुमरी 16 मात्राओं वाले चांचर (जत) में इस प्रकार गाई जाती है।¹⁵

स्थाई

प	प	नि	नि	सा	गँसारे-	ग	म	ग	-	-	-	रे	(सा)	-	नि	-
अ	ब	की	सा	व	न५५५	घ	र	आ	५	५	५५	जा	५	रे	५	
X				3				X				2				

अन्तरा

रे	रे	म	म	प	-	प	-प	मम	-प	-प	म	पधम	मगँ	सा
उ	ङ	जा	रे	का	ऽ	ग	ऽले	जइ	ऽयो	ऽसं	दे	ऽऽस	वाऽ	ऽ
X				3				X			2			

लोकगीत संगीत के अमर कोष हैं। इन लोक धुनों की संख्या अनन्त है। अतएव संस्कारगत अथवा जातिगत लोकगीतों की कुछ विशेष धुनें हैं। कुछ लोकगीतों में आधुनिक विलावल ठाट, काफी ठाट और खमाज ठाट का रूप मिलता है। संगीत की बारीकियों का रूप नैसर्गिक रूप से इन लोकगीतों में प्राप्त होता है। कण, मुकौं, खटका, कम्पन आदि का सहज प्रयोग लोक गीतों की अपनी विशेषता है। शायद ही ऐसा कोई गीत हो जिसमें स्वरों का सीधे लगाव के साथ-साथ इनका प्रयोग न हुआ हो।

लोकगीतों में पुरुषों द्वारा गाये गये गीत (श्रम गीत, जाति गीत, चैता गीत आदि) एवं स्त्रियों द्वारा गाये गये गीत (संस्कार गीत, ऋतुगीत आदि) की स्वर-संयोजना में नितान्त भिन्नता दिखाई पड़ती है। पुरुष वर्ग की गम्भीर ध्वनि के साथ-साथ उनके स्वरों के चयन में भी गम्भीरता दिखाई पड़ती है। इसमें ऋषभ और गन्धार पर विशेष बल दिया जाता है।

स्त्रियों के गीत कोमल भावनाओं से इतने अधिक प्रभावित होते हैं कि इन स्वर

लहरियों में मध्यम स्वर एवं पंचम स्वर के साथ शुद्ध (नि) अथवा कोमल (नि) का प्रयोग प्राप्त होता है।

श्री कोमल कोठारी का कथन है कि—“लोकगीत के संगीत में लय की सहज प्रवृत्ति की प्रधानता है। यहाँ लय का तालात्मक शास्त्रीय विधान नहीं है। शास्त्रीय संगीत में लय का विकास ताल की मात्राओं के सुनिश्चित गणन एवं गुणन की जटिलताओं में विभाजित रहता है। किन्तु इसके विपरीत लोक संगीत में लय की सहज प्रवृत्ति मात्राओं के विशिष्ट भाग में विभाजित रहती है।”⁶

साहित्यिक दृष्टि से लोक संगीत का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। शास्त्रीय संगीत के ध्रुपद में ब्रज, मगधी तथा हिन्दी भाषा का प्रयोग पाया जाता है। लोक गीतों में किसी एक पुनरावृत्ति प्रश्नोत्तर प्रणाली, टेक आदि, जिनसे गीत को कंठस्थ करने में, भावाभिव्यंजन में तथा गीत के विस्तार में जिनमें स्वर, ताल और लय का संयमन है। यह संयमन लोक-संगीत में विद्यमान है। लोक संगीत की अनेक धुनों की बन्दिशें विशुद्ध रागों में हैं। उसी प्रकार, जिसे ‘शास्त्रीय संगीत’ कहा जाता है, उसका मुख्य आधार लोक-संगीत है।

लोकगीत गाने में वाद्य-यंत्र की भी सहायता ली जाती है। इनमें ताल-वाद्य हैं—मादल, ढोलक, नगाड़ा, नौबत, डफ, डमरू, खंजरी आदि। ये अवनद्ध वाद्य भी कहलाते हैं।

तार-वाद्य अथवा तत् वाद्यों में सारंगी, इकतारा और सितार का प्रयोग किया जा सकता है। फूंक के अर्थात् सुषिर वाद्यों में बांसुरी, बीन, शहनाई, श्रृंगी तथा शंख इन गीतों के सौन्दर्यवर्धन में सहायक होते हैं। वाद्य-यंत्रों के अभाव में चुटकी या ताली बजाकर भी काम चलाया जाता है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में लोक संगीत में प्रयुक्त होने वाले वाद्यों में ढोलक, खंजरी, सारंगी, झाँझ, करताल और जोड़ी सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। बिहार और बंगाल में चांद खोल का प्रयोग भी प्रचलित है। झाँझ और ढोलक का लोकगीतों से बड़े निकट का संबंध है। होली और आल्हा गाने में ढोलक का विशेष प्रयोग होता है। गोपीचन्द और भरथरी की गाथा गाने वाले साईं लोग सारंगी बजा-बजाकर जाविकोपार्जन करते हैं।

लोक गीतों में गायक अथवा गायिकाएँ जिस वर्ण अथवा स्वर पर जोर देते हैं उसे ही स्वराघात कहते हैं। लोकगीतों का संगीत पक्ष भी कम रोचक नहीं। लोकगीतों की धुनों की, उनकी स्वर संरचना की तथा उनके लय प्रवाह की अपनी विशिष्टताएँ हैं। प्रथम, इनकी बन्दिश, प्रायः मध्य-सप्तक में ही सीमित होती है, वह भी पूर्वार्ध में ही, उत्तरार्ध का स्पर्श यदा-कदा ही होती है। तार एवं मन्द्र सप्तक इनकी परिधि से बाहर ही रहते हैं, कुछ अपवादों को छोड़कर। इसलिये इनका गायन श्रम साध्य भी

नहीं होता। यों तो इन बन्दिशों में सभी बारह स्वरों का प्रयोग होता है, किन्तु बहुलता शुद्ध स्वरों की ही होती है।

दूसरे, अधिकांश लोकगीत कहरवा, दादरा जैसे छोटे किन्तु प्रवाहमान तालों में निबद्ध होते हैं। चाल इनकी अक्सर मध्यलय में ही होती है; विलम्बित एवं द्रुतलय में बहुत कम लोकगीत गाये जाते हैं। तीसरे, इन लोकगीतों के स्वर विन्यास और लयदारी में सहज प्रवाह होता है, कोई बनावटीपन नहीं। और अन्तिम, कितने ही लोकगीतों की बन्दिशें कुछ गिने, चुने लोकप्रिय रागों पीलू, भैरवी, तिलक-कामोद आदि के मोहक स्वर गुच्छों में होती है। लोकधुनों से आसावरी, भैरवी, झिंझोटी, पहाड़ी-आदि रागों का जन्म माना जा सकता है।

चौताल, एकताल, तिलवाड़ा और झुमरा जैसी बड़ी और क्लिष्ट तालों का प्रयोग शास्त्रीय संगीत में बहुलता के साथ होता है। मध्य एवं द्रुत की दादरा तथा कहरवा तालें लोक संगीत को जहाँ रंजकता से भर देते हैं, वहीं सर्वापयोगी भी बनाती हैं। रागदारी में ताल के ठाह, दुगुन, आड़ में यह कार्य भिन्न-भिन्न प्रकार से चाल बदलकर साध लिया जाता है।

शास्त्रीय संगीत में कला पक्ष और लोक-संगीत में भावपक्ष की प्रधानता पाई जाती है। शास्त्रीय संगीत में स्वर, ताल और लय का संगम है जो लोक संगीत में भी विद्यमान है। लोक-संगीत की अनेक धुनों की बन्दिशें रागों में हैं। कुछ लोक धुनें तो रागों पर ही आधारित हैं तथा उनकी छाया इन लोक धुनों में झलकती है। ऐसे रागों में राग पीलू, जोगिया, खमाज, देश, झिंझाटी, सारंग, गारा, माँड तथा काफी आदि प्रमुख हैं। इन धुनों का स्वर क्षेत्र दो या तीन स्वरों से लेकर सम्पूर्ण स्वर सप्तक तक विस्तृत रहता है अथवा कभी-कभी इनका विस्तार तीनों सप्तकों में भी किया जाता है।

विरह तथा विदाई एवं अन्य हृदयस्पर्शी गीतों में दीपचन्दी, खेमटा अथवा झपताल का प्रयोग मिलता है। इन गीतों में गति-यति, मात्राओं और तालों की सृष्टि स्वराघात और उच्चारण की प्रकृति पर आधारित है।

अतः संगीत को वेद की प्रथम सौदी कहा गया है। सा, मा, पा को ब्रह्मा, विष्णु और महेश माना जाता है। शब्द, स्वर और लय वस्तुतः ये तीन ही त्रिदेव के रूप में हैं और इन्हीं के माध्यम से साहित्य में अथवा संगीत में सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की स्थापना होती है।

लोक संगीत की प्रमुख विशेषता है, धुनों की मधुरता, तरलता, गीतात्मकता, तालबद्धता, छान्दिकता आदि। कोई भी संगीत हो लोकगीतों को संगीत की अमूल्य निधि माना जाता है। लोकगीत से ही ठुमरी, दादरा, भजन आदि की उत्पत्ति हुई है।

लोक गीतों के पूर्वांग और उत्तरांग के स्वरों का स्थायी और अन्तरा के रूप में अनुमति के अनुसार चढ़ाव और उतार दिखलायी पड़ता है।

ये लोक गीत भविष्य के संगीतज्ञों के लिए अमर कोष हैं अथवा महासागर हैं, उसमें जितनी डुबकी लगाई जायेगी, उतने ही हीरे-मोती (राग-धुन) प्राप्त होंगे। संगीत की चाहे कोई विधा हो, लोकगीत से प्रभावित हुए बिना रहे, यह सम्भव नहीं।

(2) ऋतुकालीन गीतों में शास्त्रीय संगीत के तत्त्व

अधिकांश लोक संगीत के रचयिता शास्त्रीय विषयों के ज्ञाता नहीं होते। अतः उनमें छन्द दोष तो होता है, किन्तु उनकी शब्द-योजना और स्वर-योजना स्वाभाविक तथा अनुभूतिगम्य होती है। इसी से लोक गीतों में मधुरता का प्रसाद गुण एवं सरसता प्रधान रूप से मिलती है।

ऐसा समझा जाता है कि मिर्जापुर में “जहाँगीर खलीफा ने सैकड़ों वर्ष पूर्व कजरी-गायन परम्परा को आरम्भ किया।”¹⁷ शास्त्रीय संगीत के समान कजरी गायन परम्परागत निर्धारित धुनों में गाई जाती है। टेक होती है—रामा, रे हरी, न बलम्, साँवर गोरिया, ललना आदि। उदाहरणतः यहाँ निम्न गीत में कजरी की टेक ‘ननदी’ बन गई है—

“कइसे खेले जइबू सावन में कजरिया, बदरिया घेरी आई ननदी॥”

एक अन्य गीत में ‘न’ ‘वर्ण’ टेक है—

“कृष्ण कूद परे कालीदह में जाई के गेंदा गिराई के न।”

कजरी के अन्तर्गत प्रचलित धुनों को लेकर इसे अलंकार, मुर्की के साथ शास्त्रीय पद्धति से भी गाया जाता है।

कजरी गीतों की धुनें विशेष रूप की होती हैं। यह आवश्यक नहीं कि इन गीतों का विषय पावस ही हों। कजरी धुन में गाया जाने वाला किसी भी विषय पर आधारित गीत मात्र वर्षा ऋतु में गाया जा सकता है, क्योंकि कजरी गीतों की पहचान धुनों से अधिक होती है, विषय वस्तु से कम। कजरी में प्रायः दादरा और कहरवा इन्हीं दो तालों का प्रयोग होता है। इसमें चंचलता का भाव है, इसलिये दादरा का आधिक्य है, क्योंकि दादरा में चांचल्य अधिक है। कुछ गीतों में आठ या छः मात्रा के एक विशेष ताल का प्रयोग होता है। तो ताल उछालकर बजाया जाता है। इस गीत में उत्साह का भाव होता है। लय इतनी चलती हुई होती है कि पाँव थिरकने लगते हैं। इस तरह की ताल को भड़कतिल्ला या भरताला भी कहते हैं। मिर्जापुर कजरी धुन में गौड़ मल्हार, सारंग व तिलक कामोद रागों को स्पष्ट छाया इनमें देखी जा सकती है। यथा—तिलक कामोद राग में कजरी का उदाहरण देखिए—

वर्षा ऋतु में मुख्यतः सावन के महीने में गाये जाने वाला उत्तर प्रदेश का एक

बहुत ही लोकप्रिय गीत विधा 'कजरी' का एक उदाहरण इस प्रकार है:-

ग ग सा रे	ग ग ग म	मग रेग सा सा	साग रेग सा नी
स खि यौं ऽ	फू ल न च	लोऽ ऽऽ फु ल	बऽ गिऽ य न
पू नी सा रेग	सारे ग म म	मग रेग सा नि	सा - - -
धि र आ यीऽ	ऽऽ का री ब	दऽ रिऽ या ऽ	ना ऽ ऽ ऽ

इन पक्तियों में राग तिलक कामोद का लक्षण दिखाई देता है। खमाज थाट जन्य राग तिलक कामोद का साधारण स्वरूप इस प्रकार है :-

पू नि सा रे ग, सा, रे प म ग, सा नि।

पू नि सा रे ग, सा, रे, प, मग, सा, रे, ग, सा, नि, प, नि सा रे ग, सा।

कजरी में कोमल स्वरों का प्रयोग कम पाया जाता है। शुद्ध स्वरों का प्रयोग होने के कारण गायकों ने इनका संयोजन अधिकतर देसराग अथवा खमाज में किया वस्तुतः खमाज में कजरी अधिक ललित और उपयुक्त प्रतीत होती है, किन्तु खमाज थाट लोक-संगीत के उद्भव के बाद कौ वस्तु है। कजरी गीतों के स्वर-समूह से यह थाट मेल खाता है, इसलिए इसे खमाज में रखा गया। वस्तुतः लोक गीतों का कोई नियमबद्ध शास्त्र नहीं था। कालक्रम से जब राग-संगीत का विकास हुआ तो रागों ने कुछ लोकधुनों से और लोकधुनों ने कुछ रंग रागों से लिया। इस आदान-प्रदान ने निश्चय ही प्रत्येक गायन-शैली को परिष्कृत किया।

शास्त्रीय संगीत के विकास के पूर्व जो लोकधुनें थीं, उनमें कोमल स्वर या अधिक स्वर लेने की प्रथा नहीं थी। इसका कारण लोकगायकों में स्वर ज्ञान तथा अभ्यास की कमी रही होगी। सा, रे, म, प, नीं, सां, - सारंग का अंग ही अधिकतर लोकधुनों की नींव रहा है। कजरी के स्वर-समूह खमाज थाट के अन्तर्गत आते हैं, इसलिये इनमें अब कहीं-कहीं कोमल निषाद का प्रयोग होने लगा है। कुछ कजरी गीत पीलू, काफी और सारंग में भी मिलते हैं।

जैसे-जैसे समय बीतता गया, शास्त्रीय गायक लोकधुनों में अपनी गलेबाजी तथा कलात्मक ज्ञान का समावेश करने लगा। इसलिये वे उन्हें तुमरी शैली में गाने लगे। यही कारण है कि कहीं-कहीं तिलक कामोद, देस या तिलंग में भी कजरी सुनने को मिलती है। हल्के रागों में लोकगीतों को सीमित कर देने के कारण ही इनका लालित्य बना हुआ है इसी भाँति राग सारंग, पीलू और खमाज में भी तुमरियाँ सुनी जाती हैं।

शास्त्रीय संगीतकारों ने चैती गीतों को ध्रुपद-धमार शैली में तथा तुमरी के रूप में भी प्रस्तुत किया है। लेकिन इसके विशिष्ट रूप को स्थिर ढंग से नहीं बदला गया है। धुनें वही हैं और मौलिकता सुरक्षित है, मात्र शैली में थोड़ा अन्तर आया है।

संगीत की दृष्टि से चैती अत्यन्त मधुर एवं कर्णप्रिय गायन शैली है। जहाँ तक लोक-संगीत की परिधि में चैती का पर्यवेक्षण है, वह अपने-आप में ठोस एवं सम्पूर्ण है। अधिकतर चैती गीत विशेष रूप से सात एवं आठ मात्रा में गाई जाती है। सात मात्रा में अधिकतर रूपक या कहीं-कहीं चौदह मात्रा वाले 'जत' ताल का प्रयोग किया जाता है। आठ मात्रा में गाई जाने वाली चैती के अनुसार जो प्राचीन विभाजन है, वह पाँच एवं तीन मात्रा का है, जबकि आधुनिक विभाजन के अनुसार आठ मात्रा का है, विभाजन चार-चार मात्रा करके, यानी 'कहरवा' ताल के अनुसार ही होता है। दादरा तथा अन्य तालों में चैती नहीं पाई जाती है। कम से कम अब तक की खोज में तो ऐसा ही पाया गया है।

यद्यपि इसमें प्रयुक्त होने वाले स्वर-समूह की बात है तो चैती किसी थाट-विशेष की उपज नहीं है। हाँ, इसके स्वर समुदाय को देखते हुए उन्हें थाट विशेष में रखा जा सकता है। विशुद्ध चैती, मात्र लोक धुन है, किन्तु स्वर-संयोजन को देखते हुए लगता है कि चैती गीत अधिकतर खमाज थाट में रखे जा सकते हैं। कभी-कभी चैती विलावल थाट में भी पाई जाती है। कुछ शास्त्रीय गायकों ने इसे 'पीलू' तो कुछ ने इसे 'देस' एवं तिलक कामोद में ही बाँधा है। चैती राग गारा एवं जैजैवन्ती में भी गाये जा सकते हैं। इन रागों में बँधकर भी चैती सहज संग्राह्य होती है। बनारस की एक चैती¹⁸ जो ताल दीपचन्दी-चाँचर 14-मात्रा में बद्ध है—

“यही ठाँई मोतिया हैराय गइले रामा, कहवाँ मैं दूँदौं।”

स्थायी:

ग	ग	-	ग	-	ग	म	मग	रे	-	ग	-	ग	म
य	ही	S	ठा	S	ई	S	मो	ति	S	या	S	है	S
X			2				0					3	

म	ग	-	रे	सासा	-	नि	सा	ध	नि	ध	नि	रे	-	-
रा	S	S	य	गई	S	ले	S	रा	S	S	मा	S	S	S
X				2								3		

ध	ध	-	सा	-	-	रे	ग	रे	ग	सा	-	ध	सा
क	ह	S	वा	S	S	मैं	दूँ	S	S	ढौ	S	S	S

उपरोक्त चैती की धुन से विदित होता है कि दुमरी के रागों के विकास में विभिन्न क्षेत्रीय लोकधुनों का पर्याप्त योगदान एवं महत्त्व रहा है। इतना अवश्य है कि

चैती में मधुर-स्वरों का संयोजन होने के कारण उसमें हल्के रागों का प्रयोग किया गया है। विशेष रूप से उन रागों का, जिनमें ठुमरी अधिक मधुर प्रतीत होती है। चैत के माह में हर रात ग्राम के लोग ढोलक, झाल लेकर चैती गाते हैं। इसमें श्रृंगार रस को प्रधानता रहती है तथा 'हे रामा', 'रामा' आदि इसके टेकपद हैं। अपने मधुरतम भाव के साथ चैतार करुण रस से ओत-प्रोत रहता है।

खड़ी चैती के अन्तर्गत एक स्वर का ही प्रयोग होता है, कहरवा ताल का प्रयोग इसमें अच्छा लगता है। झुमर चैती, इसका अधिकतर ताल द्रुत कहरवा होता है। खंजरिया चैती के बीच-बीच में विविधता लाने के लिए कभी-कभी चौदह मात्रा में जत ताल को बदलकर गायक इसे आठ मात्रा के कहरवा में भी गाने लगते हैं। उसके तरह-तरह के बोल बनाये जाते हैं, यह क्रिया शास्त्रीय संगीत का जीवन्त उदाहरण है। कभी मध्यलय रहती है, कभी द्रुतलय हो जाती है। इस तरह कहरवा गाते-गाते फिर जतताल में गीत पकड़ लिया जाता है। स्वरों के आरोह-अवरोह में भी दोनों दलों के बीच यही परिवर्तन क्रम चलता रहता है।

उत्तर प्रदेश के चैती गीतों के तीन भेद किये गये हैं—

1. चैती, 2. घाटों और 3. गौरी

चैती में विशेष सवरों के प्रयोग के कारण यह धीमी लय में गाया जाता है। “चैती गायन की विशेषता यह है कि इसके गाने में प्रथम अवरोह, फिर आरोह और पुनः अवरोह होता है। अर्थात् प्रारम्भ में मन्द स्वर बीच में उच्च स्वर और अन्त में पुनः मन्द स्वर का प्रयोग किया जाता है।¹⁹ इसकी एक प्रमुख विशेषता यह है कि आरोह-अवरोह के क्रम से घाटो चैती का गायन इस प्रकार होता है कि इससे प्रथम तो उच्चतम स्वर का प्रयोग होता है फिर उच्च स्वर का व्यवहार होता है और अन्त में मन्द स्वर आता है।

भरत के अनुसार, “चैती हिंडोल के पुत्र-पुत्र बधुओं में एक नाम है। कुछ गायक चैती गायन में पूर्वी, दादरा, चैती-ठुमरी, चैता-भैरव और चैती-भैरवी को भी शामिल करते हैं।²⁰

इसी प्रकार ब्रज की होरी में ख्यालों के माध्यम से होली-गायन पद्धति प्रचलित है। होली और धमार में केवल तालों का अन्तर है। फाग-संबंधी पदों को खयालिये दीपचन्दी, त्रिताल आदि तालों में गाते हैं।

होली के अवसर पर विभिन्न प्रकार के वाद्यों के वादन का उल्लेख भी अष्टछाप काव्य में विस्तार से हुआ है। झांझ, झिली, निर्झर, भेरी, मृदंग, बोन, रबाव, ढोल, पखावज, रूज, झालरी आदि विभिन्न प्रकार के वाद्यों के प्रयोग का उल्लेख कृष्ण भक्त कवियों ने अपने काव्य में होली विषयक पदों में किया है।²¹

आचार्य कैलास चन्द्र देव बृहस्पति के अनुसार “तन और मन दोनों को रंग देने वाला पर्व होली हिन्दू और मुसलमान दोनों को समानरूपेण रंगीन प्रतीत हुआ था। धमार ताल में गाये जाने वाले गीतों की संज्ञा, ‘होरी’, हो गई थी और ऐसे गीत ध्रुवपद गायकों के गान का एक अनिवार्य और ललित अंग थे।”²²

भारतेन्दु ने होली-विषयक पदों में बिहाग, सिन्दूरा, धनाश्री, काफ़ी, देस, आसावरी, पूर्वी, गौरी इत्यादि रागों का तथा धमार, इकताल आदि तालों का तथा “प्रेमघन” ने राग ललित, मुलतानी, सिन्दूरा, सोहनी कान्हरा, भैरवी, धनाश्री आदि रागों में तथा छंद अष्टपदी, ठुमरी, खेमटा आदि शैलियों में लिखी है।²³

ब्रज का लोकगीत तालों की दृष्टि से समृद्ध है। दादरा और कहरवा के अतिरिक्त अनेक कठिन तालें यहाँ बड़े सहज भाव से व्यवहृत होती हैं। उदाहरण के लिए सावन में गाया जानेवाला यह लोकगीत देखिए—²⁴

रे ग - रे - सा-	नि सा - सा रे म रे	ग - - रे - - नि
दे खो ऽ री ऽ सुऽ	क ट ऽ झो ऽ टा ऽ	लै ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ र
सा - - सा - सा-	ध सा - सा - सा -	ग ग सा सा रे म ग
हो ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ	लै ऽ ऽ र ऽ हौ ऽ	ज मु ऽ ना ऽ ऽ के
म - - - म गरे		
ती ऽ ऽ ऽ ऽ रऽ	में पश्तो ताल का उद्भूत उदाहरण है।	

होली के दिनों में जो लोकगीत सर्वाधिक गाया जाता है, उसका राग झिंझोटी से साम्य देखिए—²⁵

नि - ध ध	सा सा सा -	सारे रेप मग रे	ग सा -
आ ऽ ज बि	र ज में ऽ	होऽ रीऽ रेऽ र	सिया ऽ
म ग म -	मम म- ग मग	रे रेप म ग	रे ग सा -
हो री रे ऽ	रसि याऽ ब रऽ	जो रीऽ रे ऽ	र सिया ऽ

अतः यह निः संकोच कहा जा सकता है कि ब्रज के संगीत का शास्त्रीय संगीत पर प्रभाव है जिसे हटाया नहीं जा सकता।

इसी प्रकार फाग दादरे और पदों को लोकगीत-गायक अपने-अपने ढंग से गाते

हैं, जबकि कलाकार इन्हें राग-रागिनियों में अपने ढंग से गाते हैं। इसीलिए फागों की गायकी का एक निश्चित स्वरूप निर्धारित करना कठिन है। बोली-उपबोली के बदलाव के साथ-साथ फागों की रचना और गायकी में भी फर्क हो जाता है।

जहाँ तक फाग-गायकी में स्थायित्व का सवाल है, तो फाग की प्रमुख तीन शैलियों में इसके दर्शन अवश्य होते हैं— डिढ़खुरयाऊ, खड़ी फागें और चौकड़िया। वर्षों तक अनुसंधान के उपरान्त आचार्य श्यामसुन्दर 'बादल' ने भी फाग की इन तीन शैलियों की गायकी में व्यापकता, स्थिरता और शास्त्रबद्धता को स्वीकार किया। तदुपरांत तीनों शैलियों के गीतों की निम्नलिखित स्वरलिपियाँ प्रभाव-स्वरूप इस प्रकार हैं:

डिढ़खुरयाऊ फाग²⁶

फाग ताल (विलम्बित)

				स	रे
				डु	ड
ग - ग रे	ग रे ग म	ग रे स स	ग रे रे स		
वा ऽ लै यो	रा ऽ जा अ	मा ऽ न ह	मा ऽ री ऽ		
ध - स स	रे स ग -	ग रे - ग	स - स ग		
खे ऽ ल त	बिं दि या ऽ	गि र ऽ ग	ई ऽ ऽ ऽ		

चौकड़िया फाग²⁷

फाग ताल (विलम्बित लय)

रेग स- गग ग-	ग ग रे ग	रे स रे -	रे ग रेस स
मेऽ रोऽ अब गोऽ	नो ऽ निय	रा ऽ नो ऽ	मे ऽ रोऽ ऽ
स स रे रे	रे रे स रे	रे ग स -	- - - -
अ ब गौ ऽ	नो ऽ निय	रा ऽ नों ऽ	ला ऽ ल ऽ

ये फाग गीत प्रायः सप्तक के पूर्वांग-स्वरों में ही गाये जाते हैं, जैसा कि इन स्वरलिपियों में स्पष्ट है कि डिढ़खुरयाऊ राग खमाज ठाठ में, चौकड़िया फाग काफी ठाठ में गाया जाता है।

खड़ी फाग²⁸

फाग-ताल (मध्यलय)

सरे गम म म	म म म म	म ग रे ग	ग रे स स
येऽ ऽऽ दि न	ल लि त ब	सं ऽ ती ऽ	आ ऽ न ल
नि स रे रे	स नि ध ध	नि रं स ऽ	नि ध रे स
ये ऽ दि न	ल लि त ब	सं ऽ ती ऽ	आ ऽ न ल

खड़ी फाग खमाज और यमन में गाया जाता है। यद्यपि फाग-गायक आमतौर पर स्थल न होकर सामूहिक होता है, किन्तु संगीत-शास्त्र में निबद्ध होने पर इसका गायन भी उतना ही प्रभावशाली साबित होता है, जितना कि सामूहिक गायन।

होली के पदों का गान प्रायः बसंत आदि रागों में करने का निर्देश हुआ है। इसके अतिरिक्त नट नारायण, गौरी, हिडोला आदि रागों का भी नाम उपलब्ध होता है, कहीं-कहीं पदों के ऊपर 'राग होरी' अथवा 'राग धमार' संज्ञाएँ भी मिलती हैं। वस्तुतः 'होरी' और 'धमार' को रागों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। ऐसा सम्भव है कि होरी की विशिष्ट धुन के लिए 'होरी' और 'धमार' राग नाम दे दिया गया है। होरी की पारम्परिक रचनाएँ प्रायः राग काफ़ी में गाई जाती हैं और इन सभी को 'होली' कह दिया जाता है।

वियोग श्रृंगार के जो गीत हैं, वे बड़े मर्मस्पर्शी होते हैं। चौमासी, छहमासी और बारहमासी ऐसे ही गीतों में आते हैं। ये अधिकांशतः धीमी लय में गाये जाते हैं। इनमें मुख्य रूप से 'रूपक ताल' तथा कभी-कभी 'कहरवा' का प्रयोग होता है।

लोक-संगीत ने शास्त्रीय संगीत को खूब प्रभावित किया है। उदाहरण के लिए 'रसिया' लोक संगीत शैली देखिये:-²⁹

सा सा	नि - नि नि	नि सा रे सा	रे रे रे प	ग - रे सा
ब्र ज	कौं ऽ तों हे	ला ऽ ज मु	कु ट वा ऽ	रे ऽ ब्र ज
रे - सा ऽ	सा सा,			
की ऽ तो हे	ऽ ऽ			

रसिया में वृन्दावनी सारंग की स्पष्ट झलक मिलती हैं। यह भी संभव है कि इस लोक गीत के आधार पर ही सारंग के इस प्रकार का नाम 'वृन्दावनी सारंग' पड़ा हो। अनेक ऋतु संबंधी रागों की छाया यहाँ के लोकगीतों में सहज ही मिल जाती है।

उदाहरण के लिए—³⁰

सारे रेग म	- गम प म	ग रेसा सारे ग	- रेग रे सासा
अरी बह ना	ऽ पिय तो ग	ये रीऽ पऽ र	ऽ देऽ स सप
निसा रे सारे ग	- रेग - रे	सा, में	
नेऽ में देऽ खी	ऽ काऽ ऽ मी	नि, शास्त्रीय संगीत में व्यवहृत	

गौड़ मल्हार के रूप में कितना साम्य रखता है, यह सुनते ही बनता है। यदि बारीकी से परखा जाए तो लोक-संगीत में भी शास्त्रीयता का पुट होता है और यही स्पर्श यदि 'पकड़' में ढल जाए, तो वह दादरा लोक संगीत और शास्त्रीय संगीत के बीच की कड़ी है।

सन्दर्भ

1. भारतीय संगीत का सौन्दर्य-विधान, डॉ० (श्रीमती) मधुर लता भटनागर, पृ० 67
2. वही०
3. भारतीय संगीत का सौन्दर्य-विधान, (श्रीमती) मधुर लता भटनागर, पृ० 70
4. वही०
5. भारतीय संगीत में निबद्ध तथा अनिबद्ध गान, विजयाचांदोरकर, पृ० 3
6. ख्याल शैली का विकास, डॉ० मधुबाला सक्सेना, पृ० 29
7. भारतीय संगीत का इतिहास, उमेश जोशी, पृ० 2
8. Shripad bandopaddhyaya—The Evolution of Songs and Lives of Great Musicians, P. 10-11
9. हिन्दुस्तानी संगीत में राग की उत्पत्ति एवं विकास, सुनन्दा पाठक, पृ० 24
10. श्री मल्लिक्य संगीतम्, मूल लेखक—“चतुरपण्डित” विष्णु भातखण्डे, अनुवादक-गुणवन्त माधव लाल व्यास - पृ० 9
11. वही०
12. हरियाणा तथा पंजाब की संगीत परम्परा, डॉ० रीता धनकर, पृ० 7
13. ठुमरी की उत्पत्ति विकास और शैलियाँ, डॉ० शत्रुघ्न शुक्ल, पृ० 187
14. वही पृ० 187
15. वही०, पृ० 188
16. अवधी लोकगीतः समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ० विद्याविन्दु सिंह, पृ० 638
17. कजरी, डॉ० शान्ति जैन, पृ० 84
18. ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ, डॉ० शत्रुघ्न शुक्ल, पृ० 189
19. अवधी लोकगीत : समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ० विद्याविन्दु सिंह, पृ० 125
20. चैती, डॉ० शान्ति जैन, पृ० 74
21. हिन्दुस्तानी संगीत में होली गान (उद्गम, विकास-परम्परा और वर्तमान स्वरूप) नीता माथुर, पृ० 18
22. वही, पृ० 97
23. भारतेन्दुयुगीन हिन्दी काव्य में लोकतत्त्व, डॉ० विमलेश कान्ति पृ० 271
24. संगीत, अंक 8, अगस्त 1974, ब्रज की संगीत शैलियों की भारतीय संगीत को देन, भगवतशरण शर्मा, पृ० 32
25. वही०
26. संगीत, मार्च 1990, बुंदेली फाग और संगीत शास्त्र, श्री शरद सिंह, पृ० 21
27. वही०
28. वही०
29. संगीत-अंक 8, अगस्त 1974, ब्रज की संगीत शैलियों की भारतीय संगीत को देन, भगवतशरण शर्मा, पृ० 31
30. वही, पृ० 32

पंचम अध्याय

उत्तर-प्रदेश में प्रचलित लोक वाद्यों का परिचय

स्वर, ताल और पद संगीत के तीन तत्त्व हैं। “स्वर संगीत जगत् का स्पंदन है जिसके अभाव में जीना व्यर्थ है। ताल संगीत जगत का मानसिक ऊहापोह है तथा पद संगीत का पाद सज्जा है। जिस प्रकार कितना ही सुन्दर शरीर क्यों न हो, किन्तु पैर के अभाव में वह चल-फिर नहीं सकता है, उसी प्रकार से स्वर और ताल के सापेक्ष रहने पर भी पद के बिना वे पंगु तथा बधिर हैं।”

संगीत कोई भी हो, चाहे शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय संगीत या फिर सरल संगीत (लोक संगीत) हो; लय का महत्त्व सर्वप्रथम है। लय का सामान्य अर्थ ‘गति’ को माना गया है। मनुष्य के प्रत्येक क्रिया-कलाप में कोई न कोई गति अवश्य होती है। इसी प्रकार संगीत के प्रत्येक रूप में भी गति होती है। समस्त चराचर जगत् गतिमान है। संगीत रत्नाकर में लय की व्याख्या इस प्रकार की गई है- क्रियानन्तरविश्रांतिर्लय² अर्थात् क्रियाओं के मध्य की विश्रांति अथवा अवकाश ‘लय’ है।

लय तत्त्व मानव को सर्वप्रथम नैसर्गिक रूप से ही प्रकृति की क्रोड़ से विभूति रूप में प्राप्त हुआ क्योंकि प्रत्येक प्राकृतिक वस्तु में लय का साक्षात् दर्शन होता है। सूर्य तथा चन्द्रमा के एक निश्चित क्रम में उदय व अस्त होना, ऋतुओं के सामयिक आगमन, सागर की लहरों के क्रमिक उत्तार-चढ़ाव, निर्झरों एवं सरिताओं के कल-कल प्रवाह, पक्षियों के गतिबद्ध कलरव, रिमझिम कर गिरती वर्षा की बूंदों, हृदय के स्पंदन आदि से मानव ने लय का ज्ञान प्राप्त किया। प्रकृति में गति की नियमितता को स्पष्ट करते हुए H.P. Krishnaraso ने लिखा है- “Regularity is the order of nature. The planets move round the sun in regularity. they also move round their own axes in regularity. The years roll by organic changes, exhibits themselves in regularity, and, infact the Plant life and animal life are bound up in their growth and development by Strict rules of regularity.”³

यदि देखा जाये तो सर्वप्रथम “आदिम जाति के लोगों ने पहले अपना ज्ञान लय पर केन्द्रित किया और मधुर स्वर-रचना की बात सोचने के बहुत पहले इसी का विकास किया। यह लय ही है जिससे सर्वप्रथम मस्तिष्क में कलात्मक अभिव्यक्ति की प्रेरणा अथवा इच्छा जागृत हुई। समूचे विश्व में संगीत के विकास का यही प्रथम चरण रहा।” इसलिये संगीत शास्त्र में लय-ताल की जननी कहलाती है। ‘लय जहाँ

स्वर को सुसज्जित करके संगीत के क्षेत्र में प्रवेश करवाती है, वहां साथ ही अपने आप को एक चक्र में बांध लेती है और मापक यंत्र का रूप धारण कर लेती है। जिसे हम ताल कहते हैं। लय से मात्रा और मात्रा से ताल बनते हैं।^९

पार्श्वदेव ने ताल की महत्ता को इस प्रकार बताया है—

तालमूलानि गेयानि ताले सर्व प्रतिष्ठतम्।

तालहीनानि गेयानि मन्त्रहीना यथाहुतिः॥^९

अर्थात् गेय तालमूलक होते हैं, ताल में सब कुछ प्रतिष्ठित है, तालहीनगेय मन्त्रहीन आहुति जैसे हैं।

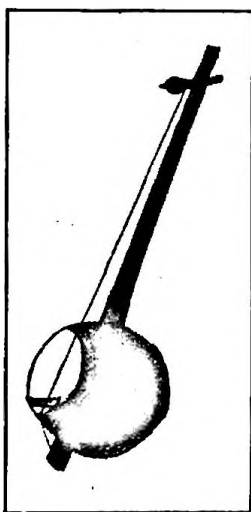
सर्वसम्मत है कि “प्राचीन काल में हाथ से ताल लगाया करते थे। ज्यों-ज्यों वाद्यों का विकास हुआ त्यों-त्यों नापने के साधन तैयार हो गये।”

संगीत के मूल तत्त्वों की दृष्टि में वाद्यकला यथार्थतः संगीत की पूर्णरूपेण प्रतिनिधि कला है। इसमें स्वर तथा लय का ही एकछत्र राज्य है। इसमें न तो गान की भाँति काव्य अपेक्षित है और न नृत्य की भाँति अंग-संचालन। स्वर तथा लय का स्वच्छन्द एवं प्रभावपूर्ण प्रयोग वाद्य संगीत में देखा जाता है।

“जो संगीत परम्परानुसार तथा शास्त्रबद्ध हो, वह शास्त्रीय संगीत कहलाता है।”^{१०} और “जिस संगीत में शास्त्रबद्धता न हो, तथा जो स्वतः स्फूर्त हो, वह सरल संगीत है। इसमें स्वर से अधिक पद और भाव को प्रधानता दी जाती है। मन की किसी विशेष अवस्था में, अन्तर के अन्तः स्थल से जो भी शब्द स्वरों के सहारे स्फुट हों, वह सरल संगीत या भाव संगीत है। ऐसे संगीत को सरल संगीत न कहकर भाव संगीत कहना अधिक उपयुक्त होगा।”^{११} सरल संगीत के अन्तर्गत लोक संगीत, चित्रपट संगीत, भक्ति संगीत सभी का समावेश होता है क्योंकि लोक संगीत, चित्रपट संगीत, भक्ति संगीत सभी का मूल गुण सरलता ही है और सरल संगीत की सभी विधाओं में मुख्य भाग लोक संगीत का है।

शास्त्रीय संगीत की तरह लोक संगीत में भी ताल वाद्यों का प्रयोग आवश्यक होता है। जिस प्रकार शास्त्रीय संगीत में व्यवस्था, नियमबद्धता एवं आकर्षण लाने हेतु वाद्यों का प्रयोग अनिवार्य रूप से किया जाता है। उसी प्रकार लोकसंगीत में भी भावों के दर्शन तथा संगीत को सजीव बनाने के लिए ताल वाद्यों की आवश्यकता होती है। लोक-संगीत में वाद्यों का महत्त्व शास्त्रीय संगीत की अपेक्षा बहुत अधिक होता है।^{१२} व्यासमणि मिश्र ने लिखा है—‘लोक संगीत में वाद्यों का महत्त्व शास्त्रीय संगीत की अपेक्षा बहुत अधिक होता है। विशेष रूप से ताल वाद्यों का, जिनके अन्तर्गत घन और शब्द दोनों के वाद्य आते हैं। चाहे लोक संगीत हो अथवा लोकनृत्य, वाद्यों की आवश्यकता दोनों के लिए समान होती है। लोकगीतों एवं लोकनृत्यों में प्राण डालने वाले वाद्य ही होते हैं जिनके बिना उक्त दोनों निष्प्राण होते हैं।’^{१३}

उत्तर प्रदेश में लोकगीतों की समृद्धि को शब्दों में माँध पाना असम्भव है। दिखावे से परे, अपने प्रान्त के परिवेश में जन्में, लोकजन में प्रचलित सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक मान्यताएँ इन लोकगीतों में दृष्टि गोचर होता है। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश में प्रचलित लोक वाद्यों का भी विशेष महत्त्व है। वाद्यों की अनुपस्थिति में लोकगीतों का सौन्दर्य धूमिल हो जाता है। अतः उत्तर प्रदेश में प्रचलित लोकवाद्यों का विवरण प्रस्तुत करना अनिवार्य हो जाता है जो निम्नवत् है।



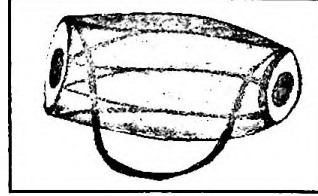
1. एकतारा— एक ध्वनित होने वाला वाद्य जो भक्ति-संगीत के साथ प्रयोग किया जाता है। भिक्षुकों द्वारा भी इसका प्रयोग होता है। लगभग छह इंच का मोटा तथा तीन फुट लम्बा बांस का दण्ड बनाया जाता है। जिसके ऊपरी सिरे से दो इंच छोड़कर सामने की ओर एक खूँटी लगायी जाती है जिसमें तार फँसा रहता है। नीचे लगभग चौबीस इंच व्यास का तुम्बा लगाया जाता है। इस तुम्बे के मध्य भाग में दोनों ओर से ऐसा छिद्र बनाते हैं जिससे उपर्युक्त बाँस का दण्ड तुम्बे के गर्भ में प्रवेश कर अन्तिम छोर से दूसरी ओर निकल आए। तुम्बा में दण्ड का प्रवेश-छिद्र इस नाप से बनाते हैं जिससे वह उसमें मजबूती से चिपक जाए। उसे और मजबूत बनाने के लिए कोई चिपकाने वाला मसाला लगाकर उसको जोड़ दिया जाता है। तुम्बे का ऊपरी भाग लगभग

इक्कीस इंच की गोलाई से काटकर निकाल देते हैं तथा इस स्थान पर पतली कमायी हुई खाल मढ़ देते हैं। इसी खाल के मध्य-क्षेत्र में छोटी-सी घोड़ी रखी जाती है, जिसके ऊपर तार रखा जाता है। घोड़ी के पाये ऊपर के तार के दबाव के कारण खाल से चिपके रहते हैं। एकतारा में फौलाद का दो या तीन नम्बर का तार चढ़ाया जाता है जो एक छोर पर खूँटी से बंधा होता है तथा दूसरे छोर पर दण्ड के उस भाग में बंधा होता है जो तुम्बा के गर्भ से होता हुआ लगभग डेढ़ इंच बाहर निकला रहता है।¹¹ इसकी ध्वनि अत्यन्त मधुर होती है।

2. डुगडुगी— यह तंतु वाद्य है। इसमें टीन के डिब्बे का प्रयोग करते हैं। टीन के डिब्बे के बीच एक डेढ़ फुट लम्बा बांस का टुकड़ा लगा दिया जाता है। बांस के ऊपरी हिस्से में एक खूँटी लगी होती है तथा उस खूँटी से डिब्बे के बीच एक लोहे का तार कसा होता है जिसे उंगलियों से बजाते हैं। इसकी ध्वनि अत्यन्त मधुर होती है। इस वाद्य को बुन्देलखण्ड में अधिक प्रयोग किया जाता है।



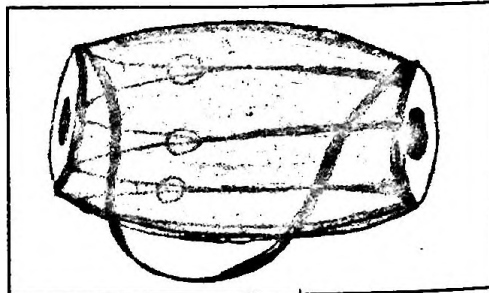
3. ढोलक- “गायन के पीछे दुलकती हुई चलने के कारण इस वाद्य ने ढोलक का सम्बोधन, पाया”¹² एवं यह एक महत्त्वपूर्ण, प्रमुख उपयोगी ताल वाद्य है इसका निर्माण सौगान, शीशम, देवदार, विजयसाल या आम की लकड़ी से होता है इसके दोनों मुख बकरे या हिरण के चर्म से मढ़े रहते हैं। इसकी चूड़ियाँ डोरियों द्वारा कसी रहती है और डोरियों में लोहे या पीतल के छल्ले पड़े रहते हैं। ढोलक का बाँया मुख मोटी खाल से मढ़ा रहता है। तथा इसमें अन्दर से गोल स्याही के आकार में एक विशेष प्रकार या मसाला गूँज की वृद्धि हेतु लगाया जाता है।



ढोलक का प्रयोग तो समस्त भारत में होता है परन्तु उत्तर-प्रदेश का यह अत्यधिक प्रिय वाद्य है। ढोलक दोनों हाथों की हथेलियों, उंगलियों तथा पोरों से बजाई जाती है। कभी-कभी ढोलक वादन के सौन्दर्य वृद्धि करने हेतु इसके काष्ठ-निर्मित शरीर पर धातु के छल्ले से प्रहार किया जाता है।

उत्तर-प्रदेश, पंजाब तथा राजस्थान में इसे इस प्रकार के कौशल से बजाते हैं कि यह शास्त्रीय संगीत के अत्यधिक विकसित वाद्यों तबला तथा मृदंग की बराबरी करती है। ढोलक की उपयोगिता एवं महत्त्व को दर्शाते हुए K.S. Kothari ने लिखा है- “Its wide acceptance as a Percussion instrument for Varied Kinds of music, from modern film music to Simple folk song and dances of Primitive oborgines, is indicative of its Versatile Character and its unique adaptability.”¹³

4. ढोल- ढोलक का बड़ा रूप ढोल कहलाता है। इसका मुँह ढोलक की अपेक्षा चौड़ा होता है। यह बकरे अथवा भैंस के चमड़े से मढ़ा होता है। यह टेढ़ी मुँहदार बेंत या लकड़ी की सहायता से बजाया जाता है। यह धार्मिक व सांस्कृतिक अवसरों पर बजाया जाता है।

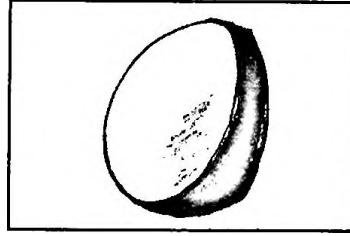


5. खंजरी- खंजरी का आकार छोटा होता है। लकड़ी या किसी धातु की एक लचीली पट्टी लेकर उसे गोल आकार देकर इसका ढाँचा तैयार किया जाता है। इसके एक ओर पतली खाल मढ़ी रहती है और दूसरी ओर यह खुली रहती है। इसके लिए बकरी की खाल का प्रयोग होता है खंजरी में झाँझ लगी होती है जो इसका वादन करते समय हिलती है और इनके

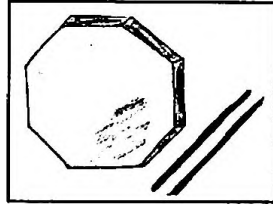
FI

हिलने से सुमधुर ध्वनि प्रस्फुटित होती है जो खंजरी से मिलकर अतिप्रिय लगती है। इसे बायें हाथ से पकड़कर दाहिने हाथ से इसके चर्म पर प्रहार कर ताल दी जाती है। इसमें कहरवा, दादरा के बोल बड़े प्रिय ढंग से बजते हैं। उत्तर-प्रदेश में भजन, कीर्तन, देश-भक्ति के गीतों आदि में इसका प्रयोग होता है।

6. **ढपली**- यह खंजरी के समान परन्तु आकार में उससे बड़ी होती है। इसे पूर्वी क्षेत्र में 'डफली' भी कहा जाता है। लकड़ी से निर्मित इस गोलाकार वाद्य का एक भाग चमड़े से मढ़ा होता है। और दूसरी ओर खुला रहता है। यह



सीधे हाथ की उंगलियों से बजायी जाती है।

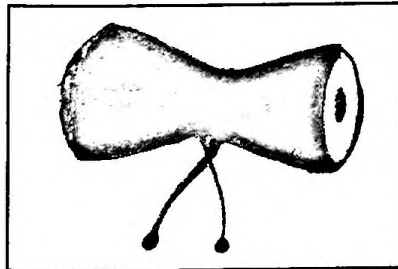


7. **'ढपला'**- ढपली का बड़ा रूप 'ढपला' या 'डफला' कहलाता है। उंगलियों अथवा बांस की पतली सलाईनुमा डण्डी से इसका वादन करते हैं।

8. **ढप (डफ)**- लकड़ी का एक गोल घेरा, जिस पर भैंस या बकरे की खाल चढ़ी रहती है। जिसे किसी चिपकाने वाले पदार्थ से चिपकाया जाता है। इसे एक हाथ से किनारे पर तथा दूसरे हाथ में डण्डी लेकर बजाया जाता है। इसे धार्मिक उत्सवों, भजन इत्यादि में प्रयोग किया जाता है। यह वाद्य विशेष रूप से ब्रज क्षेत्र में अधिक मिलता है।



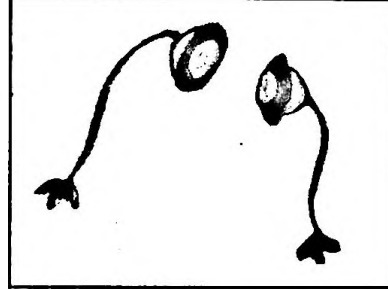
9. **डमरू**- डमरू शिव का पर्याय है अतः इसकी प्राचीनता स्वयंसिद्ध है। इसी से अन्य अवनद्ध वाद्यों की उत्पत्ति मानी जाती है। संगीतसार में डमरू का लक्षण इस प्रकार विवेचित है "एक वितस्ति लम्बा



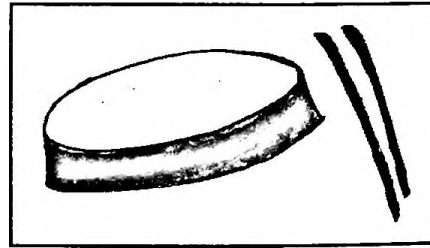
काठ ले के आठ-आठ अंगुल चौड़े दो मुख करिए और मध्य में पतला करिए। इसके दोनों मुख को चाम से मढ़िए। चाम के तानने वाले डोरो को बीच में बाँध दीजिए। फिर बीच में पकड़कर डोरन को दबाकर दाहिने हाथ के डंका

से बजाइए दोनों मुंख में, सां डमरू जानिए-इनमें 'ड' पाठाक्षर है। कई आचार्यों के मत से, क, र, ख, ट-ये चार वरन (वर्ण) कहे हैं।¹⁴ यह शिव मंदिरों में आरती के समय घंटा-घड़ियाल, शंख आदि के साथ बजाया जाता है। बंदर, भालू नचाने वाले तथा मदारी (जादूगर) इस वाद्य का उपयोग करते हैं।

10. मंजीरा-मंजीरा लोक संगीत एवं भक्तिसंगीत के साथ प्रयुक्त होता है। मुख्यतः यह चार अंगुल (माप के अनुसार) आकार का होता है। इसका किनारा एक इंच (के लगभग) गोलाकार में चपटा होता है। और बीच में कटोरीनुमा गोलाकार यह वाद्य पीतल, कांसा, फूल, तथा अष्ट धातु से निर्मित होता है। गहराई (कटोरीनुमा गोलाकार) के बीचोंबीच एक छिद्र होता है जिसमें डोरी डाली जाती है। इसकी डोरी को दोनों हाथों में (अलग-अलग) लपेट कर आपस में टकराया जाता है तो इसमें मधुर ध्वनि उत्पन्न होती है। इस वाद्य का प्रयोग भजन, आल्हा, फाग आदि गीतों के गायन में किया जाता है।

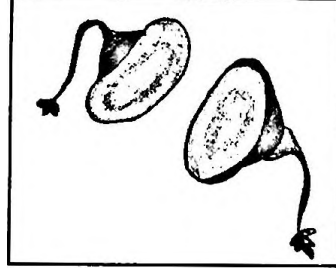


11. थाली- इस वाद्य को भोजपुरी क्षेत्र में लोकगायक प्रयोग करते हैं लोकगीतों में प्रयुक्त होने वाले वाद्यों में एक 'थाली' भी माना जा सकता है। साधारणतः देखा जाता है कि लोक गायक अत्यन्त सरल वाद्यों का प्रयोग करते हैं। 'थाली' तो घर-घर में सरलता से पाई जाती है। 'थाली' को बजाने के लिए वादक दो पतली लकड़ियों का प्रयोग करते हैं। थाली प्रायः पीतल की होती है। ये थाली वजन दार और हल्की दोनों प्रकार की होती है।

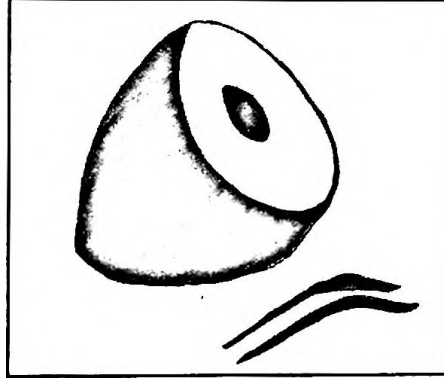


भजन, नृत्य, माता के गीत आदि गाने में इसका प्रयोग किया जाता है। चलता गीतों में भी यदा-कदा इसका प्रयोग होता है। वजनदार थाली की ध्वनि, हल्की वजन की थाली की ध्वनि से थोड़ी भारी होती है। थाली को दो प्रकार से बजाया जाता है। प्रथम प्रकार के अनुसार समतल स्थान पर रखकर दो पतली डण्डी के माध्यम से तथा दूसरे प्रकार के अनुसार बायें हाथ में लटकाकर जो थाली बजती है, उसके एक भाग में डोरी बंधी रहती है सीधे हाथ से डण्डी के द्वारा उस पर लय के साथ आघात किया जाता है इसका प्रयोग ढोल बजाते समय अथवा नृत्य के साथ होता है। त्योहारों के अवसरों पर भी इसका प्रयोग होता है।

12. झाँझ- दो बड़े चक्राकार चपटे टुकड़े जिनके मध्य भाग में छोटा-सा गड्ढा रहता है। झाँझ मध्य भाग में डोरी की बनी मूठ होती है जिसे बजाते समय मूठ में पकड़ा जाता है। ये आपस में टकराकर बजाये जाते हैं। इनमें झनझनाहट भरी ध्वनि उत्पन्न होती है। इसे मुख्यतः ताशा और बड़े ढोल के साथ बजाया जाता है। इनका प्रयोग प्रायः मन्दिरों में होता है।



बनारस, मथुरा, हरिद्वार, प्रयाग, वृन्दावन आदि धार्मिक स्थानों के मन्दिरों में इनका नित्य प्रयोग किया जाता है। यह एक धार्मिक वाद्य है गंगा पूजा, शिव पूजा जन्माष्टमी इत्यादि धार्मिक त्योहारों के अवसर पर यह वाद्य प्रयुक्त होता है।



13. नगाड़ा- इस विशाल आकार वाले वाद्य के ऊपरी खुले भाग भर चमड़ा मढ़ा होता है। इसे उत्सवों के अवसर पर लकड़ी के दो चोबों से पीट-पोटकर बजाते हैं। इसकी ध्वनि ओजपूर्ण तथा गंभीर होती है। नगाड़ा का शास्त्रीय नाम दुन्दुभि है। पहले इसका प्रयोग युद्ध वाद्य के रूप में किया जाता था परन्तु आजकल इसका प्रयोग उत्सवों में अधिक किया जाता है। 'उत्तर-प्रदेश

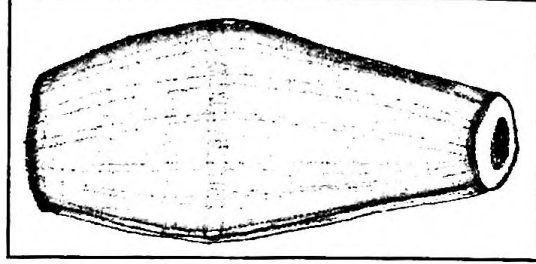
की नौटंकी में यह नक्कारा के नाम से प्रयुक्त होता है तथा इसके बड़े भाग का पिछला हिस्सा कुछ नुकीला बनाया जाता है।¹⁵

इस वाद्य का आकार दो कटोरों के समान होता है, जिनमें एक छोटा और दूसरा बड़ा होता है। बड़ा कटोरा ताँबे का तथा छोटा लोहे का बना होता है। बड़े कटोरे पर भैंस की तथा छोटे पर ऊँट की खाल मढ़ी जाती है। यह खाल चमड़े की बद्धियों की सहायता से कसी जाती है।

यह एक व्यक्ति के द्वारा दो डण्डियों से बजाया जाता है। बड़ा नगाड़ा नीचे स्वर में तथा छोटा नगाड़ा बहुत ऊँचे स्वर में मिलाया जाता है। इसके स्वर की ऊँचाई के लिए प्रायः इसे आग में सेंकते हैं।

14. मृदंग (पखावज)- "अवनद्ध वाद्यों में मृदंग का स्थान सर्वोपरि रहा है। गायन तथा नृत्य की संगीत के लिए तथा वृन्द-गायन को प्रभावशाली बनाने के लिए यह वाद्य सबसे अधिक उपयुक्त माना गया। संस्कृत साहित्य में मृदंग का सर्वप्रथम

उल्लेख रामायण तथा महाभारत में पाया जाता है। इस वाद्य के तत्कालीन उल्लेख से यह स्पष्ट है कि मृदंग वादन की कला उस समय प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुकी थी।¹⁶



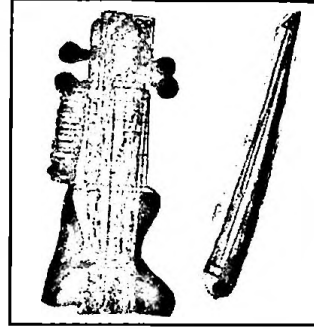
इसे भरत के मतानुसार प्राचीन काल में 'पुष्कर' वाद्य कहा करते थे। यह देवताओं का प्रिय वाद्य था। 'श्री लक्ष्मी नारायण गर्ग' के अनुसार- "यह भरत मुनि के नाट्यशास्त्र के 'पुष्कर' वाद्य 'पखावज' का अपभ्रंश है जो कालान्तर में 'पखावज' बन गया। प्राचीन ग्रन्थों में मृदंग आदि अवनद्ध वाद्यों की उत्पत्ति के संबंध में अनेक आख्यान प्राप्त होते हैं। एक मत के अनुसार शिव ने त्रिपुरासुर विजय पर जो नृत्य किया, उसमें संगीत देने के लिए ब्रह्मा ने एक अवनद्ध वाद्य का निर्माण किया, जिसका ढांचा मिट्टी का था, अतः उसे मृदंग कहा गया।' शिव-पुत्र गणेश ने सर्वप्रथम इस वाद्य को बजाया।"¹⁷

मृदंग के आधार पर अन्य ताल वाद्यों का निर्माण किया गया। पखावज के पुनः प्रतिष्ठापक स्वामी पागलदास ने पखावज के सम्बन्ध में कहा है-वेद, उपनिषद् और पुराण काल से प्रतिष्ठित यह वाद्य ताल वाद्यों में सर्वाधिक सजीव वाद्य है और ताल वाद्यों का जनक है।¹⁸

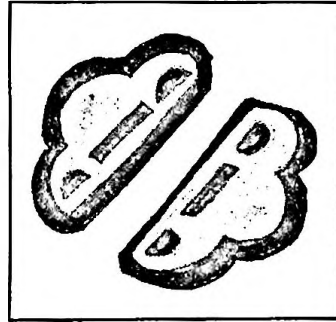
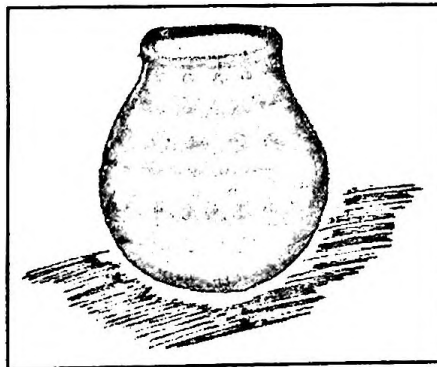
इसका निर्माण शीशम, आम, सागौन, बीजे को लकड़ी का होता है। लगभग 19-20 इंच का खोल होता है। बायें मुंह की अपेक्षा दाहिने मुंह का व्यास छोटा होता है। तथा बीच का व्यास अधिक होता है दोनों मुंह बकरे के चमड़े से आच्छादित होता है। छोटे मुख की ओर स्याही लगी होती है तथा बड़े मुख की ओर गुंथा हुआ आटा स्वर ऊंचा-नीचा करने के लिए आवश्यकतानुसार बजते समय पानी से चिपका दिया जाता है। इसके ऊपर रस्सी (बद्धों) में लकड़ी के गुटके लगाए जाते हैं। जो इसके चढ़ाने में सहायक होते हैं। आल्हा, फाग, देवी-देवताओं के गीतों के साथ इसको बजाया जाता है।

15. सारंगी- यह तंतु या तार वाद्यों में अपना विशेष महत्त्व रखता है। यह लगभग दो फुट लम्बी होती है। यह सागवान की लकड़ी से बनी होती है। इसमें तुम्बे के स्थान पर लकड़ी का बना हुआ पेट होता है, जो नीचे से चिपटा तथा ऊपर से डमरू के आकार का होता है। वह लकड़ी को खांदकर बनाया जाता है तथा चमड़े से मढ़ दिया जाता है। इसमें परदे नहीं होते, केवल अभ्यास से ही स्वर उत्पन्न किये जाते हैं। सारंगी में तरब की ग्यारह खूंटियाँ सामने मस्तक पर रहती हैं तथा दक्षिण पार्श्व में तरब की चौबीस खूंटियाँ होती हैं। इनमें से कुछ में पौतल के तथा कुछ में लोहे के तार चढ़े

रहते हैं मस्तक पर तरब के तारों की दो खूँटियाँ होती हैं। उनके लिए मेरू के पास ही छोटी-छोटी दो घुड़च रहती है जिन पर होकर उक्त ग्यारह तार नीचे आते हैं। घोड़े के बालों से बंधे गज (जो धनुष आकार का होता है) द्वारा इसे बजाया जाता है। वैसे तो यह जोगियों का विशेष वाद्ययंत्र है। यह लोक तथा शास्त्रीय संगीत में विशेष रूप से प्रयोग में लाया जाता है।



16. करताल या खड़ताल-इसे उत्तर-प्रदेश में खड़ताल कहते हैं। यह लोक ताल वाद्य लकड़ी के चार टुकड़ों से बनाया जाता है। इसके चार टुकड़ों में प्रत्येक की लम्बाई आठ इंच के करीब होती है। इन्हें दो-दो की संख्या में दोनों हाथों में पकड़कर बजाया जाता है। उंगलियों तथा अंगूठों को फँसाने के लिए इसमें स्थान बने होते हैं। अधिकांश तौर पर करताल या खड़ताल लकड़ी का बना होता है परन्तु कभी-कभी धातु का भी बनाया जाता है। अंगूठे तथा उंगलियों में पहने इन टुकड़ों को आपस में टकराते हैं। जिससे झनझनाहट (छन-छन) भरी ध्वनि होती है। कीर्तन-गीत का यह प्रधान वाद्य है।

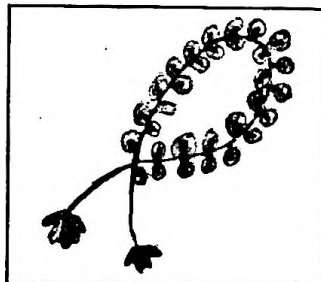


17. घट- घन वाद्य में यह बहुत प्राचीन वाद्य माना जाता है। लय व ताल को दर्शाने में इसका प्रयोग किया जाता है। यह कालो मिट्टी से निर्मित हांता है। अन्य घड़ों की अपेक्षा यह छोटा हांता है। घड़ा बजाने वाले इसका वादन करते समय इसे अपनी गोद में सीधा या सामने की ओर थोड़ा झुका कर रखते हैं। बायें हाथ से इसके वृत्ताकार खुले भाग अर्थात्

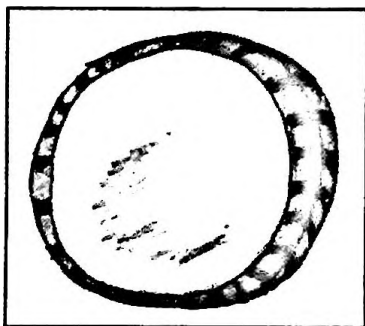
मुख को बन्द करते तथा खोलते हैं। कहने का तात्पर्य है कि बाईं हथेली को मटके के मुख पर रखकर थाप देते हैं तथा दाहिने हाथ की उंगलियों में छल्ला पहनकर घड़े पर आघात करते हैं। सिक्के या अन्य धातु का प्रयोग भी घड़ा बजाने में किया जाता

है। इसमें अत्यन्त मधुर ध्वनि निकलती है। इसका प्रयोग आज कल सभी प्रकार की संगीत शैलियों में प्रयोग किया जाता है।

18. घुँघरू-पीतल की छोटी गोल घण्टियाँ, जिनके अन्दर छोटी काली मिर्च के बराबर लोहे के टुकड़े अथवा छोटे पत्थर के टुकड़े रहते हैं। ये घुँघरू एक डोरी में पिरोये रहते हैं तथा हाथ की कलाई पर बाँध कर बजाया जाता है। इनका प्रयोग मुख्य रूप से नृत्य के लिए होता है।

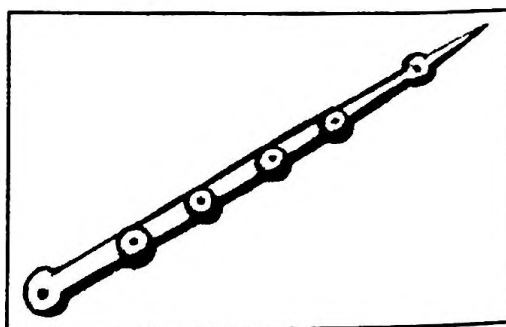


19. चंग- यह खंजरी से दुगुना, तिगुना बड़ा चक्राकार वाद्य होता है तथा एक ओर भेड़ के स्थूल चमड़े से मढ़ा रहता है। इसका आकार बड़ा होने से इस पर खाल

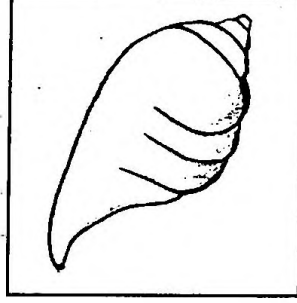
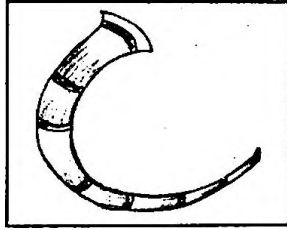


को चाहे जितना भी कसकर क्यों न मढ़ दिया जायें परन्तु कुछ समय पश्चात् ढीली पड़ने लगती है। इस असुविधा से बचने के लिए इसका घेरा पीतल का भी बनने लगा है जिसमें मढ़े हुए चमड़े को कसने के लिए चाभियाँ लगी रहती हैं। उत्तर-प्रदेश में ख्याल के ढंग से लोकगीत गाने वाले इस वाद्य का प्रयोग करते हैं। चंग खुला बजाया जाता है। मथुरा, वृंदावन आदि स्थानों पर यह वाद्य खूब दिखाई देता है।

20. चिमटा-यह एक प्रसिद्ध लय वाद्य है और इसका प्रयोग प्रायः सभी देशों में भजन, कीर्तन आदि के साथ किया जाता है। चिमटा का निर्माण लोहे के करीब दो फिट लम्बे दो समतल टुकड़ों से किया जाता है जो आगे की ओर नुकीले होते हैं और पीछे की ओर ये दोनों टुकड़े परस्पर जुड़े रहते हैं और इसकी मूठ के मोड़ पर एक कड़ा पड़ा रहता है। इसके दोनों भागों पर पीतल के कई छोटे-छोटे टुकड़े मधुर ध्वनि उत्पन्न करने हेतु लगे रहते हैं। चिमटा का वादन इसके दोनों भागों को लय के अनुसार परस्पर टकराकर किया जाता है। इसकी ध्वनि कर्ताल की ध्वनि से मिलती हुई होती है।

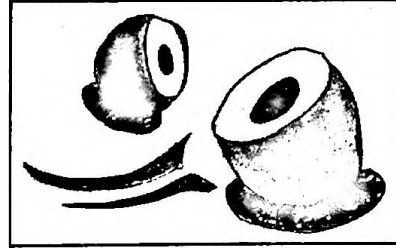


21. शंख- वस्तुतः शंख एक सामुद्रिक जीव का ढाँचा है, जो समुद्र से निकाला जाता है। इसकी दो जातियाँ हैं जो 'दक्षिणावर्त' तथा 'वामावर्त' नाम से प्रसिद्ध हैं। श्री नारायण की पूजा में शंख विशेष रूप से बजाया जाता है। यह विष्णु भगवान का प्रिय वाद्य है। प्राचीन काल में युद्ध आरम्भ होने से पहले इसे बजाया जाता था। आज अनेक शुभ कार्यों में इनका प्रयोग होता है। शंख का पेट घुमावदार, गोलाकार का होता है। इसके मुँह पर फूँक मार कर बजाते हैं। उत्तर-प्रदेश में पूजा-पाठ, भागवत, रामायण आदि धार्मिक अवसरों पर इसका प्रयोग अवश्य किया जाता है।



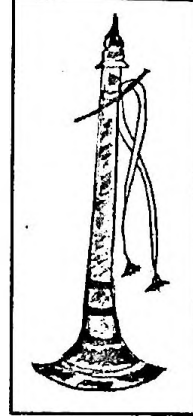
22. तुरही- संस्कृत शब्द तूर्य से तुरही बना है, ताबे अथवा पीतल से बने इस वाद्य-यंत्र की लम्बाई में काफी अन्तर देखा जाता है। इसमें एक नलिका होती है जिसका मुख भाग बाध से जुड़ा होता है। इसे फूँककर बजाया जाने वाला मंगल वाद्य के श्रेणी में रखा जाता है।

23. कुडकुड़ी-कुडकुड़ी पूर्वी क्षेत्र का लोक प्रिय वाद्य है। इसकी बनावट नगाड़े की तरह होती है परन्तु आकार में, यह छोटा होता है। इसे दो डण्डियों द्वारा बजाया जाता है। यह आम की लकड़ी व शीशम की लकड़ी का बना होता है। इसका मुख बकरी के चर्म से ढका होता है। इसका प्रयोग प्रायः विभिन्न लोक गायन शैलियों के साथ होता है। मुख्यतः इसका प्रयोग नौटंकी में किया जाता है।

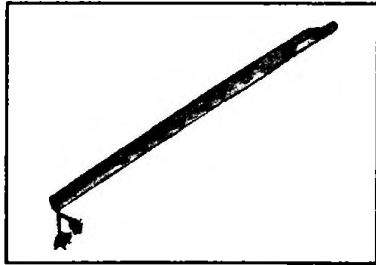


24. शहनाई- शहनाई अत्यन्त मार्मिक ध्वनि से युक्त वाद्य है। वर्मा देश में प्राप्त सागवान की लकड़ी की बनी हुई शहनाई सर्वश्रेष्ठ है। किन्तु अब उपलब्ध न होने के कारण यह वाद्य भारतीय सागवान की लकड़ी से निर्मित होता है। इसकी नलिका शंकु के आकार की होती है। इसके निचले छोर के दण्ड में धातु की बनी हुई एक घंटी स्थापित कर दी जाती है। यह लगभग 43 सेंटीमीटर लम्बी होती है। इसमें कुल सात स्वररन्ध्र होते हैं।¹⁹ उत्तर-प्रदेश में यह वाद्य बहुत प्रचलित है। इस वाद्य को शास्त्रीय एवं लोक संगीत में स्वतन्त्र वादन हेतु तथा समूह गान में संगति हेतु दोनों

में प्रयुक्त किया जाता है। मांगलिक वाद्य होने के कारण शादी-विवाहादि मंगल पर्वों पर विशेष रूप से इस वाद्य का वादन होता है। वादन प्रारम्भ करने के पूर्व इस वाद्य के ऊपर छार पर स्थित मुखनलिका में युगलपत्रिका जिसे लोक में 'पतुर' कहा जाता है, को स्थापित कर दिया जाता है। इस पत्रिका को प्रायः डुमराँव (बिहार प्रान्त) के बीहाँ नामक स्थान से मंगवाया जाता है, जो वहाँ के तालाबों में उत्पन्न होता है। उसे वहाँ के लोग 'नर' कहते हैं। बनारस में निर्मित शहनाई लोक में सर्वाधिक प्रसिद्ध है। बनारस के शहनाई वादक देश में अपनी कीर्ति फैलाए हुए हैं सुप्रसिद्ध शहनाई वादक उस्ताद विसमिल्ला खाँ एवं अनन्तलाल बनारस के ही रहने वाले थे।



25. बाँसुरी या वंशी – वंशी भी अति प्राचीन लोक वाद्य है। श्री कृष्ण जी को वंशी विशेष प्रिय थी इसलिए कुछ लोग श्री कृष्ण जी को ही वंशी का आविष्कार मानते हैं। बाँसुरी के लोक में अनेकानेक नाम प्रचलित हैं—बाँसुरी, वेणु, वंशी, वंशिक,



मुरली इत्यादि। बाँसुरी भिन्न लम्बाइयों में देखने को मिलता है किन्तु लम्बी बाँसुरी का प्रयोग प्रायः शास्त्रीय संगीत में होता है। लोक संगीत में तो लगभग 20 से 30 सेंटीमीटर तक की बाँसुरी ही मुख्यतः देखने में आती हैं बाँसुरी का प्रारम्भिक रूप आड़ो मुरली वाला था। भरत तो देशी संगीत का आधार ही वंशी मानते हैं।²⁰ आज वंशी की गणना

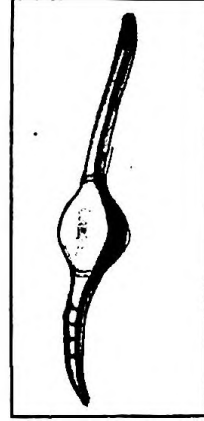
शास्त्रीय वाद्यों में होने लगी है। यह पहले गोलाकार सरल एवं गाँठहीन बाँस की ही बनाई जाती थी और यह आठ अंगुल से लेकर एक हाथ तक लम्बी होती थी। इसका शिरोभाग खुला रहता था। वंशी के ऊपरी भाग से तीन अंगुल नीचे एक गोल छेद रहता है जिसे फूँककर स्वर निकाले जाते हैं। वंशी को दोनों हाथों से अंगूठों से पकड़कर उंगलियों को नीचे के छेदों पर रखकर विभिन्न स्वर निकाले जाते हैं। प्राचीन समय में वंशी के साथ इसे मुरली भी कहा जाता था।

बाँसुरी बिना गाँठ वाले (ग्रन्थि रहित) बाँस की नलिका को लेकर उसमें यथा स्थान छिद्र करके तैयार की जाती है। इन छिद्रों का आकार लगभग कनिष्ठा के व्यास के बराबर का होता है। और ये सभी छिद्र एक खड़ी पंक्ति में किये जाते हैं। इन छिद्रों को स्वररन्ध्र कहते हैं, जिनकी संख्या प्रायः छः रहती है। किसी-किसी बाँसुरी में इनकी संख्या 7 और 8 भी होती है। इन रूध्रों या छिद्रों पर दोनों हाथों की उंगली

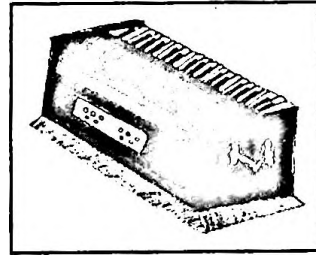
का प्रयोग करते हुए मुँह से फूँक के दबाव को कम या अधिक करते हुए इस वाद्य को लगभग तीनों सप्तकों में बजाया जाता है।

26. बीन- सम्पूर्ण भारत के अनेक प्रान्तों में बीन वाद्य को विभिन्न नामों से जाना जाता है। उत्तर प्रदेश में इस वाद्य को 'बीन' तथा 'महुवर' के नाम से जाना जाता है। भारत वर्ष के प्रायः सभी अन्चलों में सपेरा तथा बंजारा वर्ग के लोगों द्वारा इस वाद्य का उपयोग होता है।

इस वाद्य का मध्य भाग लौकी से निर्मित होता है। लौकी के ऊपर वाले भाग में एक नलिका लगी होती है। जिसे मुख में रखकर वायु पूर्ति करने से ध्वनि निकलती है। लौकी के नीचे बराबर आकार की दो पतली बाँस की नलिका जुड़ी हुई लगी रहती है। जिसमें छिद्र कर दिये जाते हैं। इनमें से एक नलिका में पाँच से लेकर आठ छिद्र होते हैं। वास्तव में यही नलिका वादन की दृष्टि से महत्वपूर्ण होती है। दूसरी नलिका से केवल एक अप्रतिहत-स्वर उत्पन्न होता है। अधिकतर सपेरे इसे बजाकर साँप को मोहित करते हैं। इस वाद्य में साँप को आकर्षित करने की अद्भुत शक्ति हांती है। ऐसा माना जाता है।



27. हारमोनियम- मूलतः यह विदेशी वाद्य है। इस वाद्य का उपयोग भारतीय संगीत में खूब होने लगा है। इस वाद्य के पीछे की ओर धौंकनी लगी होती है तथा आगे वाले भाग में ऊपर की तरफ पट्टियाँ (सफेद तथा काले रंग की) लगी होती हैं, जिसके दबाने से ध्वनि उत्पन्न होती है। सामने की तरफ पाँच नाब लगे रहते हैं। सामान्यतः हारमोनियम में पन्द्रह काली तथा बाइस सफेद पट्टियाँ लगी रहती हैं। इस वाद्य का उपयोग शास्त्रीय एवं अर्धशास्त्रीय दोनों प्रकार के संगीत में होता है।



सन्दर्भ

1. भारतीय सुषिर वाद्यों का इतिहास, राधेश्याम जायसवाल, पृ० 8
2. भारतीय संगीत का सौन्दर्य-विधान, डॉ० श्रीमती मधुरलता भटनागर, पृ० 132
3. H.P. Krishnarao, The Psychology of music, P-3
4. संगीत, दिसम्बर 1981, पृ० 8
5. सूर-काव्य में संगीत लालित्य, डेजी वालिया, पृ० 108
6. 'संगीत समयसार' अष्टामाधिकरणम्, पार्श्वदेव, पृ० 223
7. मृदंग तबला वादन सुबांध भाग-2, गोविन्द देवराव (मृदंगाचार्य), पृ० 5
8. संगीत - मंजूषा, इन्द्राणी चक्रवर्ती, पृ० 5
9. वही, पृ० 8
10. भारतीय संगीतवाद्य, लालमणि मिश्र, पृ० 169-170
11. वही, पृ० 861
12. संगीत शास्त्र, के० वासुदेव शास्त्री, पृ० 282
13. Indian folk Musical Instrument, K.S. Kathari, P-44
14. भारतीय संगीत वाद्य, डॉ० लालमणि मिश्र, पृ० 153
15. वही, पृ० 176
16. संगीत बोध, शरच्चन्द्र परांजये, पृ० 83
17. संगीत, अप्रैल 1958, पृ० 36
18. संगीत, अगस्त, 1986, पृ० 30
19. भारतीय सुषिर वाद्यों का इतिहास, डॉ० राधेश्याम जायसवाल, पृ० 132-133
20. भारतेन्दुयुगीन हिन्दी काव्य में लोकतत्त्व, डॉ० विमलेश कान्ति - पृ० 305

षष्ठ अध्याय
कलाकारों एवं लेखकों के द्वारा रचित ऋतुकालीन
लोकगीतों के महत्वपूर्ण पद एवं स्वरलिपियाँ

चैती-ताल-दीपचन्दी¹

स्थायी : लग गइली हमरी नजरिया हो रामा, श्याम सुन्दर से। लग....,
 अन्तरा : ठुमुक-ठुमुक पग चलत कंधइया, बोलो मधुरी बनियाँ हो॥
 रामा, श्याम सुन्दर से॥ लग...।

स्थायी

X	2	0	3
प ध -	सा - नि -	सा रे -	ग - म -
ल ग ऽ	ग इ ली ऽ	ह म ऽ	री ऽ न ऽ
ग - -	रे - सा -	नि सा -	नि सा रे -
ज रि ऽ	या ऽ हो ऽ	रा ऽ ऽ	मा ऽ ऽ ऽ
ध - -	सा - रे -	ग - -	सा - नि सा
श्या ऽ ऽ	म ऽ सु ऽ	न्द र ऽ	से ऽ ऽ ऽ
रेग मप -	म - प -	ग रे -	ग - म -
लऽ गऽ ऽ	ग इ ली ऽ	ह म ऽ	री ऽ न ऽ

अन्तरा

ग ग -	गम प म -	प प -	प - प -
ठु मु ऽ	कऽ ऽ ठु ऽ	मु क ऽ	प ऽ ग ऽ
ग ग -	प - ध -	नि ध -	प - म ग
च ल ऽ	त ऽ कं ऽ	ध इ ऽ	या ऽ ऽ ऽ
ग - -	ग - - -	ग रे -	ग - म -
बो ऽ ऽ	लो ऽ ऽ ऽ	म धु ऽ	री ऽ ऽ ऽ
ग ग -	सा रे सा -	नि सा -	नि सा रे -

ब नि ऽ	यां ऽ	हो ऽ	रा ऽ ऽ	मा ऽ ऽ ऽ
ध - -	सा -	रे -	ग - -	सा - नि सा
श्या ऽ ऽ	म ऽ	सु ऽ	न्द र ऽ	से ऽ ऽ ऽ
रेग मप -	म -	प -	ग रे -	ग - म -
लऽ गऽ ऽ	ग इ	ली ऽ	ह म ऽ	री ऽ न ऽ
ग - -				
ज रि या				

विशेष : होली, कजली, ठुमरी तथा दादरा के ढंग पर ही चैती तथा चैता में गायक तरह-तरह से बोल बना-बनाकर गाते हैं, और अन्त में इसे भी ठुमरी दादरे आदि की तरह चलते कहरवे में गाकर समाप्त करते हैं।

होली-ताल दीपचंदी²

कान्हा कैसी होली मचाई।

बृज की सखियाँ सब मिली गावत देखो होली आई।

धूम मची है नगर नगर में शुभ घड़ी आई आई।

होली में धूम मचाई। सुनो मोरे भाई-कान्हा०

सब सखियन मिली कुमकुमे मारत श्याम की गत है बनाई।

इत ठत डोलत श्याम बिहारी सखियन से कज खाई॥

होली की देत बधाई। सुनो मोरे भाई-कान्हा०

अबीर गुलाल के बादल छाये, रंग को मेह बरसाई।

कृष्ण राधिका खेलत होली प्रेम को नीर बहाई॥

होली में रीति चलाई। सुनो मोरे भाई-कान्हा०

सब सखियन मिली कृष्ण राधिका सुन्दर रास रचाई।

कृष्ण बने अलबेले मुरली मधुर बजाई॥

ज्योति कहै समझाई। सुनो मोरे भाई-कान्हा०

स्थाई

2		0		3		X
म	ग	म -	ग रे	सा सा	रे ग	मप म
का	ऽ	न्हा ऽ	ऽ ऽ	कै सी	हो ऽ	लीऽ म
						प - प
						चा ऽ ई

अन्तरा

-	-	रें	रें	रें	रें	रें	गुं	रें	सारें	सां	नि	सां	रें	गुं
S	S	बृ	ज	की	सखि	याँ	S	S	सब	मि	लि	गा	व	त
-	-	रें	सां	नि	ध	म	प	नि	-	-	-	सा	-	-
S	S	दे	खो	S	हो	S	ली	आ	S	S	ई	S	S	
नि	नि	नि	नि	प	ध	नि	सां-	ध	निध	प	-नि	-	नि	
धू	म	म	ची	है	S	न	गर	न	गर	में	ऽशु	भ	घ	
नि	सां	नि	ध	-नि	ध	म	प	ध	नि	-	सां	नि	ध	
ड़ी	आ	ई	आ	ऽऽ	ई	सु	नो	S	मो	S	रे	भा	S	
प	-	गु	रे	सा	सा	रे	-	गु	मप	प	प	-	प	
ई	S	हो	S	ली	ने	धू	S	S	ऽऽ	म	चा	S	ई	

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाइये-अन्तरे के अर्ध भाग को ताल कहरवा में बजाते हैं और फिर अन्त में दीपचन्दी ताल से मिला देते हैं। वह प्रकार नीचे निम्न प्रकार से दिया गया है।

X	2	X	2
-	नि नि नि	नि ध प ध	नि नि नि सां
S	धू म म	ची S है S	न ग र न
-	नि नि नि	नि सां - नि	ध नि - ध
S	शु भ घ	ड़ी आ S ई	आ S S ई
सां	नि ध प	- - - -	-
रे	भा S ई		होली में धूम

होली-ताल-दीपचन्दी³

स्थाई : देखो लला चूँदर सारी भीजी,
कौने तरह से तुम खेलो री होली॥ देखो॥

अन्तरा : गारी मैं दूंगी, तोरी न सुनुंगी,
अब कौ फाग खेलत जग होली।
कौन तरह से तुम खेलो री होली देखो॥

स्थायी

X	2	0	3
		म प -	नि - नि -
		दे ऽ ऽ	खो ऽ ल ऽ
सां - -	नि ध प -	रे म -	रेम पध प -
ला ऽ ऽ	चूँ ऽ ऽ ऽ	द र ऽ	सा ऽ ऽ री ऽ
म प -	गु - रे -	म गु -	रे गु सा -
भी ऽ ऽ	जी ऽ ऽ ऽ	कौ ऽ ऽ	ने ऽ त ऽ
रे म -	प - ध -	पध निसा -	नि ध प ध
रा से ऽ	तु ऽ म ऽ	खेऽ ऽ ऽ	लो ऽ री ऽ
म प -	गु - रे -	म प -	नि - नि -
हो ऽ ऽ	ली ऽ ऽ ऽ	दे ऽ ऽ	खो ऽ ल ऽ

लला चूँदर.....।

अन्तरा

		म प -	नि - नि -
		गा ऽ ऽ	री ऽ मैं ऽ
सां - -	सां - - -	नि सां -	रें - सां -
दूँ ऽ ऽ	गी ऽ ऽ ऽ	तो री ऽ	ना ऽ सु ऽ
नि सां -	नि ध प ध	नि - -	सां - रें -
नू ऽ ऽ	गी ऽ ऽ ऽ	अ ब ऽ	की ऽ ऽ ऽ
नि सां -	नि ध प -	रे म -	रेम पध प -
फा ऽ ऽ	ग ऽ खे ऽ	ल त ऽ	जऽ ऽ ऽ ग ऽ
म प -	गु - रे -	म गु -	रे गु सा -
हो ऽ ऽ	ली ऽ ऽ ऽ	कौ ऽ ऽ	न ऽ त ऽ
रे म -	प - ध -	पध निसां -	नि ध प -
रा से ऽ	तु ऽ म ऽ	खऽ ऽ ऽ	लो ऽ री ऽ
म प -	गु - रे -	म प -	नि - नि -
हो ऽ ऽ	ली ऽ ऽ ऽ	दे ऽ ऽ	खो ऽ ल ऽ
सां - -			
ला ऽ ऽ			

ठुमरी अंग की कजली⁴

इस प्रकार की कजली बनारस तथा मिर्जापुर के शास्त्रीय संगीत के गायक विभिन्न बोल-बनाव एवं मुर्कियों का प्रयोग करके गाते हैं।

नहिं आए घनश्याम, घेरि आई बदरी।

बैठी सोचे ब्रज-बाम, सूना कर गए मेरा धाम,

नहिं आए घनश्याम, घेरि आई बदली।

एक तो छाई घटा घोर, दूजे मोर मचावे शोर,

तीजे पिया नाही, मोर घेरि आई बदरा।

तौनताल (विलम्बित)

2	0	3	X
- नि - सा	रे - गु -	- - रे गु	सा रे रे सा
ऽ न ऽ हिं	आ ऽ ए ऽ	ऽ ऽ घ न	श्या ऽ ऽ म
- रे म म	म ग रे ग	- सा नि	सा - - -
ऽ घे ऽ री	आ ऽ ई ऽ	ऽ ब ऽ द	री ऽ ऽ ऽ
- सा - ग	ग - ग म	म ग रे म	ग - - ग
ऽ बै ऽ ठी	सो ऽ चे ऽ	ऽ ऽ ब्र ज	बा ऽ ऽ म
- सा - ग	ग म ग म	- ग - म	रे - - मगि
ऽ सू ऽ ना	क र ग ए	ऽ मे ऽ रो	धा ऽ ऽ मऽ
- नि - म	रे - गु -	- - रे गु	सा रे रे सा
ऽ न ऽ हिं	आ ऽ ए ऽ	ऽ ऽ घ न	श्या ऽ ऽ म
- रे म म	म ग रे ग	- सा - नि	सा - - -
ऽ हो ऽ रि	आ ऽ ई ऽ	ऽ ब ऽ द	री ऽ ऽ ऽ
- ग - म	प - प -	- प - ध	म प म ग
ऽ ए क तो	छा ऽ ई ऽ	ऽ घ ऽ टा	घो ऽ ऽ र
- ग - म	ध - ध ध	- ध - नि	नि ध ध प
ऽ दू ऽ जे	मो ऽ र म	ऽ चा - वे	शो ऽ ऽ र

- ग - म	नि - नि -	- नि - सां	सा नि ध -
- ती ऽ जे	पि ऽ या ऽ	ऽ ना ऽ हीं	मो ऽ ऽ र
			घेरी आई बदरी।

होरी

(राग-काफी मिश्रित सिंदूर, ताल-त्रिताल)

आज श्याम मग धूम मचाई।

धूम मचाई, करत ढिठाई।

बिन रंग डारे देत नहिं निकसन, मैं तेरी सौ देख के आई।

तू कहूँ भूल के मत उत जइयो, जाने कहा वह करे लंगराई॥

'नारायण' होरी के दिनन में, अपने ही हाथ है अपनी बड़ाई॥

स्थाई

0	3	X	2
- रेग रे सा	रे म प ध	(सां) - नि धप	मप धप ग रे
ऽ आऽ ज श्या	ऽ म म ग	धू ऽ म मऽ	चाऽ ऽऽ ई ऽ
- ध ध ध	धनी रें सा -	नि धप ग म	पध निध ध प
ऽ धू म म	चाऽ ऽ ई ऽ	क रऽ त ढि	ठाऽ ऽऽ ई ऽ
- ध ध ध	धनि गं रें सां	ध नि ध प	मप धप ग रे
ऽ धू म म	चाऽ ऽ ई ऽ	क र त ढि	ठाऽ ऽऽ ई ऽ

अन्तरा-1

- धम-प ध	सां - सां सां	धसां रेंगं रें सां	निध पध सां सां
ऽ बिनऽरं ग डा	ऽ रे दे	ऽऽ तऽ न हिं	निऽ कऽ स न
- नि - नि	सां नि सां -	नि धप ग म	पध सांनि धनि पध
ऽ मैं ऽ ते	री ऽ सों ऽ	दे ऽऽ ख के	आऽ ऽऽ ईऽ ऽऽ
निसां नि - नि	सां निं सां -	पध सांनि ध प	गु - रे -
ऽऽ मैं ऽ तो	री ऽ सोंऽ	देऽ ऽऽ ख के	आ ऽ ई ऽ

अन्तरा-2

0	3	X	2
- ध म प	ग रे म ध	- धनि -सां ग	रेसां निध सां -
S तू क हैं	भू S ल के	S मत Sउ तS	जS इS यो S
- नि नि नि	सां नि सां -	नि धप ग म	पध सांनि ध प
S जा ने क	हा S व ह	क रेS लं ग-	राS SS ई S
- नि नि नि	सां नि सां -	- पध -म प-	ग - रे -
S जा ने क	हा S व ह	S करे Sलं गS	रा S ई S

(तीसरा अन्तरा पहले अन्तरे की तरह ही गाया जाएगा।)

होरी⁶

(राग-धानी, ताल-त्रिताल)

काली-काली कोयल बोली-होली, होली, होली।
 हैंसकर लाल-लाल होठों पर हरियाली हिल डोली,
 फूटा यौवन, फाड़ प्रकृति की पीली-पीली चोली।
 अलस कमलिनी के कलरव सुन उन्मद आँखियाँ खोली,
 मलदी उषा ने अम्बर में दिन के मुख पर रोली।
 रागौ फूलो ने पराग से भरली अपनी झोली,
 और ओस ने केसर उनके स्फुट सम्पुट में घोली।
 ऋतु ने रवि-शशि के पलड़ों पर तुल्य प्रकृति निज तोली,
 सिंहर उठी सहसा क्यों मेरी भुवन-भावना भोली?
 गूँज उठी खिलती कलियों पर उड़ कलियों की टोली,
 प्रिय की खास सुरभि देखिण से आती है अनमोली।

स्थायी

0	3	X	3
- गु - सा	ग नि नि सा	म - म म	प गु म -
ऽ का ऽ ली	का ऽ ली ऽ	को ऽ य ल	बो ऽ ली ऽ
प, सां - प	नि - म -	प गु म -	- - - -
ऽ हो ऽ ली	हो ऽ ली ऽ	हो ऽ ली ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ

अन्तरा

- गग गु गु	मग मसा सा म	ग सा प नि	नि सा सा सा
ऽ हँस क र	लाऽ ऽऽ ल ला	ऽ ल हो ऽ	ठों ऽ प र
- म म -	मप मगु सा गु	गु प प -	- - - -
ऽ हरि या ऽ	लीऽ ऽऽ हि ल	डो ऽ ली ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
- नि - नि	सांनि सांप प प	पम मप गु गु	म नि प -
ऽ फू ऽ टा	यौऽ ऽऽ व न	ऽऽ फाऽ ड प्र	कृ ति की ऽ
- म - म	नि ^प - प गु ^प	सां नि ^म प -	- - - -
ऽ पी ऽ ली	पी ऽ ली ऽ	चो ऽ ली ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
-, सां - नि	गं - गं सां	ग नि सां -	- - - -
ऽ हो ऽ ली	हो ऽ ली ऽ	हो ऽ ली ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ

राग-काफी, होली-दीपचंदी (मध्यलय)⁷

न मारो पिचकारी रंग की भरी रे कन्हैया, मानो, देखो दूंगी अब गारी,

करूंगी लराई मैं तोरे संग।

जानत हूँ मैं तुम हो अनारी, निपट, निकल, धौट, मोहे ना भावत, तुम्हारे ऐसे

अनोखे ढंग।

स्थायी

0	3	X	2
श्रीम मपध मप	गु श्री -म म	प - -	प - - -
नऽ माऽऽ ऽऽ	रो ऽ ऽपि च	का ऽ ऽ	री ऽ ऽ ऽ

0	3	X	2
ध ध -	धनि सांसां निधनि	ध प - -	रीम - पध -प
रं ग ऽ	कीऽ ऽऽ ऽऽऽ	म री ऽ ऽ	रेऽ ऽ ऽऽ ऽक
म म -	गुं री -	- रीगु मम गुरी	ग रीसरी सानि सा
नै ऽ ऽ	या ऽ ऽ	ऽ माऽ ऽऽ ऽऽ	ऽ ऽऽऽ नोऽ ऽ
नि नि -	सां - (सां)	- निध नि -	धप ध प -
दे खो ऽ	दूं ऽ ऽ	ऽ गौऽ ऽ	अऽ ऽ ब ऽ
म ग म	पध निसां -	प म ग म	गम पध पप प
गा ऽ ऽ	रीऽ ऽऽ ऽ	क रूं ऽ ऽ	गौऽ ऽऽ ऽऽ ल
गु री गु	रीसा री सा	- री गु रीगु	मप धनि ध प
रा ऽ ऽ	ईऽ ऽ मै	ऽ तो रे ऽऽ	संऽ ऽऽ ऽ ग

अन्तरा

धनि पध -	धनि सां -	नि सा - -	सा - - -
जाऽ ऽऽ ऽ	नऽ ऽ ऽ	त हूँ ऽ ऽ	मैं ऽ ऽ ऽ
रीं रीं -	रीगुं मम गुरी	गुं रीं सां - -	निध पध नि सा
तु म ऽ	होऽ ऽऽ ऽऽ	ऽ अ ना ऽ ऽ	रीऽ ऽऽ ऽ ऽ
नि नि -	नि - -	नि सां सां -	नि ध प ध
नि प ऽ	ट ऽ ऽ	नि क ल ऽ	धी ऽ ऽ ट
सां (सां) -	नि ध प -	मप धनि धप	गु - री -
मो हे ऽ	ना ऽ ऽ	ऽ भाऽ ऽऽ ऽऽ	व ऽ त ऽ
री री -	रीगु मम गुरी	ग रीसरी -	नि सा - सा
तु म्हा ऽ	रेऽ ऽऽ ऽऽ	ऽ ऐऽ ऽ ऽ	से ऽ ऽ अ
रीम पध नि	ध प - -	गम पध निसां	प - गु री
नोऽ ऽऽ ऽ	खे ऽ ऽ	ऽ ढंऽ ऽऽ ऽऽ	ऽ ऽ ग ऽ

राग-खमाज, होली-दीपचंदी (मध्यलय)⁸

न खेलूंगी मैं तोसे होरी कन्हैया, न मानूंगी अब एक हूँ तोरी पीत की बतियाँ।
जानों न लच्छन बचन पीत के, नारी नमो हो अनारी, अनोखे होरी के खिलैया॥

स्थायी

X	2	0	3
ग म गम	ग री ग -	नि री नि	ग -री गम पम
न खे SS	लूं S S S	गो S S	मैं SS तोS से
प - -	प - -	ध ग प -	म ग गरी री
हो S S	री S S	क न्है S S	या S S S
नि नि -	सां - (सां) -	नि ध नि	ध - प प
न मा S	नूं S S S	गो S S	S S अ ब
ग प -	गप धसां सां -	पध ध प	म ग - म
ए क S	हूं SS S S	तो S री	पी S S S
पध निसां -	निध पध -	प ग प -	म ग गरी -री
तऽ SS S	कीS SS S	ब ती S S	या S S SS

अन्तरा

म ग म	निनि	धध निसां नि	सां - -	सां - - सा
जा S S	नोS SS SS	न	ल S S	छ S S न
नि नि -	सां - (सां) -	नि ध नि	पध - प -	
ब च S	न S S S	पी S S	तऽ S के S	
नि - -	सां - -	रीं ध सां (सां)	नि ध नि ध	
ना S S	री S S	न मो S S	हो S S अ	
प - -	धसां रीगं -	सा नि ध नि	ध प - ध	
ना S S	रीS SS S	अ नो S S	खे S S S	
म ग म	पध निसां -	प प ध -	म ग ग -री	
हो री S	केS SS S	खि लै S S	या S S SS	

लोक गीत (ब्रज), ढोला प्रकार

ओ चन्दा, तेरी निरमल कहिए चौदनी, राजा की रानी पानी नौकरी।

ओ कुअटा, तेरे ऊँचे-नीचे घट रे, जाऊ पर धोवै छोरा धोवती।

ओ छोरा, तू मारू बैगन तोर ला, जौ लौ मैं धोऊँ तेरी धोवती॥

ओ छोरी, तेरे गोबर ल्हिस रहे हाथ री, दाग लगैगौ मेरी धोवती॥

ओ छोरा, मेरे मेहँदी रच रहे हाथ रे, रंग-रंग चुएगी तेरी धोवती॥
 ओ छोरा तू मन को बहुत मलूक रे, इत्ते बड़े पै क्वारै च्यौं रह्यौ॥
 ओ छोरी, मेरे मर गए भैया-बापरी, भैया भरोसे क्वारे हम रहे॥
 ओ छोरी, तू मन को बहुत मलूक री, इतनी बड़ी तो क्वारी च्यौं री।
 ओ छोरा, बर दूँरी देस-बिदेस में, भेरी जोड़ी कौ बर न मिलौ।
 ओ छोरी, चलदें सोरौ घाट री, वहाँ चलके डारे दोनों भाँवरी।
 ओ छोरा, वहाँ बहुत जुरेंगे लोग रे, मोए तो असवैय देखौ लाजरी।

मिश्रित षोलू (लोकधुन) ताल-कहरवा

स्थायी

2

0

2

सा रे

ओ ऽ

नि	सा	सा	सा	सा	सा	सा	नि	सा	रे	गु	गु	गु	गु	गु	गु	रे
चं	ऽ	दा	ऽ	ऽ	ऽ	ते	री	नि	र	ग	ल	क	हि	ए	ऽ	
सा	रे	गु	रे	सा	सा	नि	नि	नि	नि	प	प	नि	नि	नि	नि	
चा	ऽ	ऽ	द	नी	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	रा	ऽ	जा	ऽ	कौ	ऽ	
सा	सा	सा	सा	रे	रे	गु	गु	रे	-	-	रे	सा	सा	सा	सा	
रा	ऽ	नी	ऽ	पा	ऽ	नी	ऽ	नी	ऽ	ऽ	क	री	ऽ	ऽ	ऽ	
सा	सा	सा	सा	सा	सा											
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ											

(शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेंगे।)

ब्रज का लोकगीत: रसिया¹⁰

इकली घेरी बन में आये, श्याम। तैंने कैसी ठानी ॥

कैसी ठानी रे, श्याम। तैंने कैसी ठानी रे॥

श्याम! मोहे वृन्दावन जानो, लौट घर बरसाने आनो,

श्याम! अब कहनो तुम मातों।

जो मोहे होय अबेर, घरै घर सास-जिठानी इकली.....॥

दान तू दधि कौ देजा मोय, तबहि जाइबे दऊँ ग्वालिन

चाहे तक़ार भले ही होय।

दान लिए बिन घर न जान दऊँ, मन की जानी रे। इकली.....॥

दान हम कबहु नायँ दीयौ, रोक मेरौ मारग क्यों लीयौ,

बहुत-सौ ऊधम क्यों कीयौ।

निपट निदुर तोहे लाज न आवत, उमर सिरानी रे। इकली.....॥

दोहा: हाथ जोड़ु विनती करूँ, करूँ निहोर-निहोर।

मारग मेरौ छौंड दै, नटवर नन्दकिशोर।

नटवर नन्द किशोर, न होयगी ऐंचातानी रे॥ इकली.....॥

ताल-कहरवा

स्थायी

2	X	2	X
रे प म ग	रे ग ग रे	सा रे सा नि	सा - सा सा
इ क ली ऽ	घे ऽ री ऽ	ब न में ऽ	आ ऽ ये श्या
रे ग म ग	रे ग ग रे	सा रे सा नि	सा - - -
ऽ म तै ने	कै ऽ सी ऽ	ठा ऽ नी ऽ	रे ऽ ऽ ऽ
सा म म -	म - ग म	प - - प	प ध नि ध
कै ऽ सी ऽ	ठा ऽ नी ऽ	रे ऽ ऽ श्या	ऽ म तै ने
प ध ध -	प - म -	ग - - सा	
कै ऽ सी ऽ	ठा ऽ नी ऽ	रे ऽ ऽ ऽ	इकली..

अन्तरा

रे रे रे ग	सा - रे ग	म ग रे ग	- - - रे
ऽ म मो हे	वृ ऽ न्दा ऽ	ब न जा ऽ	ऽ ऽ ऽ श्या
ऽ ट घ र	ब र सा ऽ	ने ऽ आ ऽ	सा - - रे
ऽ म अ ब	क ह नों ऽ	तु म मा ऽ	नों ऽ ऽ लौ
रे म म म	म म ग म	प प प प	नों ऽ ऽ श्या
			प सां नि ध

जो ऽ मो हे	हो ऽ य अ	बे ऽ र ल	रै ऽ घ र
प ध ध ध	प प म म	ग ग ग सा	
सा ऽ सा जि	ठा ऽ नो ऽ	रे ऽ ऽ ऽ	इकली

(शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जाएंगों।)

दोहा

सा म म म	म म ग म	प प प प	प ध नि नि
हा ऽ थ जो	ऽ ड बि न	ती ऽ ऽ क	रूँ ऽ ऽ ऽ
नि नि - नि	ध प ध म	प - - -	- - - -
क रूँ ऽ नि	हो ऽ र नि	हो ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ र
प नि नि नि	नि नि नि ध	नि सां सां नि	सां - - -
मा ऽ र ग	मे ऽ रौ ऽ	छा ऽ ऽ ड	दै ऽ ऽ ऽ
नि नि नि नि	ध म प नि	ध - प -	- - - -
न ट व र	नं ऽ द कि	सो ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ र
सा म म म	म म ग म	प - प प	प सां नि ध
न ट व र	नं ऽ द कि	सो ऽ र न	हो य गी ऽ
प ध ध -	प - म -	ग - - सा	
ऐं ऽ चा ऽ	ता ऽ नो ऽ	रे ऽ ऽ ऽ	इकली..

रसिया¹¹

आली, कित गयौ नंदकुमार, श्याम मुरली वारौ।

मोपे गयौ है मोहनौ डार, स्याम मुरलीवारौ॥

मंद हास, सुचि पीत बसन की छबि लागै अति प्यारी।

सीस मुकुट, सिर कुण्डल सोहै, मौहैं मन लटकारी॥

जाकै गल फूलन के हार, श्याम मुरली वारौ।

चंचल-चपल-चतुर नटनागर, नटवर कुंजबिहारी।

छैल-छबीले वा रसिया नैं मारी नैन कटारी॥

मेरे है गई हिय में पार, श्याम मुरलीवारौ।

स्थायी

X	X	X	X
रे प म -	ग - ग सा	रे प म -	ग म ग रे
आ ऽ ली ऽ	कि ऽ त ऽ	ग ऽ यौ ऽ	नं ऽ ऽ ऽ
रे ग रे -	सा - - -	नि - ध -	ध सा सा सा
द ऽ कु ऽ	मा ऽ ऽ ऽ	रे ऽ स्या ऽ	ऽ ऽ म ऽ
रे ग ग रे	सा रे रे ग	रे - रे -	सा - सा -
मु ऽ र ऽ	ली ऽ ऽ ऽ	वा ऽ ऽ ऽ	रौ ऽ ऽ ऽ

मो पे गयो है...

प - प -	म - ग -	रे - ग -	म - प -
ए ऽ री ऽ	मो ऽ पै ऽ	ग ऽ यौ ऽ	है ऽ ऽ ऽ
नि - नि -	नि - नि -	ध - ध -	प - प -
हाँ ऽ हाँ ऽ	मो ऽ पै ऽ	ग ऽ यौ ऽ	है ऽ ऽ ऽ

मोपै गयो है मोहनी डार, श्याम मुरलीवारौ।

अन्तरा

नि नि नि नि	ध नि प ध	ध सा सा सा	सा सा सा रे
मं ऽ द हा	ऽ स सु चि	पी ऽ त ब	स न की ऽ
रे म म म	ग ग रे ग	रे रे सा सा	रे ग म -
छ बि ला ऽ	गै ऽ अ ति	प्या ऽ री ऽ	रे ऽ ऽ ऽ
ग ग म ग	रे सा ग रे	सा - सा -	- - - -
छ बि ला ऽ	गै ऽ अ ति	प्या ऽ री ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
रे म म म	म म म म	प ध नि नि	ध ध प प
सी ऽ स मु	कु ट सि र	कुं ऽ ड ल	सो ऽ है ऽ
प ध ध ध	प प म म	ग ग ग सा	
मौ ऽ है ऽ	म न ल ट	का ऽ री ऽ	

जाके गल फूलन के हार, श्याम मुरली वारौ।

(शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जायेंगे।)

ब्रज लोकगीत-रसिया¹²

मैया। करदै मेरौ ब्याह, मँगायदै दुलहिन गोरी सी।
 नितप्रति कहै सगाई करूँ, बात कछु राखै चोरी सी॥
 गोरी गुणवारी होय, भोली सो बिचारी।
 भलैकारी नथवारी, बडे गोप की लली, गोप की लली।
 लली ढूँढ दै री माय! यामै तेरो कह। जाय।
 झट दुलह। बनाय, बात मानलै भली, मानलै भली।
 मेरे छोटे हाथन बीच रचायदे मैहंदी थोरी सी। मैया.....

ताल-कहरवा

स्थायी

2	X	2	X
प सा सा रे	रे गु गु सा	रे रे सा नि	सा सा सा प
मै ऽ या ऽ	क र दै ऽ	भो ऽ री ऽ	ब्या ऽ ह मै
सा सा रे रे	गु गु गु सा	रे रे सा नि	सा - - प
गा य दै ऽ	दु ल हि न	गो ऽ री ऽ	सी ऽ ऽ मै
प प प म	प ध नि ध	प प म ग	म म म गु
गा य दै ऽ	दु ल हि न	गो ऽ री ऽ	सी ऽ ऽ मै
गु रे सा रे	रे गु गु सा	रे रे नि नि	सा - - -
गा य दै ऽ	दु ल हि न	गो ऽ री ऽ	सी ऽ ऽ ऽ

नित प्रति कहै.....।

अन्तरा

X	2	X	2
रे गु गु गु	गु गु गु रे	गु म म म	म म म गु
गो री गु ण	वा री हो य	भो री सो बि	चा री भ लै
रे गु गु रे	रे सा सा ध	ध सा रे गु	रे - रे ग
का री न थ	वा री ब डे	गो प की ल	ली ऽ ऽ ऽ
म ग रे सा	सा - सा रे		
गो प की ल	ली ऽ ल ली		

ढूँढ़ दैरी माय यामैं तैरौ कहा जाय

झट दुलहा बनाय, बात मानलै भली, मानलै भली।

												प म
												मे रे
प	ध	नि	ध	प	प	म	ग	म	म	म	ग	गु रे सा रे
छो	ऽ	टे	ऽ	हा	ऽ	थ	न	बी	ऽ	च	र	चा य दै ऽ
रे	ग	ग	सा	रे	रे	सा	नि	सा	-	-	प	
मै	हं	दौ	ऽ	थो	ऽ	री	ऽ	सो	ऽ	ऽ	ऽ	

(शेष अन्तरे इसी प्रकार गाइए।)

होली (ब्रज)¹³

रंग मैं होरी कैसे खेलूँ री जा साँवरिया के संग

कोरे-कोरे कलस भराये, बामें घोरो रंग

भर पिचकारी मेरे मरूअट मारी

टीका है गयो तंग, रंग मैं.....

कोरे कोरे कलस भराये, बामें घोरो रंग,

भर पिचकारी मेरे कानन मारी

कुड़ला है गये तंग, रंग मैं.....

(इसी प्रकार आभूषण व वस्त्रों को सम्बोधित कर गाते हैं)

ताल-कहरव

स्थायी

रे	ग	रे	सा	रे	रे	पम	म	ग	गग	रेग	रेसा	सऽ सऽ सस स
हो	रो	कै	से	खे	लूँ	रीऽ	जा	साँ	वरि	याँ	केऽ	संऽ गरं ऽग मैं
X				0				X				0

अन्तरा

म	म	म	मग	मप	पप	प	पम	प-	ध	ध	मध	प प प म
को	रे	को	रेऽ	कल	सम	रा	येऽ	वाऽ	में	घो	रोऽ	रं ऽ ऽ ग
ध	ध	ध	ध	पध	पम	म	म	प	ध	प	मम	ग गरे रेसा सा
भर	पिच	कारी	मेरे	मरू	अट	मा	री	टी	का	है	गयो	तं गरं ऽग मैं

(शेष अन्तरे भी इसी प्रकार गाये जायेंगे।)

होरी-राग-खट, ताल-धमार¹⁴

स्थायी : कौन खेले तोसे होरी कन्हैया

सगरेनर नारियन में तुम

करत चीर फार

अन्तरा : करगहत और मुख

मीडत लिपलिपटोरी॥

स्थायी

ॐनि	सा	-	ॐग	-	-	म	प	-	-	प	-	प	-
कौ	५	५	न	५	५	खे	ले	५	५	तो	५	से	५
+					2		0			3			
ध॒ति	ध॒ति	ध॒ति	ध॒ति	ध॒ति	-	ॐसां	सा	-	-	ध॒ध	-	प	-
हो	५	५	री	५	५	क	न्है	५	५	या	५	५	५
+					2		0			3			
प	नि	ध	ध॒ध	प	ॐप	म	ॐप	ॐग		म	-	ग	-
स	ग	रे	न	र	ना	रि	य	न	५	में	५	तु	म
प	ध	नि	ध	म	ॐग	-	रें	-	-	ग	रें	सा	-
क	र	त	ची	५	र	५	फा	५	५	५	५	५	र
+					2		0			3			

अन्तरा

म	प	-	ध॒ध	ध	-	ध	सां	सां	-	नि	सां	सां	सां
क	र	५	ग	ह	५	त	औ	र	५	५	५	मु	ख
+					2		0			3			
ध॒ध	ध	-	सां	-	रें	सां	ग	रें	सां	सां	सां	ध॒ध	प
मीं	ड	५	त	५	लि	प	ट	लि	प	टो	५	री	५
+					2		0			3			

(शेष अन्तरे भी इसी प्रकार गाये जायेंगे।)

राग-अहीरी बहार 'होरी'¹⁵

रंग भरी होरी कुंज-गलिन में, खेलत नन्दकुमार री।
 ग्वाल-बाल सब मिलकर खेले, खेले ब्रज की नार री।
 भर-भर रंग परस्पर छोड़े, पिचकारिन की धार री।
 लाल गुलाल अबीर उडावें, केसर छुटत फुवार री।
 मोर-मुकुट सिर ऊपर सोहे, गल फूलन के हार री।
 पीताम्बर कटि-बीच बिराजे, पग नूपुर झणकार री।
 भूषण-बसन बदन सब भीने, चाल चलत लचकार री।
 हाथ मिलाय-मिलाकर नाचें, राधाकृष्ण मुरार री।
 ब्रह्मानन्द जुगल छवि सुन्दर, चरण-कमल बलिहार री।

ताल-तीनताल

स्थायी

X	2	0	3
- सस -म म	निध निप मप गम	- सस -म म	पध निध पम गम
S रंग Sभ री	होऽ Sऽ रीऽ Sऽ	S रंग Sभ री	होऽ Sऽ रीऽ Sऽ
- प -ग -म	गप मग रेस निऽ	- सरे -ग -ग	म - -ग म
S कुं Sज Sग	लिऽ नऽ मेऽ Sऽ	S खेऽ Sल Sत	नं S Sद कु
सं -ध नि प	मनि पम गम रेसा	- धनि -स रे	ग - ग -
मा Sऽ S र	रीऽ Sऽ Sऽ Sऽ	S रंग Sभ री	हो S री S
- पग -प ग	रे - स -	- सस -ग म	सं - नि प
S रंग Sभ री	हो S री S	S रंग Sभ री	हो S री S
- - - -	- - - -	- - - -	- - - -
S S S S	S S S S	S S S S	S S S S
X	2	0	3

अन्तरा

सं सं -ध -नि	धनि धरे सं	- प -ग -म	मनि धनि म धनि
मि ल Sक Sर	खेऽ Sऽ लें S	S ग्वा Sल Sबा	Sऽ लऽ स बऽ
सं -ध नि प	मनि पम गम रेसा	- सरे -म -ग	मं मं -रें -सं
ना Sऽ S र	रीऽ Sऽ Sऽ Sऽ	S खेऽ Sलें Sऽ	ब्र ज Sको Sऽ

(शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जायेंगे।)

चैती¹⁶

यह उत्तर प्रदेश में चैत के महीने में गाई जाती है। इसमें चैत मास का वर्णन होता है। इसके स्वर राग तिलक-बिहारी के समान होते हैं। सुप्रसिद्ध शहनाई वादक उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ चैती की धुन प्रायः बजाया करते थे। इसमें मध्यम को 'सा' निश्चित किया जाता है।

सब बन अंबुआ बउरले हो रामा चैत महिनवा।

अंबुवा बउरले, टिकोरवा भी लगिले

डार पात भइले मतवरवा हो रामा चैत महिनवा।

ताल-दीपचंदी

स्थायी

X	2	0	3
प ध - सा - नी - सा रे - ग - - म			
स ब ऽ ब ऽ न ऽ अं बु ऽ वा ऽ ऽ ब			
ग ग - रे - सा - नी ध नी रे - - -			
उ र ऽ ले ऽ हो ऽ रा ऽ ऽ मा ऽ ऽ ऽ			
X	2	0	3
सा नी - सा - - रे ग ग - सा ^१ - - -			
चै ऽ ऽ त ऽ ऽ म हि न ऽ वा ऽ ऽ ऽ			

अन्तरा

X	2	0	3
ग ग - ग - - मं प प - प - - प			
अं बु ऽ वा ऽ ऽ ब उ र ऽ ले ऽ ऽ टि			
ग ग - प - प ध ध ध - प - म ग			
को र ऽ वा ऽ ऽ भी ल गि ऽ ले ऽ ऽ ऽ			
ग ग - ग - - ग गग रे - ग - म -			
डा र ऽ पा ऽ ऽ त भइ ले ऽ म ऽ त ऽ			
ग ग - रे - - सा नी ध नी रे - - -			
व र ऽ वा ऽ ऽ हो रा ऽ ऽ मा ऽ ऽ ऽ			
सा नी - सा - - रे ग ग - सा - - -			
चै ऽ ऽ त ऽ ऽ म हि न ऽ वा ऽ ऽ ऽ			

(शेष अन्तरे भी इसी प्रकार गाये जायेंगे।)

कजरी¹⁷

यह उत्तर प्रदेश में वर्षा ऋतु में गाई जाती है। इसमें वर्षा ऋतु का वर्णन होता है। इसमें मिश्र पीलू के स्वर हैं। उत्तर प्रदेश के विशेष रूप में बनारस के शहनाई वादक कजरी की धुन शहनाई पर बजाते हैं। इसमें 'म' को 'सा' माना जाता है।

ताल-कहरवा

स्थायी : बैठी सोचे बृज बाम, सूनो लागे मेरो धाम।

नहीं आए घनश्याम घेरी आई बदरी॥

अन्तरा : I आई सावन की बहार मुरला करत पुकार।

पड़े बूंदन फुहार, घेरी आई बदरी॥

अन्तरा : II एक तो रैन अंधेरी, बदरा घेरे बेरी बेरी।

सूनी सेज ना सुहाय, घेरी आई बदरी॥

स्थायी

X	0	X	0	X	0	X	0
.	नी नी	सा ग	सा ^१ नी	सा -सा	रे रे	ग ग	रे ग
.	बै ठी	सो चे	बृ ज	बा ऽम	सू नो	ला गे	मे रो
सा -सा	सा ग	ग ग	ग म	ग सासा	ग म	ग ग	सा नी
धा ऽम	न हीं	आ ये	घ न	श्या ऽम	घे री	आ ई	ब द
सा -	बैठी..						
री ऽ							

अन्तरा-I

.	रेग सा	रे -	-ग -म	प प	पप प	ग म	प ध
.	एक तो	रै ऽ	ऽन ऽअं	धे री	बद रा	घे रे	बे री
X	0	X	0	X	0	X	0
म गरेगस	नी सा	ग -ग	ग -ग	रेग सा	ग म	ग ग	सा नी
बे रीऽऽऽ	सू नी	से ऽज	ना ऽसु	हाऽ ये	घे री	आ ई	ब द
X	0 ,	X	0	X	0	X	0
सा -	बैठी..						
री ऽ							

(शेष अन्तरे भी इसी प्रकार गाये जायेंगे।)

होरी, राग-भीमपलासी¹⁸

हाँ, मैं तो खेलूँ केशरिया से होरी।
 मोतियन बँधाऊँ, चित आनंद पाऊँ, चंदन घिसाऊँ, मृग-मद मिलाऊँ,
 धारूँ कलश केसर-रंग घोरी।
 फूल मँगाऊँ, वासे आँगी रचाऊँ, सेहरा गुथाऊँ, शीश चढाऊँ;
 वापे डारूँ अबीर को झोरी।
 तब गुण गाऊँ, डफ-झाझँ बजाऊँ, फाग मचाऊँ, रंग रँगाऊँ,
 वारी जाऊँ आदि जिन तोरी।
 और न चाहूँ कछूँ, दरशान पाऊँ, भव-भय मिटाऊँ शिव-पद पाऊँ;
 सुनो नाथ, अरज यह मोरी।

स्वरलीपि

ताल-तीनताल/मध्यलय

स्थायी

0	3	X	2
प म ग म	पध निध प मग	म ग रे सानि	सा - सा -
हाँ ऽ मैं तो	खेऽ ऽऽ लूँ केऽ	श रि या सेऽ	हो ऽ री ऽ

अन्तरा

0	3	X	2
- प प प	म प ग म	- प नि नि	सां - सां -
मो ति य न	धा ऊँ चि त	ऽ आ नं द	पा ऽ ऊँ ऽ
- नि सां-गं	रें - सां -	- नि- सां- नि	ध - प -
ऽ चं दन धि	सा ऽ ऊँ ऽ	ऽ मृग मद मि	ला ऽ ऊँ ऽ
प म ग म	पध निध प मग	म ग रे सानि	सा - सा -
हा ऽ धा रूँ	कऽ लऽ श केऽ	स र रं गऽ	घो ऽ री ऽ

(शेष अन्तरे इसी प्रकार से गाये जायेंगे)

होरी-राग बसंत¹⁹

तीनताल / मध्यलय

मचावत धूम ब्रज में आज
कन्हैया, खेलत रंग-पिचकारी।
उड़त कुमकुम-अबीर-गुलाल,
बजावत बीन-डफ-मृदंग-झाँझ
'श्यामदास' खेलत मिलके फाग॥

स्थायी

X	2	0	3
			ग म ध नि सां
			म चा ऽ व त
सां - - -	ध सांनि ध प	म - ग म	ग रे सा -
धू ऽ ऽ म	ब्र जऽ में ऽ	आ ऽ ज क	न्है ऽ या ऽ
सा म - ग	म ध रेनि ध	प - मग -	
खे ऽ ल त	रं ग पिऽ च	का ऽ रीऽ ऽ	

अन्तरा

X	2	0	3
			मं ध रे सां
			उ ड़ त ऽ
सां - - -	नि रे गं रे	ग - - म	गं रे सां -
कु म कु म	अ बी र गु	ला ऽ ल ब	जा ऽ व त
ध सां नि ध	प - मं ग	मं - ग म	ग रे - सा
बी ऽ न ड	फ मृ दं ग	झाँ ऽ झ श्या	म दा ऽ स
सा म - ग	म ध रे सां	सांनि धप मंग -	
खे ऽ ल त	मि ल के ऽ	फाऽ ऽऽ ग ऽऽ	

ज्ञातव्य- इस राग के विषय में दो मत हैं। एक मत के अनुसार यह राग 'सम्पूर्ण' माना जाता है और दूसरे मत के अनुसार इसमें दोनों मध्यम तथा शुद्ध धैवत का प्रयोग किया जाता है तथा पंचम वर्जित रहता है।

होरी²⁰

तौनताल / मध्यलय

बनवारी खेलत हैं होरी आज, देखो

ग्वाल-बाल सखियन के संग।

भरी पिचकारी मुख पे मारत हैं,

सुभग गालन पर मलत रंग।

स्थायी

X	2	0	3
	सा नि	सां रे - रे	गु गु म -
	ब न	वा री ऽ खे	ल त है ऽ
पध नि धप गु	- रे सारे सानि	सा रे - रे	गु गु म -
होऽ ऽ रीऽ आ	ऽ ज बऽ नऽ	वा री ऽ खे	ल त हैं ऽ
पध निसां निध पम	गु रे सा रे	रे नि ध नि	प ध म प
होऽ ऽऽ रीऽ आऽ	ऽ ज दे खो	ग्वऽ ल बा	ऽ ल स खि
ग म धप गु	- रे,		
य न केऽ सं	ऽ ग,		

अन्तरा

X	2	0	3
		म प नि नि	सां - सां -
		भ री पि च	का ऽ री ऽ
रें गुं रें सां	रें नि सां -	गुं रें सां नि	ध प म प
मु ख पे मा	र त हैं ऽ	सु भ ग गा	ल न प र
नि ध पम गु	- रें,		
म ल तऽ रं	ऽ ग,		

ब्रज का झूला गीत²¹

ताल-दीपचंदी

अवके चौमासे मारू जी, घर ही रहो, घर रहो मेरे महाराज!
जाओ तो मारू जी, रौंछूँगी खीचरी, रहोगे तो रस भरौ खीर।
जाओ तो मारू जी, ओढ़ूँगी चूनरी, रहोगे दक्खिनी चीर।
जाओ तो मारू जी, सोऊँगी साँकरी, रहोगे तो फुलवर सेज।

(चातुर्मास में घनघोर वर्षा के कारण सभी नदी नाले भर जाते हैं। जो जहाँ होता है, वहीं वर्षा समाप्ति तक धिरा रहता है। जब रास्ते साफ हो जाते हैं तभी आना जाना होता है। किसी नायिका का पति परदेश जाने को है। नायिका वर्षा ऋतु में बाहर जाने को रोकती हैं क्योंकि वह जानती हैं कि जहाँ भी जाएँगे, वर्षा समाप्ति तक धिर जाएँगे।)

स्थायी

X	2	0	3
सा ग -	रे - सा रे	नि सा -	ग रे म -
अ ब ऽ	के ऽ चौ ऽ	मा से ऽ	मा रू जी ऽ
ग - -	रे - सा -	सा - -	सा - - -
घ र ऽ	ही ऽ र ऽ	हो ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
सा सा -	सा - सा -	रे ग सा	रे ग म -
घ र ऽ	र ऽ हो ऽ	मे रे ऽ	म ऽ हा ऽ
म - -	म - ग -	म - -	म - ग -
रा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ज

अन्तरा

X	2	0	3
सा ग -	रे - सा रे	नि सा -	सा - सा सा
जा ऽ ऽ	ओ ऽ तो ऽ	मा रू ऽ	जी ऽ ऽ ऽ
ग रे -	म म म म	ग ग ग	रे ग रे रे
राँ ऽ ऽ	धूँ ऽ गी ऽ	खी ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ च
सा सा सा	सा सा सा सा	सा सा सा	सा सा सा सा
री ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
प सा -	सा - सा -	रे ग रे	सा रे ग म -
र हो ऽ	गे ऽ तो ऽ	र स ऽ	म ऽ री ऽ
म म -	म - म -	म म -	म - म -
खी ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ

(शेष अन्तरे इसी प्रकार से गाये जायेंगे)

ताल-दादरा (द्रुतलय) ढोला²²

- बाज रहो रे मंडराए रे ढोला तोरे पिया के लाने
1. खेतन आय जइयो रे ढोला संग सती हो जैहें
खेतन कैसे आऊं रे ढोला तोरो पिया मोरो बैरी
 2. बागन आय जइयो रे ढोला संग सती हो जैहें
बागन कैसे आऊं रे ढोला तोरो पिया मोरो बैरी
 3. तालन आय जइयो रे ढोला संग सती हो जैहें
तालन कैसे आऊं रे ढोला तोरो पिया मोरो बैरी
 4. कुंअलन आय जइयो रे ढोला संग सती हो जैहें
कुंअलन कैसे आऊं रे ढोला तोरो पिया मोरो बैरी
 5. महलन आय जइयो रे ढोला संग सती हो जैहें
महलन कैसे जाऊं रे ढोला तोरो पिया मोरो बैरी
- स्वर समूह : ध स रे ग (4 स्वर) 'शिवरंजनी की झलक'

स्थायी

ध	-	स	स	रे	-	रे	-	ग	ग	रे	-
बा	ऽ	ऽ	ज	र	ऽ	हो	ऽ	रे	मं	ड	ऽ
स	-	-	स	रे	-	रं	ग	-	ग	-	रे
रा	ऽ	ऽ	य	के	ऽ	ढो	ऽ	ऽ	ला	ऽ	ऽ
रे	-	रे	-	रे	-	भग	-	-	रे	-	-
तो	ऽ	रे	ऽ	पि	ऽ	या	ऽ	ऽ	के	ऽ	ऽ
स	-	-	स	-	-	-	-	-	-	-	-
ला	ऽ	ऽ	ने	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

शेष सभी पंक्तियाँ इसी धुन में गाई जाएंगी।

फाग²³

सुख सो रहे राजा परमाल मोरी बेला
तोरे चलाए कब हुई है

1. अरी हाँ मोरी बेला सावन कजरिया ना देखी,
ना देखी चंदेलन फाग मारी बेला, तोरे.
2. अरी हाँ मोरी बेला नगर महोबे ना देखे
ना देखे किरितुआ ताल मोरी बेला, तोरे
3. सौने धिनौची ना देखी, न देखी चंदन चौपार,
4. घोड़ा बिदुलिया ना देखी, देखे ऊदल असवार
5. सास चंदेलन ना देखी न देखी ससुर परमाल

स्वर समूह : प नि स रे ग म (6 स्वर) 'गु' 'कोमल' राग पीलू की झलक
ताल : कहरवा (ठेका दुगुन में)

स्थायी

				नि स
				सु ख
ग - रे स	गै ग रे सा	सरे रेरे स नी	निस सरे रे रे	
सो ऽ र हे	रा जा प र	माऽ ऽल मो रे	बेऽ ऽऽ ला ऽ	
- -प -रे -म	ग - रेसा -	नि नि स- -	स - ,	
ऽ ऽतो ऽरे ऽच	ला ऽ एऽ ऽ	क ब हुई ऽ	है ऽ	

अन्तरा

				गु रे
				अ री
स - नि नि	सरे रेरे स -	-प -रे -रे -म	ग - रे स	
हां ऽ मो री	बेऽ ऽऽ ला ऽ	ऽन ऽग ऽर ऽम	हो ऽ बे ऽ	
नि - स -	स - नि स	ग - रे स	धु ग रे स	
ना ऽ दे ऽ	खे ऽ ना ऽ	दे ऽ खे कि	रि तु आ ऽ	
सरे रेरे स नी	निस सरे रे रे	- -प -रे -म	ग - रेस -	
ताऽ ऽल मो री	बेऽ ऽऽ ला ऽ	ऽ ऽतो ऽरे ऽच	ला ऽ एऽ ऽ	
नि नि स- -	स - नि स			
क ब हुई ऽ	है ऽ, सु ख			

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे।

होरी²⁴ राग-काफी

स्थायी : या ब्रज में हरी होरी मचाई
अन्तरा : इत ते आई कुँवरि श्री राधिका
उत ते कुँवर कन्हाई।

(ताल-दीपचन्दी)

स्थायी			
X	2	0	3
सा - -	रे - रे -	ग रे ग	म - म -
या ऽ ऽ	ब्र ऽ ज ऽ	में ऽ ऽ	ह ऽ री ऽ
प - -	प - ध प	मग म -	गु - रे -
हो ऽ ऽ	री ऽ ऽ म	चाऽ ऽ ऽ	ई ऽ ऽ ऽ
अन्तरा			
X	2	0	3
रें रें -	रें - - -	रें - -	गुं रें गुं सां
इ त ऽ	ते ऽ ऽ ऽ	आ ऽ ऽ	ई ऽ ऽ ऽ
सां रें -	नि ध प -	ध सां ध	धसां रें रें गं
कुँ व ऽ	रि श्री ऽ ऽ	रा ऽ धि	काऽ ऽ ऽ ऽ
सां रें -	नि - - -	ध म -	प - - ध
उ त ऽ	ते ऽ ऽ ऽ	कुँ व ऽ	र ऽ ऽ क
नि - -	- - - -	सां - -	- - - -
न्हा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ई ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ

खेलत फाग परस्पर हिलमिल
शोभा बरनी न जाई घरें घर
बजत बधाई।

ताल-कहरवा

X	X	X	X
नि - नि नि	ध नि प ध	सां - सां रेंसा	नि नि ध प
खे ऽ ल त	फा ऽ ग प	र ऽ स्प रऽ	हि ल मि ल
नि - नि -	नि सां नि सां	धनि रेंसा निध प	म प ग म
शो ऽ भा ऽ	ब र नी न	जाऽ ऽ ऽ ईऽ घ	रै ऽ घ र
प ध नि	रेसां निधपम गुरे	सा	
ब ज त	बऽ धाऽ ऽ ऽ ईऽ	ऽ	

झूला गीत²⁵-राग-पीलू की छाया

सागर में भुजरिया सहेली बिना सिर गई री

1. बागन में जाती चेतउती अपने देस, खां जी

ए जी कोई आजउं ना आए भइया वीर, सागर...

2. तालन खा जाती चेतउती अपने देसं खां जी

ए जी कोई आजऊं न आए भइया वीर, सागर...

(इसी प्रकार कुअवन, गलियन, महलन आदि को लगाकर गाया जाएगा।)

(मध्यलय)

स्थायी

स - रे ग	रे - स -	नि - नि -	स - रे -
साऽऽ ग र	में ऽ भु ऽ	ज ऽ रि ऽ	यां ऽ सऽ
नि - स -	रे - ग रे	गुरे स स -	रे - स -
हे ऽ ली ऽ	बि ऽ ना ऽ	ऽऽ ऽ सि ऽ	र ऽ गऽ
नि - - -	स - - -		
ई ऽ ऽ ऽ	री ऽ ऽ ऽ		

अन्तरा

X	0	X	0
स - ग -	रे - स -	नि - - -	सा - रे -
बा ऽ ऽ ऽ	ग न में ऽ	जा ऽ ऽ ऽ	ती ऽ चे ऽ
स नी स -	रे - ग -	रेस - स -	रे - स -
त उ ती ऽ	अ प ने ऽ	ऽऽ ऽ दे ऽ	ऽ ऽ सऽ
नि - - -	सा - - -	रे - रे म	म - म ग
खां ऽ ऽ ऽ	जी ऽ ऽ ऽ	ए ऽ जी ऽ	को ऽ ई ऽ
रे - ग -	रे स स -	नि - स -	रे - ग रे
आ ऽ ऽ ऽ	ज ऊं न ऽ	आ ऽ ए ऽ	भ इ या ऽ
गुरे स सा -	रे - स -		
ऽऽ ऽ वी ऽ	ऽ ऽ र ऽ		

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे।

होरी-गीत²⁶

कैसी होरी मचाई रँगीली।
 श्यामा-श्याम दोऊ रंग में भीजे,
 तन की सुध बिसराई सखी री॥ कैसी होरी...॥
 अबीर, गुलाल, कुमकुमा छँड़त।
 केसर रंग पिचकारी।
 नाचत-गावत, बेनु बजावत।
 हँस-हँस दे दे तारी सखीरी॥ कैसी होरी॥

ताल-तीनताल

स्थायी

0	3	X	2
सानि सा रे -	गु - म म	नि प प ध	म प गु रे
कैऽ ऽ सो ऽ	हो ऽ री म	चा ऽ ई रँ	गी ऽ ली ऽ
रे नि ध नि	प ध नि सां	नि ध म प	गु - रे, -
श्या ऽ मा श्या	ऽ म दो ऊ	रँ ग में ऽ	भी ऽ जे ऽ
सानि सा रे -	गु रे म प	मप धनि प ध	म प गु रे
तऽ न की ऽ	सु ध बि स	राऽ ऽऽ ई स	खी ऽ री ऽ

अन्तरा

0	3	X	2
म प प ध	नि सां सां सां	रें गुं रें सां	रें नि सां सां
अ बि र गु	ला ऽ ल कु	म कु मा ऽ	छाँ ऽ ड़ त
नि - नि नि	ध म प ध	नि - सां -	धनि पध नि सां
के ऽ स र	रं ग पि च	का ऽ री ऽ	ऽऽ ऽऽ ऽ ऽ
ग म ध ध	ध नि प ध	नि सां नि सां	धि सांनि ध प
ना ऽ च त	गा ऽ व त	बे ऽ नु ब	जा ऽऽ व त
नि नि नि नि	सानि सां नि ध	धनि सांनि ध प ध	म प गु रे
हँ स हँ स	देऽ ऽ दे ऽ	ताऽ ऽऽ रिऽ स	खी ऽ री ऽ

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जायेंगे।

सावन²⁷

डस लई मोरे महाराज झूला झूलत नागिन डस लई
 दहिनी छिंगरिया के बीच, झूला झूलत नागिन...
 जाय जो कइयो कोऊ ससुरा से, और सासों से कइयो समुझाय, झूला
 राजा से कइयो ब्यालै दूसरी, छांड़े चन्द्रवदनी की आस...
 कागा सब बन खाइयो, जामैं पिया मिलन की आस।

7 स्वर (दोनों गंधार)

रायसा की झलक

ताल-दीपचन्दी

स्थायी

X	2	0	3
ध स -	स - स -	ग रेस रे	म - ग -
ड स ऽ	ल ऽ ई ऽ	मो रे ऽ	म ऽ हा ऽ
म - -	- - - पम	ग - रेस	रे - सनि -
रा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ जऽ	झू ऽ ऽ	ला ऽ झूऽ ऽ
स रे -	ग - ग -	रे रे -	ग - रेस नी
ल त ऽ	ना ऽ गि न	ड स ऽ	ऽ ऽ ऽऽ ल
ई ऽ ऽ			

अन्तरा

X	2	0	3
रे ग रे	स - नि -	स स -	ग - ग -
जा ऽ ऽ	य ऽ जो ऽ	क इ यो	को ऽ ऊ ऽ
रे रे -	ग रे स नि	स - -	स - स -
स सु ऽ	रा ऽ ऽ ऽ	से ऽ ऽ	औ ऽ र ऽ
ध - -	स - स -	रे - रे	म - ग -
सा ऽ ऽ	सौं ऽ से ऽ	क इ यो	स ऽ मु ऽ
म - -	- - - पमग	ग - रेस	रे - सनि -
झा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ य	झू ऽ ऽऽ	ला ऽ झूऽ ऽ
स रे -	ग - ग -	रे रे -	ग - रेस नी
ल त ऽ	ना ऽ गि न	ड स ऽ	ऽ ऽ ऽ ल
स - -			
ई ऽ ऽ			

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे।

कजरी²⁸

कैसे खेले जइबे सावन में कजरिया, बदरिया घेरी आई सजनी।

बरखा बरसे चहुँ ओर, छटा छाई घन घोर।

पपीहा पीयू-पीयू बोले रे कियरिया। बदरिया.....

हमरा जिया घबरावे सखी ए, पिया-बिन चैन पड़े न सखी ए।

मनमोहन नाहीं लीन्हे रे खबरिया। बदरिया.....

ताल कहरवा (दुगुन)

स्थायी

X			X			X			X
सा	सा	सारे रेप	म	म	ग मग	रे	सा	सा रे	सानि नि
कै	से	खेऽ लेऽ	लइ	बे	सा वन	में	क	ज रि	याऽ ब
X			X			X			X
पप नि	सा	रे	-	ग	ग सानि	सा	-	-	सा सा
दरि या	घे	री	ऽ	आ	ई सज	नी	ऽ	ऽ	ऽ
							ऽ	ऽ	कै से

अन्तरा

X			X			X			X
सा-	सा	सारे	रे	रेम	म	मप प	प	प	प ध प म
बर	सा	बर	से	चऽ	हूँ	ओऽ र	घ	टा	छा ई घ न
रे	गरे	सासा	सा	सारे	रेप म	म	ग मग	रे	सा सारे -सा नि, नि
घो	ऽर	पपी	हा	पीऽ	यूऽ पी	यू	बो	लेऽ रे	कि यरि ऽया ऽ, ब

दरिया घेरी आई।

इसो प्रकार पूरा गीत है। भोजपुरी महिला लोकगीतों के अन्तर्गत गाई जाने वाली यह प्रसिद्ध कजरी है। इस धुन के आधार पर अनेकों कजरी गाई जाती हैं। इस धुन में जिन स्वरों का प्रयोग हुआ है, वे स्पष्ट रूप से 'तिलककामोद' राग के स्वर हैं।

राग-पीलू-सावन²⁹

आसौं के सावन राजा घर ही के करियो

करियो अरे पर के करौं ससुरार

1. आसौं के सावन राज चुनरी पहरवे
पहरवे अरे तुमहुं बंधइयो सिर पाग, राजा आसौं...
2. आसौं के सावन राजा मेंहदी रचइबे
रचइबे अरे तुमहुं रचइयो बीड़ा पान, राजा आसौं...
3. आसौं के सावन राजा खेलबे घुटउआ
घुटउआ अरे तुमहुं खेलो पासा चार, राजा आसौं...
4. आसौं के सावन राजा झुलइबे हिंडोलना
हिंडोलन अरे तुमहुं बढइयो लम्बी पेंग, राजा आसौं...

प नि स रे ग (5 स्वर, ग कोमल)

ताल-दीपचन्दी

स्थायी

प	-	-	नि	-	नि	-	स	स	-	ग	-	ग	रे
आ	ऽ	ऽ	सौं	ऽ	के	ऽ	सा	व	न	रा	ऽ	जा	ऽ
रे	स	-	स	ग	ग	रे	रे	स	-	स	-	नि	-
घ	र	ऽ	ही	ऽ	के	ऽ	क	रि	ऽ	यो	ऽ	ऽ	ऽ
नि	स	नि	सा	ग	ग	ग	ग	ग	रे	स	-	ग	रे
क	रि	ऽ	यो	ऽ	अ	रे	प	र	ऽ	के	ऽ	ऽ	क
स	रेग	-	रे	-	स	-	नि ^३	-	-	नि ^३	-	-	-
रो	ऽऽ	ऽ	स	ऽ	सु	ऽ	रा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
-	-	नि	नि	-	सारे	-	सनि	-	सरे	सनि	-	नि	-
ऽ	ऽ	र	रा	ऽ	जाऽ	ऽ	आऽ	ऽ	ऽऽ	सौऽ	ऽ	के	ऽ
स	स	-	रे	-	सनि	--	स	-	-	-	-	स	-
सा	व	ऽ	न	ऽ	सुऽ	ऽऽ	हा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	व	ऽ
स	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-
ने	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	-	-	-	-	-	-	-

(अन्तरे इसी धुन में गाये जायेंगे।)

झुला (बिलवारी)³⁰

गिर गई मोरे महाराज, झुला झुलत बेदी गिर गई,

गिर गई मोरे महाराज, झुला झुलत बेदी गिर गई।

1. कौन गढ़ा दई जा बिंदिया, कौन धरा दई रवार,
झुला झुलत बेदी गिर गई।
2. ससुरा गढ़ा दई जा बिंदिया जेठा धरा दई रवार,
झुला झुलत बेदी गिर गई।
3. कौन सहर की जा बिंदिया अरे कौना है सुघर सुनार,
झुला झुलत बेदी गिर गई।
4. दतियां सहर गढ़ी जा बिंदिया पन्ना के सुघर सुनार,
झुला झुलत बेदी गिर गई।

‘राग रायसा की झलक’

ताल-दीपचन्दी (‘चांचर’ लय विलम्बित)

स्थायी

X	2	0	3
स ध -	स - स -	रेग सरे -	म - ग -
गि र ऽ	ग ऽ ई ऽ	मो रे ऽ	म ऽ हा ऽ
म - -	- - - -	- - -	प - - ग
रा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ज
ग - स	रे - नी -	नी स -	रे गु गु -
झू ऽ ऽ	ला ऽ झु ऽ	ल त ऽ	बें ऽ दी ऽ
रे रे -	*गुरे - स नी	स - -	- - - -
गि र ऽ	ऽ ऽ ऽ ग	ई ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ

अन्तरा

X	2	0	3
स ग रे	स - नी -	स - -	रे - प -
कौ ऽ ऽ	न ऽ ऽ ग	ढा ऽ ऽ	द ऽ ई ऽ

ग - रे	स - नी -	स - -	- - - -
जा ऽ ऽ	बिं ऽ दि ऽ	या ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
स ध -	स - स -	रेग सरे -	म - ग -
कौ ऽ ऽ	न ऽ ध ऽ	रा ऽ ऽ	द ई र ऽ
म - -	- - - -	- - -	प - - ग
वा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ र
ग - स	रे - नी -	नी स -	स - प -
झू ऽ ऽ	ला ऽ झु ऽ	ल त ऽ	बें ऽ दी ऽ
रे रे -	गरे - स नी	स - -	- - - -
गि र ऽ	ऽऽ ऽ ऽ ग	ई ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जायेंगे।

सावन³¹

अबके सावन चुनरिया मैगाय दे ननदी।
 चुनरी धानी रंग दै के बिच माँ घुँघरू लगा दे
 जरी-गोटा किनारी लगाय दे ननदी।
 चुनरी ओढ़ि हम जइबे तो नजर लागि जइ हैं,
 मुँहवा काजर-दिठौना लगाय दे ननदी।
 चुनरी लाली-लालो ओढ़ि हम ते जइबे नैहर,
 संग माँ आपन बिरनवा पठाय दे ननदी।
 सिंदूरा माँगभरी दै के, सखियाँ गावें कजरी,
 अँगना सोनवा हिडोलना गढ़ाय दे ननदी।

ताल-दादरा

स्थायी

X	0	X	0
नि नि सा	गु - गु	रे - गु	सा - रे
अ ब के	सा ऽ व	न ऽ चु	न ऽ रि
ग - म	ग ग ग	सा - नि	सा - सा
या ऽ मैं	गा य दे	न ऽ न	दी ऽ ऽ

अन्तरा

X	0	X	0
ग ग म	प - प	प प प	म ध प
चु न री	धा ऽ नी	रं ऽ ग	दै ऽ के
म ग म	रे ग -	रेग मप म	ग - ग
बि च माँ	घुँ घ ऽ	रूऽ ऽऽ ल	गा ऽ दे
ग ग म	ध - ध	पध निसां नि	ध प प
चु न री	धा ऽ नी	रंऽ ऽऽ ग	दै ऽ के

अन्तरे की दूसरी पंक्ति स्थायी की भाँति गाई जाएगी।

इसी प्रकार पूरा गीत गाया जाता है। इस धुन में जिन स्वरों का प्रयोग हुआ है, वे खमाज राग के सदृश हैं। इस गीत में कोमल गंधार का भी प्रयोग हुआ है। पुराने समय में कभी-कभी खमाज में कोमल गंधार का भी प्रयोग होता था। आज भी ठुमरी गाते समय खमाज में सुंदरता के लिए कभी-कभी कोमल गंधार लगाते हैं।

चैती³²

अब सैया का करे अइहै हो रामा, फागुन बीत गइलै।
 सैया नाही अइलै हमार का जइहै, कर मल-मल पछतइ हैं, हो रामा।
 फगुन बीत गइलै।
 महुआ चुअन लागे नीमबा फुलन लागे, सब बन फुलवा फुलइलै, होरामा
 फगुन बीत गइलै।
 बैरिन कोयलिया कूके आधी रतिया, अंग अंग अलिसइलै, हो रामा।
 फगुन बीत गइलै।

ताल-चाँचर व कहरवा

स्थायी

ग	ग	-	ग	-	ग	रे	-	ग	-	म	-
अ	ब	ऽ	सैं	ऽ	या	ऽ	ऽ	क	ऽ	रे	ऽ
ग	-	-रे	सा	-	नि	-	ध	नि	-ध	नि	रे
अ	इ	ऽऽ	हैं	ऽ	हो	ऽ	ऽ	रा	ऽ	ऽऽ	मा
											ऽ
											ऽ
											फ

नि	सा	-	रे	ग	ग	रे	नि	रे	-	सा	-
गु	न	ऽ	बी	ऽ	ऽ	त	ग	इ	ऽ	लैं	ऽ
											ऽ
											ऽ

अन्तरा

रे	रे	रे	म	-	म	-	प	प	-	प	-
सै	या	ऽ	ना	ऽ	हीं	ऽ	अ	इ	ऽ	लै	ऽ
म	म	-	प	-	प	-	मप	धप	धप	म	ग
मा	र	ऽ	का	ऽ	ऽ	ऽ	जइ	ऽऽ	ऽऽ	है	ऽ
											ऽ
											ऽ

अन्तरे की दूसरी पंक्ति स्थायी की भाँति गाई जाएगी। बाद में कहरवा ताल दुगुन में लेकर पुनः चाँचर ताल में आना है। भोजपुरी की यह विशेष प्रसिद्ध धुन है। चाँचर या दीपचंदी में वे इसे गाते हैं और अन्तरे की दूसरी पंक्ति को कहरवा दुगुन में गाते हैं। पुनः दीपचंदी ताल में मध्य-विलम्बित लय में गाते हैं। इस धुन के आधार पर तुमरी का विकास हुआ, यह कहना न्यायसंगत होगा। बहुत से शास्त्रीय संगीत गायक 'चैती' लोकधुन को तुमरी अंग से गाते हैं। यह धुन शुद्ध स्वरो पर ही आधारित है। इसमें किसी राग का स्वरूप नजर नहीं आता, इसे केवल धुन कहना उचित होगा। कुछ अंशों में पीलू राग की छाया तथा कुछ अंशों में काफी झलकता है।

बारामासी³³

श्याम मिले रे समझइयों रे ऊधो मोरे श्याम मिले रे समझइयो-2

1. अरे असढ़ा मास अंगेरो महीना-2 आके छत्रा तनइयो रे ऊधौ मोरे।
2. अरे साहुन मास सुहानो महीना-2 सो आके झूला डरइयो रे ऊधौ मोरे।
3. अरे भादो मास में मुरली बजी थी-2 सो आके मुरली सुनइयो रे ऊधौ मोरे।
4. अरे क्वार मास में फूली केतकी-2 कातक धरम को महीना रे ऊधौ मोरे।
5. अगहन मास में ठंडक पर रई-2 सो आके नेह लगइयो रे ऊधौ मोरे।
6. पूस मास में फूली चमेली सो उतई बिलम नै जइयो रे ऊधौ मोरे।
7. माघ मनाए मानत नइयाँ, फगुना फाग खिलइयों रे ऊधौ मोरे।
8. चैत मास में जा रए, हाथ जोर कह दइयो रे ऊधौ मोरे।
9. व्याकुल भई बैसाख राधिका , सेठ जियस न पइयो रे ऊधो मोरे।
श्याम मिले रे समझइयो.....

ताल-कहरवा (ठेका दुगुन में)

नि स रे - 3 स्वर (सब शुद्ध)

मध्यलय

स्थायी

पुनि स रे-स	रे- रे- सनि नि	नि- सा-रे- -स	रे- रे- सानि नि-
श्या ऽ म ऽमि	लेऽ रेऽ सऽ मऽ	झइ ऽऽ योऽ रे	उऽ धोऽ मोऽ रेऽ
पुनि स रे-स	रे- रे- नि सरे	स- स- स- स-	
श्या ऽ म ऽमि	लेऽ रेऽ स मऽ	झ ई यो ऽ ऽ	

शेष पंक्तियाँ इसी प्रकार गाई जाएंगी।

कजरी³⁴

घेरि-घेरि आई सावन कै बदरिया ना।
 पानी बरसै बड़ी जोर, सूझै नाहीं चारों ओर, जिया काँपे मोरा,
 चमकेला विजुरिया ना।
 जब से गइले हो विदेश, भेजे एकौ ना सँदेश, काहे लीनी
 नाहीं हमरी खबरिया ना।
 बोले दादुर बन मोर, सुनकै पपिहा कह सोर,
 जिया नाहीं लागै, सूनी बा अटरिया ना।
 जो न अइहौ मोर सँवरिया, फीकी लागै मोहे
 कजरिया, नाहीं पहिरब हमतो धानी रे चुनरिया ना।

ताल-खेमटा

स्थायी

X		X		X		X	
ग	रे	ग	सा - -	रे	-	रे	ग म ग
घे	ऽ	रि	घे ऽ रि	आ	ऽ	ई	सा व न
रे	-	सा	रे - -	सा	-	रे	सा - -
कै	ऽ	ब	द रि ऽ	या	ऽ	ऽ	ना ऽ ऽ
सा	ग	ग	ग ग ग	ग	रे	ग	म - म
पा	ऽ	नी	ब र सै	ब	ड़ी	ऽ	जो ऽ र
ग	रे	ग	सा - रे	ग	रे	ग	सा - सा
सू	ऽ	झै	ना ऽ हीं	चा	ऽ	रों	ओ ऽ र
ग	रे	ग	सा - सा	रे	-	रे	ग म ग
जि	या	ऽ	काँ ऽ पै	मो	ऽ	रा	च म के

अंतरा

रे	-	सा	रे रे -	सा	-	रे	सा - -
ला	ऽ	बि	जु रि ऽ	या	ऽ	ऽ	ना ऽ ऽ

सा - सा	ग रे रे	म - म	प - प
ज ब से	ग इ ले	हो ऽ बि	दे ऽ स
म - म	प - ध	नि ध प	प - प
भे ऽ जे	ए ऽ को	ना ऽ सैं	दे ऽ स
ग रे ग	सा - सा	रे - रे	ग म ग
का ऽ हे	ली ऽ नी	ना ऽ ही	ह म ऽ
रे - सा	रे रे -	सा - रे	सा - -
री ऽ ख	ब रि ऽ	या ऽ ऽ	ना ऽ ऽ

शेष पंक्तियाँ इसी प्रकार गाई जायेंगी।

दादरा (मध्यलय), होरी (मध्यम से)³⁵

स्थायी : क्यूं गुलाल रंग डारो।

सादी सारी मोरी ना बिगारो॥

अन्तरा : श्यामदास प्रभु फाग खेलो जिन

नई है बैश हमार॥

स्थायी

		-	-नी पप	धु सा -	सा -ग रेसा
		-	क्यूं ऽगु	ला ऽ ऽ	ल ऽरं ऽग
		0		X	0
ग रेसा	सा	सा	- -	सा ग ग	गग (म) मरे
डा ऽऽ	ऽ	रो	ऽ ऽ	सा दी सा	रीमो री ऽऽ
X		0		X	0
रेम रेगमऽ	गरे	(सा)	नीनी पप		
मोरी नाऽऽऽ	ऽबि	गा	रोक्यूं ऽगु	लाल रंग डारो.	
X		0			

अन्तरा

		ग	ग	ग	ग	ग	म	रेग रे रेगमऽ
		श्या	म	दा	स	प्र	भु	फाऽ ग खेऽऽऽ
		X			0			X
ग नी सा	ग	म	प	मप - -	मप मग गमपऽ			
लो जि न	श्या	म	दा	सके ऽ ऽ	ऽऽ ऽऽ ऽऽऽऽ			
0	X			0	X			
म प -	ग	म	ग	ग नी सा	सा ग ग	ममगरेग म "धप		
प्र भु ऽ	फा	ग	खे	लो जि न	न ई है	बैऽऽऽऽ शहऽ		
0	X			0	X	0		
म - गरे	गरे	ऽग	पप					
मा ऽ ऽऽ	ऽर	ऽक्यूं	ऽगु	लाल रंग डारो				
X								

चैती (मध्यम से) ताल-दीपचंदी³⁶

ए सुगना सुगना-तोता बोले हमरी अटरिया हो राम
सुन सुन लागे रे बिरही कटरिया हो रामा॥
मैना भी बोले तूती भी बोले,
और बोले सुगनवा हो रामा॥
छाये छबीले हमरे बिदेसवा,
लग गई कटरिया हो रामा॥

स्थायी

<u>नीसारेग</u>	<u>रेग</u>	<u>रेगम</u>	<u>रेमगरेसारे</u>	<u>रेगम-</u>	<u>रेग सा,</u>	<u>रेप</u>	<u>ग,</u>	<u>रेग</u>
<u>एSSS</u>	<u>सुग</u>	<u>नाSS</u>	<u>SSSSSS</u>	<u>बोSSS</u>	<u>लेS</u>	<u>S</u>	<u>हम</u>	<u>री, SS</u>
	2				0		3	

सासा नीसा गम

S,अ टरि याहो

ग रेसासाग	-	पध म	गरे रेगम-	<u>ग,ग सा रेप</u>	<u>ग,रेग सा,सा नीसा गम</u>
राम SSSSS	S	सुन सु	नऱ लाSSS	<u>गेSरे, S बिर,</u>	<u>हो,SS S क टरि याहो</u>
X		2		0	3

ग रेसासाग -

राम SSSS S

X

अंतरा

प पप प	प	<u>मपनीधप</u>	प म	गरे -	<u>रेप</u>	<u>-,ग रेम -म</u>
बो SS ले	तू	<u>तीSSSS</u>	भी बो	लेS S	<u>और</u>	<u>-,मै Sना Sभी</u>
X	2			0		3

ग रेसासाग -

राम SSSS S S

X

अन्तरा (2) की धुन भी पहले के जैसी है।

होरी (रसिया)³⁷

नाजो नैन। री नुकीले नए रंग खेल रंग होरी।
 नैनहिं खेलैं, नैन खिलावै, नैनहिं डारै रंग,
 नैनहिं डारैं प्रेम-प्रीत की पिचकारी पचरंग,
 भिंजोय दै बारा जोरी।

O	X	O	X
रे म म -	ग - ग सा	रे प म -	ग म ग रे
ना ऽ जो ऽ	नै ऽ ना ऽ	री ऽ नु ऽ	की ऽ ले ऽ
रे गु रे -	सा - - -	नि - ध -	सा - सा -
न ऽ ये ऽ	रं ऽ ऽ ऽ	ग ऽ खे ऽ	ऽ ऽ ल ऽ
रे गु गु रे	स रे रे गु	रे गु रे -	सा - - -
र ऽ हे ऽ	रं ऽ ग ऽ	हो ऽ ऽ ऽ	री ऽ ऽ ऽ
नि - नि -	ध - प -	ध सा - सा	सा - सा रे
नै ऽ न हिं	खे ऽ लैं ऽ	नै ऽ न खि	ला ऽ वै ऽ
रे म गु -	ध - प -	ध सा सा -	सा - सा रे
नै ऽ न हिं	डा ऽ रै ऽ	रं ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ग
स रे रे रे	रे म म म	म प प नि	ध ध प -
नै ऽ न हिं	डा ऽ रै ऽ	प्रे ऽ म प्री	ऽ त की ऽ
प ध ध -	प - म -	ग - - -	ग - सा -
पि च का ऽ	री ऽ प च	रं ऽ ऽ ऽ	ग ऽ धि ऽ
सा रे रे प	म - ग -	सा रे रे गु	रे - - -
जो ऽ ऽ य	दै ऽ ऽ ऽ	बा ऽ रा ऽ	जो ऽ ऽ ऽ
सा - - -			
री ऽ ऽ ऽ			

धुन (सावन)³⁸

निसा रे गु रे सा	नि सा सा रे	नि सा रे गु	- सा रे सा
नि सा सा -	रे म म ग	रे ग रे सा	रे गु रे -
- गु - रे	सा गु रे सा	नि सा सा रे	नि सा रे गु
- गु - रे	नि सा सा -		

सन्दर्भ

1. संगीत , मार्च 1954, श्री बेनी प्रसाद श्रीवास्तव 'भाई', पृ० 18
2. वही, पृ० 20
3. वही, पृ० 21
4. संगीत, अगस्त 1969, श्री रामचन्द्र तिवारी, पृ० 42
5. संगीत, अप्रैल 1963, श्री 'नारायण' स्वामी, पृ० 12
6. संगीत, अप्रैल 1963, श्री मैथिली शरण गुप्त, पृ० 14
7. लक्ष्य संगीत, अंक 4, मार्च 1956, श्री कृष्ण नारायण रातंजनकर, पृ० 41-42
8. वही, पृ० 43
9. संगीत, अंक 11, नवम्बर 1963, श्री आनन्द बिहारी तैलंग, पृ० 51 व 64
10. संगीत, दिसम्बर 1963, अंक 12, पृ० 55
11. संगीत, अंक 4, अप्रैल 1964, पृ० 56
12. संगीत, अंक 8 , अगस्त 1964, पृ० 51
13. वही
14. संगीत-भाष्य (Terminology of Musical Terms) श्री पदबन्धोपाध्याय, पृ० 477
15. संगीत, मार्च 2005, श्री महावीर प्रसाद 'मुकेश', पृ० 12
16. भारतीय कंठ संगीत और वाद्य संगीत (गायन, वादन सुमेल), डॉ० अरूण मिश्र, पृ० 241
17. वही, पृ० 242
18. संगीत, मार्च 1970, अंक 3, श्री प्यारे लाल श्री माल, पृ० 11
19. वही, श्री श्यामदास मिश्र , पृ० 12
20. संगीत, अप्रैल 1985, अंक 4, पृ० 14
21. संगीत, अगस्त 1985, अंक 8, आनंद बिहारी तैलंग द्वारा रचित।
22. बुन्देलखण्डी-लोकगीतों में सांगीतिक-तत्त्व, वीणा श्रीवास्तव, पृ० 267
23. वही, पृ० 270
24. ब्रज के देवालयों में संगीत परम्परा, डॉ० राकेश बाला सक्सेना, पृ० 91
25. बुन्देलखण्डी-लोकगीतों में सांगीतिक-तत्त्व, वीणा श्रीवास्तव, पृ० 271

174 / ऋतुकालीन लोकगीतों में शास्त्रीय संगीत के तत्त्व

26. संगीत ज्ञानमाला (पहला भाग), पं. निरंजन प्रसाद कौशल, पृ० 133
27. बुन्देलखण्डी-लोकगीतों में सांगीतिक-तत्त्व, वीणा श्रीवास्तव, पृ० 279-280
28. संगीत, महिला संगीत अंक, जनवरी-फरवरी 1986, पृ० 185
29. बुन्देलखण्डी लोकगीतों में सांगीतिक तत्त्व, वीणा श्रीवास्तव, पृ० 292-293
30. वही, पृ० 359
31. संगीत, महिला संगीत अंक, जनवरी-फरवरी 1986, पृ० 186
32. वही, पृ० 188
33. बुन्देलखण्डी-लोकगीतों में सांगीतिक तत्त्व, वीणा श्रीवास्तव, पृ० 358
34. संगीत, लोक संगीत अंक, जनवरी 1966, पृ० 212
35. संगीत कला बिहार, मई 1974, पृ० 31
36. संगीत कला बिहार, मई 1974, कु० सरला भिंडे द्वारा रचित।
37. संगीत, लोक संगीत अंक 1966, पृ० 118-119
38. वही, पृ० 220

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
(संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी-ग्रन्थ एवं पुस्तकें)

1. श्री मद्भगवद्गीता, (संस्कृत मूल एवं हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद), अशोक कौशिक, स्टार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, आसफ अली रोड, नई दिल्ली।
2. ऋग्वेद, महर्षि दयानंद सरस्वती, दयानंद संस्थान, नई दिल्ली।
3. अथर्ववेद, महर्षि दयानंद सरस्वती, दयानंद संस्थान, नई दिल्ली।
4. महाभारत, चित्रशाला प्रकाशन, पुणे 2 ।
5. रामचरितमानस, तुलसीदासकृत, जय प्रकाश, गीता प्रेस, चण्डीगढ़।
6. छान्दोग्योपनिषद् (सानुवाद शाङ्करभाष्य सहित), गीता प्रेस, गोरखपुर।
7. पञ्चतन्त्रम् (नीतिशास्त्र) , श्री विष्णुशर्मा, साहित्य-शास्त्री पं० रामतेज पाण्डेय, पण्डित-पुस्तकालय, काशी 1।
8. वायु पुराण (प्रथम खण्ड) (सरल हिन्दी भाष्य सहित), वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्री रामशर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, रव्याजाकुतुब, बरेली (उ०प्र०)।
9. श्री रामचरित मानस का सौन्दर्यतत्त्व, डॉ. कवीश्वर ठाकुर, प्रकाशन संस्थान, दयानंद मार्ग, दरिया गंज, नई दिल्ली 110002।
10. हिन्दी-साहित्य का बृहद् इतिहास (षोडश भाग), राहुल सांकृत्यायन, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, सं० 2017।
11. कालिदास-संगीत-मंजरी-2, ऋतु संहार सुरभि डॉ. सुषमा कुलश्रेष्ठ एवं आचार्य डॉ० जगदीश सहाय कुलश्रेष्ठ, ईस्टर्न बुक लिंकर्स न्यू चन्द्रावल, जवाहर नगर, दिल्ली 110007।
12. लोकगीतों के सन्दर्भ और आयाम, डॉ० शान्ति जैन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी (उ०प्र०)।
13. अवधी लोकगीत : समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ० विद्याबिन्दु सिंह, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद।
14. भारतेन्दुयुगीन हिन्दी काव्य में लोकतत्व, डॉ० विमलेश कान्ति, दिग्दर्शनचरण जैन, ऋषभचरण जैन एवं सन्तति, दरियागंज, दिल्ली।
15. काव्य के रूप, स्व० गुलाबराय, आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, नई दिल्ली।
16. राजस्थानी लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ० मदन लाल शर्मा, राजस्थानी साहित्य संस्थान, जोधपुर।

17. चैती, डॉ० शान्ति जैन, उत्तर-प्रदेश संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ।
18. बच्चन गीत संगीत, महावीर प्रसाद 'मुकेश', जीवन ज्योति प्रकाशन, चखैवालान, दिल्ली 110006।
19. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास (षष्ठ भाग), रीतिकालः रीतिबद्ध काव्य, डॉ० नगेन्द्र, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
20. हिन्दुस्तानी संगीत में राग की उत्पत्ति एवं विकास, डॉ० सुनन्दा पाठक, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
21. भारतीय संगीत और कवि घनानन्द, डॉ० अर्चना पाण्डेय, संजय प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली 110002।
22. सुबोधक, तनसुखराम गुप्त, सूर्य-प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली 110006।
23. भोजपुरी के नये गीत और गीतकार, राहगीर, उदय प्रकाशन, वाराणसी।
24. हाड़ाती लोकगीत, डॉ० सत्येन्द्र, कृष्ण ब्रदर्स, अजमेरा।
25. संगीत मधुबन, डॉ० राकेश बाला सक्सेना एवं डॉ० मधुबाला सक्सेना, अभिषेक पब्लिकेशन्स, चंडीगढ़।
26. लोक साहित्य की भूमिका, डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन (प्राइवेट) लिमिटेड, इलाहाबाद।
27. रीतिकालीन परम्परा में पद्मावत, द्वारिक नाथ राय, नमन प्रकाशन, अंसारी रोड, दरिया गंज, नई दिल्ली-2।
28. आदिकालीन हिन्दी साहित्य शोध, डॉ० हरीश, साहित्य भवन प्रा० लि०, इलाहाबाद-3।
29. भारतीय संगीत का सौन्दर्य-विधान, डॉ० (श्रीमती) मधुरलता भटनागर, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, दिल्ली विश्वविद्यालय।
30. भारतीय संगीत में निबद्ध तथा अनिबद्ध, विजया चांदोरकर, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।
31. ख्याल शैली का विकास, डॉ० मधुबाला सक्सेना, विशाल पब्लिकेशन्स यूनिवर्सिटी कैम्पस, कुरुक्षेत्र।
32. भारतीय संगीत का इतिहास, उमेश जोशी, मानसरोवर प्रकाशन प्रतिष्ठान, फिरोजाबाद, उत्तर-प्रदेश।
33. श्री मल्लिक्य संगीतम्-मूल लेखक-'चतुरपण्डित' विष्णु भातखण्डे, अनुवादक गुणवन्त माधव लाल व्यास, मध्यप्रदेश ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
34. हरियाणा तथा पंजाब की संगीत परम्परा, डॉ० रीता धनकर, संजय प्रकाशन, दिल्ली।
35. ठुमरी की उत्पत्ति विकास और शैलियाँ, डॉ० शत्रुघ्न शुक्ल, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।
36. कजरी, डॉ० शान्ति जैन, उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ।
37. हिन्दुस्तानी संगीत में होली गान (उद्गम, विकास-परम्परा और वर्तमान स्वरूप),

- नीता माथुर, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
38. संगीत भाष्य (Terminology of musical Terms), श्री बन्दोपाध्याय, बी० आर० पब्लिशिंग कारपोरेशन, दिल्ली।
 39. भारतीय कंठ संगीत और वाद्य संगीत (गायन, वादन सुमेल), डॉ० अरूण मिश्रा, कनिष्का पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 110002
 40. बुन्देलखण्डी-लोकगीतों में सांगीतिक तत्त्व, वीणा श्रीवास्तव, राधा पब्लिकेशन्स अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110002
 41. मीरा सुधा-सिन्धु, स्वामी आनन्द स्वरूप, श्री मीरा प्रकाशन समिति, भौलवाड़ा (राजस्थान)।
 42. गंगा घाटी के गीत, डॉ० हीरा लाल तिवारी, विश्व विद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
 43. ब्रज के देवालियों में संगीत परम्परा, डॉ० राकेश बाला सक्सेना, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ०प्र०)।
 44. संगीत ज्ञानमाला (प्रथम भाग) पं० निरंजन प्रसाद कौशल, मुरादाबाद (उ०प्र०)।
 45. The Evaluation of songs and Lives of Great musicians, Shri Padbandopadhyaya, Vahi Mandir Sangeet Sahitya Prakashak, Delhi.

सहायक कोश

1. भाषा-शब्द-कोश, रामशङ्कर 'रसाल', रामनारायण लाल वेनी प्रसाद, इलाहाबाद (उ०प्र०)।
2. संस्कृत-हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली वाराणसी, पटना, मद्रास।
3. हिन्दी शब्द सागर, (नवम संस्करण) रामचन्द्र वर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा काशी।
4. हिन्दी साहित्य कोश, भाग एक (पारिभाषिक शब्दावली), धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी।
5. कृषक जीवन सम्बन्धी ब्रजभाषा-शब्दावली (द्वितीय खण्ड), अम्बा प्रसाद 'सुमन', हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तर-प्रदेश, इलाहाबाद।

पत्रिकाएँ

1. संगीत, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ०प्र०)
जनवरी 1966, अक्टूबर 1963, अगस्त 1969, सितम्बर 1990,
अगस्त 1974, मार्च 1990, मार्च 1954, अप्रैल 1963,
नवम्बर 1963, दिसम्बर 1963, अप्रैल 1964, अगस्त 1964,
मार्च 2005, मार्च 1970, अप्रैल 1985।
2. लक्ष्य संगीत, लक्ष्य-संगीत कार्यालय, मुम्बई।
मार्च 1956।
3. संगीत कला बिहार, महाराष्ट्र राज्य साहित्य संस्कृति मंडल अखिल भारतीय गांधर्व मई 1974 महाविद्यालय मंडल प्रकाशन।

उपसंहार

लोकसंगीत सामाजिक सन्दर्भ से अधिक नजदीक हैं। अन्य सांगीतिक-विधाओं की तुलना में लोकगीत जनमानस में रचा-बसा है। लोकगीतों में सामाजिक सम्बन्धों की स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है। कुछ सांगीतिक-रूपों में उनका सामाजिक आधार छुपा हुआ होता है जिसे गहरे विश्लेषण से ही जाना जा सकता है, लेकिन कुछ का सामाजिक मूल बहुत स्पष्ट होता है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण चैती, होरी, कजरी आदि उपशास्त्रीय-गायन शैलियाँ हैं।

लोकगीतों में संस्कारों, मेलों, उत्सवों एवं ऋतुओं से सम्बन्धित गीतों में ग्राम्य जीवन की झाँकी स्पष्ट रूप से देखने को मिलती हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से उत्तर-प्रदेश का अपना विशेष महत्त्व है। यहाँ की संस्कृति में आमोद-प्रमोद के साधन गीत, लोकवाद्य, लोकनृत्य, लोक नाट्य, मेले उत्सव आदि रहे हैं। यहाँ के लोकगीतों के वर्गीकरण के अन्तर्गत संस्कार गीत, धार्मिक गीत, जाति गीत, ऋतु एवं त्योहार गीत, श्रृंगार गीत, सामाजिक गीत, ऐतिहासिक गीत, नृत्य गीत तथा विविध गीतों का विशेष महत्त्व है। इसीलिए लोकगीतों का वर्ण्य विषय भी अत्यन्त विस्तृत होता है। अनाज, फसल, देवी-देवता, आभूषण, आशा-निराशा, राष्ट्रप्रेम, संस्कृति-सभ्यता, भक्ति तथा श्रृंगार आदि अन्य-अनेक वर्ण्य विषय से सुसज्जित लोकगीत आदिम सभ्यता एवं वर्तमान संस्कृति की पहचान हैं। किसी भी देश की सभ्यता एवं उन्नति की पहचान लोकगीत में समाहित रहता है।

लोकगीतों के वर्गीकरण के आधार पर लोकगीतों में सामाजिक, धार्मिक एवं संस्कार आदि गीतों के अतिरिक्त ऋतुओं से सम्बन्धित गीत भी अत्यन्त रोचक एवं मनमोहक होते हैं। यूँ तो मुख्य रूप से छः ऋतुएँ मानी जाती हैं। परन्तु मुख्य रूप से चार ऋतुएँ-वर्षा, शरद, बसंत और ग्रीष्म प्रधान हैं। युगों-युगों से मानव हृदय इन ऋतुओं से सहज ही प्रभावित होता रहा है। प्राकृति की मनमोहक छटा से मानव मन झंकृत हो उठता है ऋतुओं का प्रभाव मानव चेतना को इस प्रकार आनन्दित करते हैं कि स्वतः मनुष्य की वाणी लयमय होकर जीवन के प्रत्येक क्षण को अभिव्यक्त कर देती है। इन ऋतुगीतों को मौसमी सांगीतिक गीत विधा भी कह सकते हैं। इन

मौसमी गीत विधाओं में चैती, कजरी, होरी, फाग, बारहमासा, चौमासा, एकमासा, बसंतपंचमी, सावन, छहमासा। आल्हा, हरियाली तीज झूला-हिन्डोल इत्यादि लोकगीत प्रचलित हैं।

चैती एक मौसमी सांगीतिक रूप है जो चैत के महीने में गाई जाती है। चैती लोकसंगीत का ही एक प्रकार है। चैती गीतों के उद्गम का कोई निश्चित इतिहास नहीं है। इसे कृषि-युग की देन माना जाता है। चैती गीत सहज, स्वाभाविक माधुर्य से ओत-प्रोत रचना है। लोक-संस्कृति इन गीतों में अपने पूर्ण वैभव के साथ प्रतिबिम्बित होती है। होरी गीतों का उत्तर-भारत में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इन गीतों का सम्बन्ध होली पर्व से है, जो बसंत ऋतु के फाल्गुन मास में मनाया जाता है और इसका नामकरण भी इसी आधार पर हुआ है। होरी की भाँति कजरी भी लोक संगीत की सुहावनी विधा है। वर्षा ऋतु के आगमन पर जनसमुदाय के मन में जिस उल्लास एवं उमंग का संचार होता है, उसको अभिव्यक्त करने के लिए कजरी एक सशक्त माध्यम है। अन्य लोकगीतों की भाँति 'फाल्गुन' का वर्ण्य-विषय भी लोक जीवन के विविध पक्ष से है किन्तु इनका प्रमुख रस रसराज श्रृंगार है। फाल्गुन महीने में इसको मनाया जाता है। बारहमासा गीत वर्षा ऋतु में गाये जाते हैं किन्तु इसे हर ऋतु में गाया जाता है। बारहमासा लोकगीतों की परम्परा बहुत प्राचीन है। ऋतुगीतों में यह बहुत लोकप्रिय है। साहित्य में ऋतु षड्-वर्णन का जो स्थान है वही लोक गीतों में बारहमासे का है। इसी प्रकार अनेक ऋतुगीतों की सुहावनी विधा प्रचलित एवं प्रसिद्ध है। जिनमें प्रत्येक प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति निहित है।

वर्तमान समय में चैती, कजरी तथा होरी आदि उपशास्त्रीय गायन प्रकारों की बढ़ती हुई लोकाभिरुचि को देखते हुए अनेक शास्त्रीय गायकों ने इसे अपनाया है। सभी घरानों के गायकों द्वारा इन गायन-रूपों का गायन किया जाता है। गायकों की इस प्रवृत्ति से यह प्रमाणित होता है कि जैसे कोई सांगीतिक रूप अपने ऐतिहासिक सामाजिक मूल से स्वतन्त्र होकर परवर्ती काल और समाज में अपने परिष्कारों से गुजरता हुआ नये कलात्मक सृजन का माध्यम बनता है।

इस प्रकार इन ऋतुगीतों में किसी नवीन ऋतु का स्वागत किया जाता है। इन लोकगीतों में शास्त्रीय रागों के प्रारूप बनने की पूर्ण क्षमता है। गीतों के विवेचन में पाया गया है कि पहाड़ी, दुर्गा, भूपाली, काफी, पीलू, विलावल, मल्हार, वृंदावनी सारंग, मालकौंस तथा खमाज आदि अनेक रागों की झलक स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। ताल की दृष्टि से दादरा, चाँचर, कहरवा, दीपचंदी, रूपक, खेमटा, झपताल,

एकताल इत्यादि लोकगीत का आधार बन चुका है। इन लोकगीतों में षड्ज-मध्यम संवाद मुख्य रूप में पाए जाते हैं। कहीं-कहीं षड्ज-गन्धार संवाद भी कभी-कभी मिलता है। इन लोकगीतों में मन्द्र, मध्य तथा तार स्वरों का प्रयोग होता है परन्तु मुख्य रूप से तार सप्तक के स्वर लोकगीतों में प्रयोग होता है। संग्रहीत लोकगीतों के विश्लेषण से मुख्यतः यह बात स्पष्ट हुई है कि इन सभी लोकगीतों को मध्य लय में गाया जाता है। सभी गीत लय प्रधान है। इसीलिए इन लोकगीतों के संगत हेतु विभिन्न ताल-वाद्य प्रचलित हैं। मृदंग, तबला, ढोलक, डमरू, हारमोनियम, शहनाई, सारंगी, बांसुरी आदि अनगिनत वाद्य लोकगीतों को लयबद्ध एवं झंकृत करने के लिए प्रमुख रूप से प्रयोग किये जाते हैं। लयबद्ध एवं तालबद्ध होकर यह लोकगीत शास्त्रीय संगीत के समीप पहुँचते दिखाई पड़ते हैं। लयबद्धता के लिए तीन, चार, छः, सात, आठ, बारह, चौदह तथा – सोलह मात्राओं वाले तालों का प्रयोग होता है।

इन लोकगीतों में अनेक रागों की छाया का आभास मिलता है। बहुत से गीत तो किसी राग विशेष के स्वरावलियों में ही रचे-बसे हैं। परन्तु चलन भिन्न होने से इन्हें रागों की संज्ञा नहीं दी जा सकती। ये लोकगीत किसी शास्त्रीय बंधन में प्रतिबन्धित नहीं हैं परन्तु यह भी सत्य है कि शास्त्रीय संगीत, लोकसंगीत से नित नये पल्लव अर्जित करता रहा है।

परिचय



डॉ० सुमन

शिक्षा :

- संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा स्व० श्री विनय चन्द्र मोद्गल जी से प्राप्त की। तत्पश्चात् गान्धर्व महाविद्यालय, दिल्ली से मध्यमापूर्ण की उपाधि प्राप्त की।
- संगीत (गायन) में कला-निष्णात (M.A.) एवं संगीत (गायन) में दर्शन-निष्णात (M.Phil.) व विद्या-वाचस्पति (Ph.D) की उपाधि संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय से प्राप्त की।
- सन् 2004 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा (N.E.T) एवं कनिष्ठ शोध छात्रवृत्ति (J.R.F) की परीक्षा उत्तीर्ण की।



नैतिक प्रकाशन

II, आर.एम.-166, एम.आई.जी.जी.डी.ए. फ्लैट्स,
राजेन्द्र नगर, गाजियाबाद (यू.पी.)
फोन : 9811068272; 9873485403